ौराणिक इतिहाससार का सूचीपत्र ॥

विषय

इति ॥

बोले कि मैं राजा उत्तानपाद का पुत्र हूं मुझको वैराग्य उपजा है इससे कृपा करिके आप लोग मुझे नारायण के भजन का मार्ग उपदेश कीजिये तब ऋषियों ने कहा कि तू तो अभी पांचवर्ष का बालक है, वैराग्य का क्या कारणहै हमलोग तुझको योग के योग्य नहीं देखते तैंने अभी संसार की शीत उष्ण भी नहीं देखी है, तब ध्रुव ने कहा, कि जो आपलोग मुझको उपदेश न करेंगे तो मैं अपना प्राण त्याग करूंगा, तब ऋषीश्वरों ने बिचार किया कि आश्चर्य नहीं जो यह बालक अपनी प्रतीति से न हटै और गोविन्द जी को पावे, फिर ऋषियों ने पूंछा कि तेरा क्या प्रयोजन है? तब ध्रुव ने कहा कि मैं ऐसे पदको पहुंचनाचाहता हूं जहां पर और कोई न पहुंचा हो, तब मरीचऋषि१ बोले कि हे पुत्र! श्रीगोविंदजी का भजन कर जिस से तेरी सब कामना पूर्ण हो ऐसा कौन पुरुष है कि जिसकी गोविंद की शरण में जाने से कामनापूर्ण नहीं होती, तब अत्रिऋषि २ बोले कि हे ध्रुव जी! अपने मन से बासना को उठाकर जो सब से ऊपर है उसमें ठहरा के उसी में चित्त को लगाओ तो जो कुछ चाहोगे वह सब प्राप्त होगा तब अङ्गिराऋषि ३ ने कहा वह जो तेरे मन में स्थित है और जो ब्रह्मा से लेकर चिउंटीतक सब में व्याप्त है, यदि तू ऊंची पदवी की इच्छा रखता है तो यही बिचार कर, कि सर्व वही है फिर क्रतु जी बोले कि यज्ञपुरुष परमात्मा को भजन करके प्रसन्न कर तो तेरी कामना पूर्ण हो तब पुलहऋषि४ने कहा कि यदि इन्द्र के पदसे ऊंचापद प्राप्त करने की तेरी इच्छाहै तो जिसके शरणागत सम्पूर्ण जगत् है उसको चेतकर, फिर वासिष्ठ५मुनि बोले कि हे पुत्र! लोक व परलोक की कामना का पूरा होना यही है कि परमेश्वर के ध्यान में मग्न हो इससे आपको त्याग करके नारायण से प्रीति करो, तब भृगु६मुनि ने कहा कि हे ध्रुव! जबतक कामना नाश नहीं होती तबतक परमपद प्राप्त नहीं होता, तुमको तो अटलपद की

कामना है और उसी अटल पदमें लीन हो इस चाहना को त्याग करो चाहना द्वैत को कहते हैं-एक चाहने वाला दूसरा जिसको चाहा,यह दो हुये तब ब्रह्म में कैसे लीन होगा? तब ध्रुवने पूछा कि उसको कैसे चेतकरूं उसका भजन क्याहै मुझको उपदेश कीजिये कि जिससे उसको जानूं और निश्चय करूं,तब गौतमऋषि ७ ने कहा कि प्रथमअपने मनको प्रपंचदृष्टिका त्यागकरो क्योंकि आदि में जिज्ञासा अर्थात् जानने की इच्छा बिषय यही कर्त्तव्य अर्थात् करने के योग्यहै,तदनन्तर अर्थात् इसके पीछे भगवान में लीन होताहै, काहेसे कि सर्व उसीसेहै अर्थात् अपने मनको सब से और सब ओर से फेरो और श्री गोविंद को प्राप्तहो, ध्यान और तपस्या यही है कि जिससे निश्चयहोवे कि सर्वव्यापक वही है, जब तू ऐसी तपस्या करेगा तब गोविंद तुझपर प्रसन्न होंगे और वह पद जो कि त्रयलोक्य में दुर्लभहै तुझको प्राप्तहोगा । ध्रुव इस बातको सुनकर और मनमें स्थितकरके वहां से चले और लोगोंने यहकथा उनके पिता राजा उत्तानपाद से जाकेकही कि ध्रुव सब त्यागकरके बनमें चलगये तब राजा ने अपने चाकरों को आज्ञादी कि तुमलोग ध्रुवके निकट शीघ्र जाकर यह क हो, कि राज्यका तीसराभाग लेकर विराग का त्यागकरो जब राजा के से-वकों ने जाके यहबार्त्ता ध्रुवसे कही तब ध्रुव इस बातको सुनकर बड़े आश्चर्य को प्राप्तहुये और शोचने लगे कि जब एक ही पद श्रीभगवान्के मार्गमें देनेसे राज्यका तीसरा भाग मिलता है तो राज्यको लेकर क्या करूंगा श्रीगोविंदहीकादर्शन क्यों न करूं, ऐसा बिचारकर राजाकी आज्ञा स्वीकार न की तब राजाने दूतोंसे यह बार्त्तासुनकर राज्य का अर्धभाग देना कबूल किया लेकिन ध्रुवने फिरभी न माना तब राजाने कहा कि मैं तुमको सम्पूर्ण देताहूं लौटआओ इसपरभी ध्रुवने न माना और मन में यह करके कि एक श्री विष्णु ही सबजगत् का आत्माहै और किनारे जाकर स्थितहुये और सम्पूर्ण शरीर का बोझ

बांये पैरके अंगूठे पर रखके तपस्या करनेलगे जिसतपके प्रभाव से पहाड़, आकाश, अग्नि और जल कम्पितहोकर सम्पूर्ण पृथ्वी कांपनेलगी और गौका रूपधरकर इन्द्रके पासजाकर ध्रुव की सम्पूर्ण तपस्या का हाल कहतीहुई यहसुनकर सबदेवगणोंसमेत इन्द्र बहुत बिस्मितहुये और राक्षसोंको बुलाकर यह आज्ञादी कि ऐसीयुक्ति करो कि जिससे ध्रुवका चित्त ध्यानसे उखड़जावे। उसी समय सुनीता माता भी ध्रुवकी आनपहुँची और रोदन करके कहनेलगी कि हेपुत्र! देखो राक्षसलोग आनपहुँचे ये तुमको टुकड़े२ करडालेंगे तुम अपने जीव के शत्रु होकर मुझको क्यों क्लेशित करतेहो इससंसारमें एक तुमहीं मेरे आश्रयी भूतहो इससे पांच वर्षकी अवस्था में मुझको त्यागकरके ऐसी कठिन तपस्याकरना उचितनहीं है यहसमय तुम्हारे खेलने कूदनेकाहै कष्ट उठाने का नहीं, जो तुम इस तप का त्याग न करोगे तो मैं अपना प्राण त्याग दूंगी। पराशर जी मैत्रेय जी से बोले कि हे मैत्रेयजी! ध्रुवका चित्त परमेश्वर में लीन था इससे उनकी माता की अति दीनता युक्त शिक्षा उनके मनमें कुछ भी प्रवेश न करसकी तब माता बोली कि हे पुत्र! देखो ये जो राक्षस तुम्हारे शीशपर खड़े हैं सब तुमको मारडालने की चाहना करते हैं इतना कहकर सुनीता चलीगई और वे राक्षस अपने२मुखसे अग्नि निकाल निकाल और आयुध हाथों में ले लेकर ध्रुवको अनेकप्रकार से भय दिखानेलगे और सिंह व सर्पोंका भेषधारण करके कहने लगे कि इस बालकका मारडालनाही उचितहै इनकेऐसे नानाप्रकारके भय जनक चरित्र देख व सुनकर ध्रुवके मनमें कुछभी संदेह न होताथा क्योंकि उससमय ध्रुवकामन किसी अंगके विषय में लीन न था वहजानता था कि भीतर बाहर गुप्त प्रकट वही एक विष्णुहै जब उस परमेश्वर से अतिरिक्त कुछभी नहींहै तो डर किसका करूं, फिर राक्षसों ने ध्रुवके निकट जाकर क्या देखा कि ध्रुव नहीं है भगवान् ही हैं, तब कंपित हुये और भयदिखाने का

बलभी न रहा, व मनमेंहारमानकर इन्द्रके पासगये और ध्रुवका सब वृत्तान्त कह सुनाया तब इन्द्र देवताओं समेत ब्रह्मा के पासगये और उनको भी अपनेसाथ लेकर क्षीरसागर में जहां विष्णु भगवान् का स्थानहै वहांपहुंचे और स्तुति करके कहने लगे कि ध्रुवकी तपस्या नित्यप्रति बढ़तीजातीहै न जाने इस कठिन तपस्या से वे क्या चाहतेहैं उनकी चाहना हमारी समझ में नहीं आती इससे उनके तपकी चिन्ता हमारे चित्तमें बाणके समान बेधतीहै कृपाकरके हमारा यह भय दूरकीजिये और ध्रुव के ध्यानको उच्चाट करदीजिये यह सुनकर विष्णु भगवान् ने उत्तरदिया कि हे देवताओ ! तुम सब निश्चिन्तहोकर अपने २ स्थानपर जाओ ध्रुवको तुम्हारी किसी पदवी की चाहनहींहै वह जो चाहताहै उसे मैं जानताहूं मैं उसकी कामना पूरीकरूंगा विष्णुभगवान् की ऐसी वार्ता सुनकर सबदेवता लोग अपने २ स्थानों को चलेगये और श्रीविष्णु जी चतुर्भुजरूप से शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुये गरुड़पर सवार होकर ध्रुवके निकट पहुंचकर बोले कि हे पुत्र ! तूधन्यहै मैं तेरी तपस्यासे बहुत ही प्रसन्न हूं क्योंकि तूने संसार से दृष्टि उठाकर अपने मनको मुझ में लगाया है। जब श्रीविष्णुजी ऐसा कह चुके तब ध्रुव ने नेत्रखोलकर देखा कि जिसका मैं ध्यानकरता था वह साक्षात् मेरे नेत्रोंकेसन्मुख खड़ाहै यह देखकर ऐसा प्रसन्नहुआ कि शरीर की सुधि बुधि भूलगई फिर चेत सम्हालकर विचार करनेलगा कि मैं बालकहूं और कुछ शास्त्र पुराणभी नहीं पढ़ा, इननारायणदेव की स्तुति किस तरह से करूं, इस प्रकार अपने को स्तुति करने योग्य न समझकर उन गोविन्दजीकी शरण में प्राप्तहोकर कहनेलगा कि मैं ध्रुव नहीं हूं जो कुछ हैं आपही हैं, तब पराशरजी ने मैत्रेयजी से कहा कि हे विप्र ! गोविन्द जी की यही स्तुति है अर्थात् सदा यह जाने कि जो कुछ हैं गोविन्दही हैं मैं कुछ नहींहूं। ब्रह्म में मैं, तू नहीं है वह सब जगह व्याप्त व सर्वमय है। तत्पश्चात् ध्रुव जी बोले

हे नारायण! जब आपकी माया सब संसारमें फैलरहीहै तो मुझ बुद्धि हीन बालक परभी दयादृष्टि से देखकर अनुग्रह कीजिये जिससे मैं आपकी स्तुतिकेयोग्य होजाऊं तब बिष्णुभगवान् ने सरस्वती जी को आज्ञादी कि तुम ध्रुव के कंठ में स्थितहो जावो जिससे वह मेरी स्तुति करसके इतना सुनकर सरस्वती जी ने ऐसाही किया तब ध्रुवजी दोनों हाथ जोड़कर नारायण की स्तुति करनेलगे कि हे जनार्दन! पृथ्वी और पंचभूत, तीनों गुण और प्रकृति आदि सब तुम्हीं से उत्पन्न हुये और तुम सब में व्यासहो इससे आपको नमस्कारहै आप शुद्ध, निर्मल, सर्वज्ञ, और सबसे परेहो व ब्रह्मा से आदि लेकर पिपीलिका पर्यन्त सब जीवों में व्यास हो और तुमको परमेश्वर भी कहतेहैं विश्वके प्रकाशक, और सम्पूर्ण इन्द्रियों के अनन्तर, वाह्यके अधिष्ठाता आपही हैं आप स्वयं प्रकाशमान, अद्वितीय और स्मशान चौड़ान सेवर्जित हैं तुम्हीं को परमात्माकहते हैं जिनको योगीजन ध्यानकरते हैं, ऐसे आपको मैं साक्षात् नेत्रों के सम्मुख देखताहूं हे भगवन्! नेत्र, श्रवण, नासिका, कटि, और चरण जो कुछ दिखाई देतेहैं सब तुम्हीं, हो यह मेरे निश्चय [illegible] और प्रकट जो कुछ स्थावर जंगमहै सबमें व्यास होकर आपही सूर्यके समान प्रकाशि करने वाले हो मैं बुद्धिहीन आपको इधर उधर खोजता फिरता था परन्तु यह नहीं जानता था कि आप स्वयंप्रकाशरूप मेरे हृदय में स्थित हैं, मनुष्य, देवता, राक्षस ये सब आपही की कला हैं, मुझ में इतनी शक्ति नहीं जो आपके गुणानुवाद गासकूं बिराट् सुराट् और सम्राट् ये सब आपही के नाम हैं। जिसमें सब जगत् व्यासहै वह बिराट् और जो स्वयं प्रकाशमानहै वह सुराट् और जो आकाश की नाईं ब्रह्मासे चींटी पर्यन्त सब में व्यास है उसको सम्राट् कहतेहैं नाम रूप प्रकाशक आपही हैं मैं आपके रूपको कहांतक वर्णन करूं यदि कुछ कहने की इच्छा करता हूं तो द्वैत प्राप्त होता है हे भगवन्! अब आपकी दया से

मेरा मनोरथ सिद्धहुआ कि आपको नेत्रोंभरके देखा। इतनी
बिनय सुनकर श्री विष्णुभगवान् ध्रुव से कहनेलगे कि अब
तुम्हारी तपस्या पूर्णहुई जिससे कि मेरा दर्शन तुमको प्राप्त
हुआ अब तुम्हारी जो इच्छा हो वह पूर्ण करूं तब ध्रुव जी
विष्णुभगवान् से गद्गद वचन से बोले कि आप सृष्टि के उत्पत्ति,
पालन और लय कर्त्ता हैं मेरी इच्छा आपको प्रकटहै आप सत-
भाव अर्थात् निश्चय से मुझको प्राप्त हुये हैं इससे आपके सि-
वाय और आप से क्या मांगूं आपही के प्रताप से इन्द्र तीन-
लोक का राज्य करते हैं और आपहीं की दया से मैं आपको दे-
खताहूं मुझको इन्द्र से कोई प्रयोजन नहीं और न माता पिताही
से कुछ अर्थ है यदि आपकी मुझपर ऐसीही अनुग्रह है तो मुझे
ऐसा स्थान कृपा कीजिये कि जहां स्थितरहकर कभी न गिरूं।
तब विष्णुभगवान् बोले कि जो तेरी इच्छा थी वहअब पूर्णहुई अ-
गिले जन्ममें तूने ब्राह्मणका बालक होकर मेरी कठिन तपस्याकी
और माता व पिताकीभी भली विधि से सेवा कर व मेरे सिवाय
पुत्र! तू [illegible] जाना, [illegible] और युवा अवस्था तो तेरी
संसार से दृष्टि उठाकर अपने मनको [illegible] परन्तु भोगों की चाहना
[illegible] खोलकर देखा कि [illegible] और
तेरे मन से न मिटी थी कि तेरा शरीर [illegible]
शुभ कर्मों का फल जो तेरा बाक़ी था इससे तूने राजा के घर
में उत्पन्न होकर मुझको पाया, अब पृथ्वी पर स्थित रहकर
युवावस्था का सुख भोगकर। मैं तुझको ऐसा स्वरूप देता हूं
कि जैसा किसी मनुष्य को कभी नहीं मिला था, तेरा दर्शन
हरएक मनुष्य के योग्य होगा, जो कि यह शरीर नाशमान है
इससे तूभी मृत्युको प्राप्त होगा परन्तु पीछे तुझको अटल पदवी
मिलैगी और जबतक आकाश और पृथ्वी स्थित रहैंगे तबतक
तू भी टिकारह कर नहीं गिरेगा इसके सिवाय और जो कुछ
तेरी चाहना होवै वह भी मांगले मैं तुझको देऊंगा हे पुत्र। तुम
अपने चित्तको मुझ में लीन करो जिस पुरुष का मन मुझ में

लगजाता है वह आवागमन से रहित होकर मुझही में लीन होजाता है, तू ऐसे स्थान में रहेगा कि जहां सूर्य, चन्द्रमा और सम्पूर्ण नक्षत्र तेरे चरणों की सेवा करेंगे तेरा स्थान सूर्य आदि नक्षत्रों से ऊंचाहोगा और जबतक पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाशका नाश न होगा तबतक तू उस स्थानमें स्थित रहकर अन्तमें मुझी में लीन होजायगा निदान जब जनार्दन भगवान् से ऐसा बरदान पाकर अहंकारको प्राप्त हुये और अपनेको भूल कर सबसे ऊंचा समझनेलगे और उसी अभिमानकी दशा में मग्न होकर विष्णु भगवान् से पूछा कि हे भगवन् ! आपकी कृपा से मेरी सब अभिलाषा तो पूर्णहुई परन्तु एक संशय औरभी मेरे मनमें बाकी है कि आप कौनहैं और यह अटल पदवी क्या वस्तु है तब श्रीविष्णुभगवान् बोले कि अब इस भेदके पूछने से तेरा क्या प्रयोजन है अटल पदवी मैंने तेरी चाहीहुई तुझेदी, तब ध्रुवने फिर विनयकी कि महाराज ! बड़े आश्चर्य की बातहै कि मैं नहीं हूं तब इस पदवीसे क्या प्रयोजनहै फिर यह भी समझाइये कि आप कौनहैं तब विष्णुजी बोले कि यदि तेरे प्रश्नका मैं उत्तर देताहूं तो मैं और तू और यह पदवी तीनोंकानाश होताहै तब ध्रुवजी ने कहा कि जो हो सो हो परन्तु मुझे यह समझाइये कि आप कौनहैं तब भगवान् बोले कि मैं अद्वितीयहूं मुझ से अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है तब ध्रुवने फिर पूछा कि मेरी कुछ कामना पूरी न हुई मैंने वृथा निश्चय किया कि आपने मुझको अटल पद दिया है तब विष्णुभगवान् बोले कि यदि ऐसा है तो अटल पदवी को त्यागकरो क्योंकि जो ज्ञानी जिसठौर रहता है उसको वहीं आनन्दहै तब ध्रुव ने कहा जो सर्वमय आपही हैं तो ज्ञानी अज्ञानी कुछ वस्तु नहीं, अब दयादृष्टि से मेरा यह संदेह निवृत्त कीजिये कि मैं कुछहूं या नहीं, यदि मैं कुछ नहीं हूं तब मैंने वृथा तपस्या की और कष्ट उठाया, तब श्री बिष्णुभगवान् बोले कि जो काम कामना युक्त होता है वह अपने स्वरूप के अ-

ज्ञान से होता है और जो अविद्या से कोई काम कियागया तो फिर उसका पछिताना व्यर्थ है जिस कामना के निमित्त तूने तपस्या की वह तुझको प्राप्तहुई क्योंकि तेरी स्वयं इच्छाथी, तब ध्रुव जी बोले बड़े आश्चर्य की बात है कि जो मैं ज्ञानरूपी नेत्रों से अन्धाहुआ और आपने मुझको कूपमें गिरादिया यदि सर्वमय आप थे तब मुझ ज्ञानान्ध को उपदेश देकर रोंका क्यों नहीं तब विष्णु भगवान् बोले कि मैंने तुझे कुछ भी नहीं दिया जो कुछ तुमको प्राप्तहुआ यह सब तेरी ही इच्छा से मिला अब मैं जाता हूं इस प्रश्न का उत्तर तुझको किसी समय में सन्तों से मिलैगा तब ध्रुवजी ने फिर बिनय की कि हे महाराज ! मुझे आपही क्यों नहीं समझाते तब विष्णुभगवान् बोले कि क्या कहूं तेरे प्रश्न के उत्तर में मेरा तेरा और तीनों लोकों का नाश है, तब ध्रुवजी बोले कि यदि यह संदेह है तो आप जाइये जब मुझे संत मिलेंगे तब उनसे बोध होजायगा इतना सुनकर विष्णुभगवान् अन्तर्द्धान हुये और ध्रुव विचार करनेलगा कि मैं अब क्या करूं और कहांजाऊं और वह स्थान कहां है जहांपर मुझे सन्तों के दर्शन होंगे, भला सन्तों को मुझ से क्या प्रयोजन है, जो लोग निष्काम हैं उनका सत्संग मुझको तब प्राप्त होसक्ता है जब मैं भी उन्हीं की तरह निष्काम होजाऊं फिर अपने चित्त में यही दृढ़ विश्वास किया कि सिवाय नारायण के और कोई नहीं और यदि वह सर्वव्यापी है तो लोक व परलोक से क्या प्रयोजनरहा, यह शरीर नौका तुल्य है जैसे मनुष्य जब पार उतर जाता है तब नौका से कुछ प्रयोजन नहीं रहता यदि यह शरीर नाशवान्है तो फिर इससे कुछ काम नहीं इसी शोच बिचारमें निमग्नथा कि अकस्मात् तीन सन्तोंके दर्शन हुये और उनसे वार्तालाप होनेलगा प्रथम पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी ! जो तुम पूछतेहो कि तीन संत कौन कौन से थे तो सुनो एक तो मैंही था तब मैत्रेयजी बोले कि मुझे यह कैसे

निश्चयहोवे कि वे तीनों संत आपही थे आप तो एक हैं तीन रूप किसप्रकार से होगये अब कृपाकरके उन तीनों के नाम पृथक् पृथक् मुझे समझाइये तब पराशरजी बोले कि निश्चयकरो मैं ही था तब मैत्रेयजी ने कहा यहां मैं कैसे जानूं कि तीनों पराशर ही थे तुम तो एक हो त्रिपुटी अपने ऊपर क्योंकर स्थित करतेहो तब पराशरजी ने पूछा कि तू मुझको नाशवान् जानता है या अमर? तब मैत्रेयजी ने उत्तरदिया कि आप सदा अजर अमर हैं अब कृपा करके ध्रुव की कथा मुझको सुनाइये तब पराशरजी बोले कि सुनो व्याकरण शास्त्रानुसार ध्रुव शब्द का अर्थ निश्चयहै इससे तुम अपने मनमें विश्वास मानो कि त्रैलोक्य में तुम्हारे सिवाय कोई दूसरा नहीं है परन्तु तुम तो कपटीहो अपनेही को स्वयंब्रह्म कहतेहो तब मैत्रेयजीबोले कि चारों बेद कहते हैं कि ब्रह्मास्मि अर्थात् ब्रह्महै पराशरजी ने पूछा कि तुम अपनेको स्वयंब्रह्म किसप्रकार से समझतेहो तब मैत्रेयने कहा कि सर्वव्यापीहूं तब पराशरजी बोले यह बार्ता तुम्हारी हँसने के योग्यहै इसलिये कि तुम भोजन,शयन इत्यादि नानाप्रकार की सांसारिक कामनाओं में बँधेहोनेपर भी अपने को स्वयंब्रह्म मानते हो तब मैत्रेयजी ने उत्तर दिया सम्पूर्ण कामनाओं में बन्धहोने के कारण से ही तो मैं अपनेको सर्वव्यापी बतलाताहूं नहीं तो ऐसा किसतरह कहसक्ता था इतनी वार्ता सुनकर फिर पराशरजी बोले कि जब तक जीव मृत्युको प्राप्तहोकर फिर जन्म नहीं लेता अमृत का खोज उसको नहीं मिलता यदि चाहो कि जीतारहकरही ज्ञानको प्राप्तहोऊं यह अति दुष्करहै यदि तुमको मोती लेने की इच्छाहै तो डुबकी लगाओ परन्तु इसकेलिये ये चारवस्तुयें अति आवश्यक हैं एक डोरी का सिरा मित्रके हाथ, और दूसरा जीव हथेलीपर, और तीसरासांस न लेना, और चौथा मोह का त्याग करना है मैत्रेयजी! ज्ञानरूपी अग्निसे शीश और शरीर नहींबचता तब मैत्रेयजी बोले कि यह शरीर काठ की पुतली की नाईं है। कि

जिसके ऊपर त्वचा और भीतर रुधिर और अस्थि का जाल है तब पराशरजी बोले कि तुमने अभीतक अपनी दृष्टि रुधिर,मांस से नहीं उठाई मन से गोविन्दजी का भजन करो कि जिससे मन निर्मल होवे, यह मनुष्य का शरीर वारंवार नहीं मिलता इसी शरीर से मुक्ति प्राप्त होती है इससे देवता भी इसकी चाहना करते हैं और मुक्त मनुष्यही आवागमन से रहित है, यह आनन्द देवतों को भी दुर्लभ है अर्थात् जब जब ब्रह्माण्ड की रचना होती है तब तब देवतों को भी जन्म लेना पड़ता है और जिसको मायारूपी यह रत्न चिन्तामणि प्राप्त हुआ है वह सदा प्राप्त होनेवाले धनआदि विषयों में लीन रहता है और जब धन मिलजाता तब रूपवती स्त्री की चाहना करता है कि जो मिलजावे तो उससे भोग विलास करूं इन्हीं कारणों से गोविंद जी के भजन से विमुख रहकर,विषयों की चाहना करके परमेश्वर से आशा रखता है और कहता है कि मैंने इतने समयतक गोविन्दजी का भजन किया परन्तु दर्शनों की प्राप्ति न हुई। हे मूढ़ ! तूतो विचार के नेत्रों से अंधा है गोविन्दजी का दर्शन तुझे किसतरह प्राप्तहो, तेरा अभ्यास तो इन्द्रियों के द्वारा सुख मिलने का है;तूने अपने माता पिताको प्रत्यक्ष अग्नि में जलाया और उनके मरने के पश्चात् विचार करता है कि अब भली भांति सुख भोगूंगा परन्तु यह विचार न किया कि जब उन्हींका शरीर न रहा तब हमारा शरीर कैसे रहेगा, हे मैत्रेय जी ! तुम ने झूठा भ्रम मनमें धराहै कि मैं ब्रह्मर्षिहूं और वेद बहुत पढ़ाहूं परन्तु पढ़ना तुम्हारा इस निमित्त है कि लोग जाने कि मैत्रेय परमहंस है परन्तु जिस में मन, वाणी का विषय नहींहै उसको तुम कैसे जान सक्ते हो और वेद क्या जाने परन्तु जहां द्वैत को पहुंचने का रास्ता नहीं है संत लोग अपनी दृष्टि वहांहीं लगाये हैं फिर नारायणजी का स्वयं वाक्य भी है कि मैं संतोंका भजन करताहूं। हे मैत्रेयजी ! जो स्वरूप में लीन है और मौन धारण

किये हुये है जैसे जड़ भरत, प्रह्लाद, शुकदेव जो कि अपने तत्त्व को पहिचानते और चिंता से रहित, मंगनी के वस्त्र के समान शरीर से नग्नहुये हैं उन लोगोंने जो कुछ कहा वह वह योग था। तब मैत्रेयजी ने कहा कि अब कृपा करिके मुझको ध्रुव की कथा सुनाइये तब पराशरजी बोले कि ध्रुवकी यही कथा है कि जो निश्चय कर चाहे कि ध्रुव के समान होवें तो वैसाकरो कि जैसे ध्रुव माता,पिता,और भाई बन्धुकी लज्जा सबको इकबारगी त्यागकर गोविन्दरूप हुये तुम्हारी सामर्थ्य नहीं है कि उनके समान होवो, तब मैत्रेयजी बोले कि मैं उनके समान नहींहोता परन्तु आप उनकी कथा तो वर्णन कीजिये इतना सुनकर पराशर जी कहने लगे कि जो तुम उनके समान नहीं होते तो उनके कर्म सुनने से तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा, तब मैत्रेयजीने कहा- कि मैं जानताहूं कि सतुगुरु की दया से ही जिज्ञासू अपनी का- मना को प्राप्त होता है फिर आप मुझको वैसा क्यों नहीं करते तब पराशरजी बोले कि इस तुम्हारी वार्ता से निश्चित होताहै कि तुम भी अतीत होने की इच्छा रखते हो यदि ऐसी इच्छा है तो यह सम्पूर्ण इलोबास जो शरीर पर धारण कियेहो पृथ्वी पर फेंकदो और शिखासूत्रको त्याग करो व सब कामोंको छोड़दो। जब सम्पूर्णरागादि कर्मों का परित्याग करोगे तब तुम्हारे अहं- कार उत्पन्न होगा उससे बचना तब मैत्रेयजी ने कहा कि तुम मेरे गुरु देवहो दया दृष्टि से ऐसा उपदेश कीजिये कि जिससे देवर्षि और राजर्षि सबको यह बात विदित होवे कि यह मैत्रेय पराशरजीका शिष्यहै तब पराशरजी कहनेलगे कि ये सब अतीत जोकि तुम देखतेहो इन्हीं के समान तुम भी होवो हम तुमको शिष्य नहीं करते इन्हीं अतीतों से पूछो कि ये लोग किस तरह अतीत हुये हैं कहेंगे कि कुटुम्ब के त्याग से, तब अतीत नहीं हुये वह अभी अहंकार के आपा में फँसे हैं, मैत्रेयजी ने कहा कि जो तीनों गुणों से अतीत हुआ उसीको अतीत समझना चा-

हिये तब पराशरजी बोले कि सम्पूर्ण सृष्टि अर्थात् जीवधारी तीनों गुणों से उत्पन्न हुये हैं किसको विना शरीर के देखा है जिसको अतीत निश्चय किया तब मैत्रेयजी ने कहा कि जिसने ज्ञानाग्नि में शरीर के अभिमान को जलाया है वही अतीत है यह सुनकर पराशरजी बोले कि उस जले हुये की जो राख पड़ी हो वह मुझको दिखाइये, हे मैत्रेयजी ! निश्चय जानो कि अतीत कोई नहीं सब लोग गृहस्थही का भजन करते हैं अर्थात् जो कोई विष्णु का भजन करता है तो विष्णु भी गृहस्थ हैं तब उनका चेला किस प्रकार अतीत होसक्ता है और मैं भी गृहस्थ हूं और जो संन्यासी हैं और कहते हैं कि मैं शिवको जानता हूं तो शिवभी गृहस्थ हैं इससे यदि तुम मेरे शिष्य हो तो अतीत न होगे तब मैत्रेयजी ने कहा कि मैं जानता हूं तुम अपने को सब से बड़ा जानते हो तब पराशरजी बोले कि ऐसाही है मैं अहंकारी हूं फिर मैत्रेयजी ने पूछा कि अब यही उपाय है कि बस्त्र को जलाकर नंगा होजाऊं तब पराशरजी ने कहा कि बहुतही अच्छा है यह सुनकर मैत्रेय ने उसी क्षण अग्नि जलाकर अपने वस्त्र हवन करदिये और सिवाय एक कोपीन के अपने अंगपर कुछ शेष न रक्खा तब पराशरजी ने कहा कि इसको भी जलादो तब मैत्रेयने उसको भी जलादिया तब पराशरजी बोले कि ऊपरका सब शृंगार तो जलाया परन्तु शरीर के अहंकारका बस्त्र तो हृदय के भीतर पहिने है, जो शरीर अभिमान से छूटा है वही नंगा है यह सुनकर मैत्रेयजी बोले कि कैसा २ नाच नाचता हूं परन्तु यह प्रसन्न नहीं होते इससे अग्नि जलाकर शरीरही को भस्म करदूंगा जिससे बिलकुल नग्न होजाऊं तब पराशरजी बोले कि तुमने भला विचारकिया, शरीरको जलाओ जिससे नग्न होजाओ यह सुनकर मैत्रेयजी उठखड़े हुये और जलने के लिये लकड़ियां इकट्ठाकीं तब पराशरजीने कहा कि लकड़ियां थोड़ी हैं और शरीर तेरा स्थूल है कैसे जलेगा, हे मूर्ख !

यदि शरीर के नाश होने से कोई नग्न होता तो सबही शरीर नाश होते रहते हैं फिर नग्न क्योंकर न हुये यदि तू नग्न होने की इच्छा रखता है तो ग्रहण अरु त्यागको छोड़दे ये दो वस्तुयें जिस स्थानपर नहीं हैं वहां आपही आप है और उन्हीं नग्नों में से एक मैं भी हूं और यदि तूने अपना शरीर भी जलाया और लोक परलोक की कामना नाशको न प्राप्त हुई तो इस जलने से क्या लाभ है, नग्न वही है जो शरीर की विद्यमानता में लोक परलोक से छूटजावे । अब ध्रुव की कथा सुनो—मेरे कहने का प्रयोजन यहहै कि तू अपने स्वरूप को प्राप्त होवे क्योंकि यह मनुष्य का शरीर दुर्लभ है यदि नाश होगया तो फिर न मिलेगा इससे इस मनुष्य तन को दुर्लभ जानकर गोविन्दजीका भजन कर यदि पूछो कि गोविन्दजीका भजन क्या है तो गोविन्दजी से अतिरिक्त कोई नहीं जिस पुरुषका गोविन्दजी में निश्चय है वह स्नान, ध्यान, पूजन, तर्पण, भोजन, शयनादि सम्पूर्ण कार्यों में गोविन्दजीही को व्याप्त समझताहै यदि तुम्हारी इच्छा नग्न होने की है तो सूक्ष्म अहंकार को त्याग करो और यह समझो कि न मैं किसी का हूं न कोई मेरा है जन्म मरण सूक्ष्म अहंकार से होता है जब इतना ज्ञान प्राप्त होजावेगा तब आपही आप जन्म मरण से मुक्त होजाओगे यदि शंका करो कि सूक्ष्म अहंकार क्या वस्तु है तो समझो कि सिवाय गोविन्दजी के और किसी को मानना यही सूक्ष्म अहंकार है तुमको उचित है कि इस क्षणभंगी शरीर की प्रीति को त्याग करके श्रीगोविन्दजी से जाकर मिलो, इतनी वार्त्ता सुनकर मैत्रेयजी बोले कि अब आप कृपा पूर्वक मुझे ध्रुवजीकी कथा सुनाइये तब पराशरजी बोले कि तुमको ध्रुव की कथा से क्या प्रयोजन है तुम आपही शरीरके भ्रम बिषे बँधे हो और चाहतेहो कि ध्रुवकी कथा सुनकर मुक्त होजावें यह अति दुस्तर है यदि भ्रम को त्याग दो तो तुमभी ध्रुवके समान होसक्ते हो तब मैत्रेयजीने

उत्तर दिया कि हे महाराज ! जिसप्रकार यह भ्रम निवृत्तहो दया करके मुझको वह उपाय बतलाइये तब पराशरजी बोले कि तुम अतीत होजावो तो निर्वाण पदको प्राप्तहोगे तब मैत्रेय जीने कहा कि अब आप क्यों विलम्ब करते हैं जो आज्ञा दीजिये मैं उसे करने पर उद्यतहूं तब पराशरजी बोले कि मैं अतीत नहीं हूं न दंड न कमंडलुही धारण कियेहूं न संन्यासीहूं न वैरागी हीहूं तब मैत्रेयजीने पूछा कि मैं कहां जाऊं और क्याकरूं तब पराशरजीने कहा कि कुछ मतकरो केवल अतीत होजावो फिर मैत्रेयजीने कहा कि आपही दयाकरके मुझको अतीत करलीजिये तब पराशरजीने उत्तर दिया कि जो मैं तेरे केश और दाढ़ी मूंडूं तो दिन प्रति बढ़ेगी और मंत्र नहीं जानता जो सिखापन करूं नख और शिखा तो सदा मेरे बढ़ते हैं और न कुछ मेरे पास है जो तुझे सिखाऊं तब मैत्रेयजी बोले कि अब मुझको उचितहै कि जो नख और शिखा बढ़ेंगे उनको न कटाऊं तब पराशरजी बोले कि तुम क्या करोगे यह आप से आप बढ़ते हैं मैत्रेयजी ने कहा कि मैं रोताहूं तब पराशरजी बोले कि रोदन को त्याग करके अतीत हो तब मैत्रेयजी ने उत्तर दिया कि बड़े आश्चर्य की बात है कि जो मैं अतीत होताहूं तो रोकते हैं और बार २ अतीत होने की आज्ञा भी देते हैं इस द्विविधा में क्या उपाय कर्त्तव्य है इस शोच बिचार में व्याकुल होरहाहूं तब पराशरजी बोले कि जब तू अतीत होवेगा तब तेरी मनरूपी पृथ्वी में पुष्प की तरह यह अहंकार खिलेगा कि अब मैंने सर्वस्व त्याग दिया इस लिये मेरे ऊपर ईश्वर दयाकरेंगे और मैं परमहंस हूंगा यदि तुम्हारी कांक्षा इन पदवियों के लेने की है कि इस स्वप्नवत् संसार में सब लोग मेरी प्रतिष्ठा करके प्रतिष्ठित समझें तो तू अतीत होजावे तब मैत्रेयजी बोले कि इस असत्य कामना से निर्लोभ हो मेरी इच्छा तत्त्व जानने कीहै कि जिससे अपने तत्त्व को प्राप्त होऊं तब पराशरजी बोले कि तू मूल ज्ञानको नहीं

पहुंच सक्ता जो ध्रुव की नाईं पांच वर्ष का हो कि तत्त्वों का जानना निर्लज्जों का काम है, मैं पण्डित नहीं हूं जो तुझको मूल विद्या समझाऊं परन्तु इतना समझना कि एक तूही है दूसरा नहीं यही तत्त्व है तब मैत्रेय जी ने कहा कि मैं ब्रह्मचर्य्य करूं कि जिस से ब्रह्मचारी होजाऊं। तब पराशरजी बोले कि ब्रह्मचारी पद का अर्थ कहो, इसी को ब्रह्मचारी कहते हैं कि स्नान करिके कम्मल और धोती लपेट ले मैत्रेय जी आप भलीप्रकार जानते हो आपही कहिये कि ब्रह्मचारी किसको कहते हैं तब पराशरजी ने उत्तर दिया कि जो ब्रह्म को जानै वही ब्रह्मचारी है ब्रह्म को जाने बिना ब्रह्मचारी नहीं होता और ब्रह्म भी वही है काहेते कि यदि ब्रह्मही है तो उसमें चार कोन हैं। मेरेपास दंड कमण्डलु नहीं है कि तुझे ब्रह्मचारी करूं तब मैत्रेय जीने कहा कि कुछ उपदेश कीजिये पराशर जीने कहा कि कोई श्रोता तो दिखाई नहीं पड़ता मैं आपी आप किसको उपदेश करूं, तब मैत्रेय जी ने कहा कि हस्तामलक की कथा सुनाइये कि वह कैसा था तब पराशर जी बोले कि हस्तामलक आपही नारायण है दूसरा कोई नहीं सुनकर मैत्रेय जी बोले कि मैं आप से भय मानता हूं कि आप मुझको भस्म न करदेवें, तब पराशर जी बोले कि तू क्या है मैं अपनी शक्ति से सम्पूर्ण संसार को भस्म करसक्ता हूं, मैत्रेय जी ने कहा कि महाराज अब मैं जो प्रश्न करूंगा बड़ी नम्रता से पूछूंगा यह सुनकर पराशर जी बोले कि हे मैत्रेय जी! तुम कपटी लोगों की रीति को त्यागकर ऐसा निर्णय निरूपण करो कि जिससे जीव और ब्रह्म दोनों से निवृत्त होजाओ तब मैत्रेय जी बोले कि यदि यह कार्य मुझ से होसक्ता है तो मैं अभी करूंगा तब पराशर जी बोले तुम ब्रह्म जानने की इच्छा रखते हो इससे जो कार्य तुमसे न होगा उसको दूसरा कौन करसक्ता है तब मैत्रेय जी बोले कि जीव किसको कहते हैं तब पराशरजी ने उत्तर दिया कि किसी ने यह नहीं कहा कि यह

जीव है, श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में अर्जुन जो यह उपदेश किया है कि जैसे हम अनादि हैं इसी तरह जीव भी अनादि है और आदि, मध्य, अंत से रहित है मैत्रेय जीने कहा यह जीव क्या वस्तु है तब पराशर जी बोले कि जो तुमने जीव की व्यवस्था अबतक न जानी तो मेरे सत्संग से तुमको क्या लाभ हुआ यदि अपने तत्त्व को जानना चाहते हो तो मैत्रेय को बीच से निकाल डालो क्योंकि शरीर बहुत हैं और जीव एक है, यदि कहो कि सर्व जीव है तो मैं कैसे जानूं यह तो तुम स्वयं जानते हो कि जीवही से शरीर उत्पन्न हुआ है इससे जीवही शरीर का कर्त्ता है यह सुनकर मैत्रेयजी ने कहा कि जीव के शरीर नहीं यह हमको किसतरह ज्ञात होवे तब पराशर जी ने उत्तर दिया कि यह जो सम्पूर्ण सृष्टि दृष्टिगोचर है इसी को जीव कहते हैं तब मैत्रेय जी ने पूछा कि यदि जीव सर्वमय है तो उसका रूप किसप्रकार का है तब पराशर जी बोले कि हे मैत्रेय जी ! जोकुछ दिखलाई देता है उसी का रूप होता है इसप्रकार से तुम भी जीव हुये तब मैत्रेय जीने पूछा कि हे महाराज ! इन दोनों पदों से किस तरह निवृत्ति होवे यदि कुछ नहीं है तो आपही त्याग है तब पराशर जी ने समझाया कि ये दोनों तेरी अविद्या से उत्पन्न हुये हैं जब तू अपने स्वरूप का ध्यान करेगा तब ये नाश होजावेंगे तब मैत्रेय जी ने कहा कि यदि ये मेरे अज्ञान से उत्पन्न हुये हैं तो कृपा करके बतलाइये कि इस में मेरी क्या हानि है तब पराशर जी बोले कि यही बड़ी हानि है कि यदि अंधेरी रात्रि में तुम्हारे पैर में रस्सी लपट जावे और तुमको भ्रम से अनुमान होवे कि मेरे पैर में सर्प काटता है तब मैत्रेय जी ने कहा कि यदि अज्ञान से मैंने रस्सी को सर्पही माना तो मेरी क्या हानि हुई तब पराशर जी ने समझाया कि यही बड़ाभारी क्लेश हुआ कि तुम्हारी जान पैर में सर्प लपट गया है और काटेगा यही भेद जीव और ब्रह्म में वेद वर्णन करते हैं तब मैत्रेय जी ने कहा

कि तुम्हारे कहने से बोध होता है कि जबतक कुछ त्याग न करूंगा तबतक कुछ न होऊंगा जब मैंने पहिले पूछा था कि कुछ उपाय बतलाइये तब आपने समझाया था कि आपही आप हैं अब कहते हो कि जो कुछ करो वह होवे तब पराशर जी ने कहा कि मैं और तू कुछ नहीं यह जीव अद्वितीय ब्रह्म है तब मैत्रेय जी बोले कि मैं अहंकार के बंधन में फँसकर किसतरह कहूं कि जीवआत्मा नहीं हूं, तब पराशर जी बोले कि जिसका रूपही दिखलाई न देवे उसका नाम किसप्रकार रक्खाजावे, तब मैत्रेय जीने कहा कि सुनकर कहताहूं तब पराशरजी बोले कि जिससे सुनाहै उससेही पूछो तब मैत्रेयजीने कहा कि वह भी सुनीहुई कहताहै तब पराशरजी बोले कि सब लोग परस्पर कहीहुई सुनते हैं परन्तु मूल वस्तुको कोई नहीं जानताहै यदि तुमको रूपके जाननेकी इच्छाहै तो अतीत होवो तब मैत्रेयजी बोले कि मुझको उदास प्राप्त हुआहै इससे चाहताहूं कि उदासी होजाऊं तब पराशरजी बोले कि यह जो भूत, प्रेत और पशु, पक्षी आदि वनमें घूमते फिरते हैं येभी सब उदासी हैं तू भी इन्हीं में जाकर मिल जा और हे कपटी, दग़ाबाज ! मनको माया अरु पुरुष से उदास कर जिससे उदासीहो जिसने ऐसा समझा है कि स्त्री, पुत्र और घरके छोड़ने से उदासी होताहै वह मिथ्याहै, घर यही शरीर है इससे इस शरीरके अभिमान में जो बंधाहै वही गृहस्थ है और जो देहके अभिमानसे रहित होकर भगवान्के सिवाय किसीवस्तु को न जाने उसको अतीत कहते हैं हे मैत्रेयजी ! जिसको सांसारिक पदार्थों की इच्छाहै उसको मेरे वचनों से कुछ भी सुख नहीं मिलसक्ता और जोकि नामरूप से रहितहै उसको सुखरूपही है जिससमय यह नामरूपका आवरण अर्थात् पर्दा नाशहुआ तब जीवन मरणका शोच नहीं करता क्योंकि नाम और रूप स्वयं प्रकाशित नहीं हैं तुम्हीं से प्रकाशित होते हैं इससे इस शोचको त्याग करो इसलिये कि यही अभिमान चौरासी लाख योनियों में पहुं-

चाताहै सन्तलोगभी यही उपदेश करते हैं कि नाम,रूपको मध्य से उठाकर आदि अन्त में श्रीनारायणहीको देखो, यद्यपि काम, क्रोध और भीतर बाहरकी सब इन्द्रियां स्थित रहती हैं परन्तु जब नाम,रूप से रहितहुआ तब सब इन्द्रियां व्यर्थ होजाती हैं हे मैत्रेयजी ! मैं तुमको तत्त्व दिखाताहूं समझो कि, न तू पराशरहै और न मैं मैत्रेयहूं सब श्रीनारायणही हैं परन्तु अतीतहो, तब मैत्रेयजीने कहा, कि तुम वह कहतेहो कि मैं अतीत और गृहस्थ दोनों नहीं फिर अतीत किसप्रकार से होऊं तब पराशरजी बोले कि अतीत होना यहीहै कि श्रीगोविन्दजीके सिवाय और कोई दूसरा नहीं है जब ऐसा भान होताहै तब अतीत और गृहस्थ में कुछ भी अन्तर नहीं है तब मैत्रेयजीने पूछा कि यदि आपही कुछ नहीं है तो क्या होवे तब पराशरजीने कहा कि जो अतीत न होवेगा तो काल दुःख देवेगा तब मैत्रेयजीने कहा कि मुझको कालका भय नहींहै क्योंकि मैंने जानलिया कि सर्वमय नारायण ही हैं जब नामरूप मुझमें नाशहुआ और काल भी नामरूप है तब नाम कहांरहा, तब पराशरजी बोले कि तू भी ध्रुव हुआ अब ध्रुवकी कथाको श्रवणकरो तब मैत्रेयजीने कहा कि मुझको दया करके गुदड़ी दान कीजिये अब मैं अतीत होताहूं तब पराशरजी बोले कि अतीत तत्त्वमें गुदड़ी की आवश्यकता नहींहै वह गुदड़ी नहीं रखता तब मैत्रेयजीने कहा कि अब ध्रुवकी कथा कहिये तब पराशरजी बोले कि तुमको विश्वास नहीं है तुमको भस्म करना उचित है तब मैत्रेयजीने कहा कि मैं नहींहूं ईश्वर है क्या इस ईश्वरहीको भस्म करोगे तब पराशरजी बोले कि यह सामर्थ्य किसमें है कि ईश्वरको भस्मकरे तब मैत्रेयजी बोले कि अब ध्रुव की कथा वर्णन कीजिये तब पराशरजी बोले कि ध्रुवके स्थान में आप्त, काम और निष्काम ये तीनों सन्त प्राप्तहुये तब मैत्रेयजीने कहा कि जो आप्त, कामथे वे किस मनोरथ से राजपुत्रके पासगये तब पराशरजी बोले कि ऐसा कहना तुमको न चाहिये सन्तोंका

राजपुत्र से कुछ प्रयोजन न था इसीके दृष्टान्त में एक इतिहास राजा जड़भरतका वर्णन करताहूं चित्त लगाकर श्रवणकरो, जड़भरतकी कथा। एक समय राजा भरतजी इन्द्र जो देवतों के राजाहैं उनकी तपस्या करने लगे जब जड़भरतको तपस्या करते तीनमास व्यतीत होगये तब इन्द्रने अपना दर्शन दिया कि जिस को देखकर जड़भरतजी बहुत हँसे और हँसकर यह प्रश्न किया कि आप कौनहैं जो मुझपर कृपाकरके अपने दर्शनदिये और मुझ को कौनसा वरदान दीजियेगा तब इन्द्रने कहा कि मेरे लिये तुमने इतनी कठिन तपस्याकी और मुझको बुलाया और जब मैं तुम्हारे सम्मुख आया तो पूछतेहो कि तुम कौनहो, हेजड़भरत! जो तुम्हारी इच्छाहो वह मैं पूर्णकरूं तब जड़भरतजीने पूछा आप स्वयं किसी बस्तुके देनेकी शक्ति रखते हैं या किसी से दिलावेंगे तब इन्द्रने उत्तरदिया कि मुझको तो यह शक्ति नहीं है परन्तु ब्रह्माजी से प्रार्थना करूंगा वे तुम्हारी कामना पूरी करेंगे तब जड़भरतजीने कहा कि आपसे मेरा मनोरथ सिद्ध न होगा इससे अब मैं ब्रह्माजीकी तपस्या करूंगा इतना कहकर फिर सुमेरु पर्वतकी कन्दरामें जाकर ब्रह्माजीकी तपस्या करनेलगे जब चार मास व्यतीतहुये तब ब्रह्माजीने दर्शन देकर कहा कि हे पुत्र! तू धन्यहै मैं तेरी तपस्या से बहुत प्रसन्नहुआ अपने मनका चाहा हुआ वरदान मांगले तब जड़भरतजीने कहा कि आपके पास दण्डकमण्डलुके सिवाय और कुछ दिखलाई नहीं देता मुझे आप वरदान कहांसे देंगे तब ब्रह्माजी ने कहा कि तुम्हारी जो कुछ इच्छा होवे वह मांगो परन्तु सबका विष्णुही दाताहै तब जड़भरतजीने कहा कि अब आपसे मुझसे कुछ प्रयोजन नहीं है मैं विष्णुजी से आपही मांगलूंगा तब ब्रह्माजी बोले कि मेरा दर्शन निष्फल नहीं होता कुछ तो मांगलो तब जड़भरतने कहा कि आप दयाकरके मुझको यही वरदान दीजिये कि श्रीविष्णुजी का दर्शन प्राप्तहोवे जब आपकी दयासे उनका दर्शन पाऊंगा

तब जो मेरी इच्छा होगी वह उन्हीं से मांगलूंगा तब ब्रह्माजीने विष्णुके मिलनेका उपदेशकिया तब जड़भरतजी ब्रह्माजी से उपदेश पाकर बद्रिकाश्रममें गये और वहां पहुंचकर उस मन्त्रको जपनेलगे जब जप करते २ छः मास व्यतीतहुये तब श्रीविष्णु भगवान् चतुर्भुजरूप धारणकिये गरुड़पर सवार हँसतेहुये जड़भरतके सम्मुख आके खड़ेहुये तब जड़भरतजीने उठकर और दण्डवत् प्रणाम करके वेदोक्त विष्णुकी पूजाकी, जब नारायण उक्त पूजाको ग्रहण करचुके तो प्रसन्न होकर जड़भरतजी से बोले कि हे पुत्र! जो तेरी अभिलाषा होवे वह वरदान मांग मैं सब विधिसे तेरा मनोरथ सिद्ध करूंगा तब जड़भरत बोले कि इन्द्र और ब्रह्मामें तो यह शक्ति नहीं है कि वे कुछ देसकें कहिये आपको यह दान शक्ति कहांसे प्राप्तहुई तब विष्णुभगवान् जड़भरत को समझाकर बोले कि वे लोग विज्ञान नहीं रखते और न आपही को जानते हैं कि हम कौनहैं और मैं स्वयं प्रकाशरूपहूं मुझ में दूसरेका प्रवेश नहीं और सम्पूर्ण संसार मेरेही प्रकाश से प्रकाशितहै तब जड़भरतजी बोले कि मेरा प्रयोजन आपसे भी सिद्ध न होगा क्योंकि मैं भी अपने स्वरूपको जानताहूं कि मैंही हूं अब आप जहांसे आये हैं वहां जाइये यह सुनकर विष्णुभगवान् बोले कि जो तुम जानते थे तो फिर इतनी कठिन तपस्या तुमने वृथाकी तब जड़भरतजी बोले कि यह केवल आप लोगों के तपकी परीक्षा लेनेके लिये मैंने कठिन तप किया था परन्तु अब निश्चितहुआ कि सिवाय एक परमात्माके और कोई न कुछ देसक्ता और न कुछ लेसक्ताहै इससे हे मैत्रेयजी! जब सन्तोंको ईश्वर से भी जो तीनलोकका स्वामीहै कुछ प्रयोजन नहीं रहता तब राजपुत्र से उनका क्या मतलब निकलसक्ता था इस वार्ता को सुनकर फिर मैत्रेयजीने पराशरजी से पूछा कि महाराज वे तीनों सन्त किसप्रकार से बिदाहुये तब पराशरजीने उत्तरदिया कि वे तीनों सन्त अपने आप्त, काम स्वरूपके पास आये थे तब

मैत्रेयजीने पूछा कि हे महाराज! जब स्वरूप एकही है अन्य नहीं तो फिर उसमें आना जाना किसप्रकार होसकाहै तब पराशरजी बोले कि मैं एक इतिहास तुमको सुनाताहूं उसको ध्यानसे सुनो और निश्चयकरो कि स्वरूप में आना जाना भी है। बामदेवजी का इतिहास॥ एक समय बामदेवजी तपस्याके निमित्त बदरिकाश्रम में मेरे स्थानपर आये तब मैं उनके एक हाथमें दण्ड और दूसरे में कमण्डलु देखकर बहुत हँसा और उनसे पूछा कि हे स्वरूप! जब मुझको तुम्हारे साथ और तुमको मेरे साथ किसी प्रकारका बैर बिरोध नहीं है तब इस दण्डको बिना प्रयोजन क्यों धारण कियेहो तब बामदेवजी बोले कि तुम्हीं मेरे शत्रु हो, मैंतो सर्व स्वरूपहीको देखताहूं परन्तु फिरभी तुम कहतेहो कि कुछ कर तो स्वरूप होवे इससे तुमको दण्ड देना उचित समझके इस दण्डको धारण कियेहूं फिर पराशरजीने पूछा कि कमण्डलु किस लिये धारेहो तब बामदेवजीने कहा कि गोविन्दसे अतिरिक्त पदार्थ मनसे धोनेके लिये यह कमण्डलुहै यदि कहो कि गोविन्द से अतिरिक्त क्या वस्तुहै कमण्डलु भी तो गोविन्दहीका रूपहै, तब पराशरजी बोले, कि आपही कहतेहो कि चराचर, स्थावर, जंगम इत्यादि जितनी सृष्टिहै यह सब विष्णुहीका स्वरूपहै फिर क्या विष्णुको विष्णुही से धोतेहो तब पराशरजी बोले बिष्णु भगवान्‌ही सम्पूर्ण जगत्‌के कर्त्ताहैं यदि ऐसा कहा तो क्या हानि है, फिर पराशरजीने पूछा कि आप कहांसे आते हैं तब बामदेव जीने उत्तर दिया कि न कहीं से आयाहूं न कहीं जाऊंगा, तब पराशरजीने कहा कि मेरे देखतहुये आप चले आतेहैं अब कहिये आप कौनहैं, तब बामदेवजी बोले कि मैं शिवहूं यह सुनकर पराशरजीने पूछा कि शिव एकहैं या दो तब बामदेवजी इसप्रश्नको और भी निर्वचनीय समझकर व मौन धारणकरके कुछ उत्तर न देसके तब मैंने कहा यदि शिवहै तो तपस्या से क्या प्रयोजनहै तब बामदेवजी बोले कि हे पराशरजी! यदि शिवही है तो जाना

आना और तपस्या भी शिवही है मध्यमें दूसरा कोई नहीं क्योंकि यह शरीर पंचभौतिकहै विचारो तो यह पांचो न कहीं से आये और न कहीं जायँगे सब अपने वर्गमें मिलजाते हैं, तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी! इससे निश्चय होताहै कि आना जाना भी स्वरूपही है अब श्रवणकरो कि उक्त तीन सन्तों में एक मैं दूसरा अवधूत दत्तात्रेय और तीसरा बामदेव यहही ध्रुवके पासगये थे जब उसने सन्तों को आते देखा तो दूरही से दौड़ा और दण्डवत् करके मिला तब पराशरजी बोले, कि हे ध्रुवजी! जो तुमने समझा कि ये सन्त हैं यह भूलहै यह लोग सन्त नहीं हैं जो सन्त होते तो अटल पदवी चाहते तब ध्रुवजी ने उत्तर दिया कि तुमलोग समान भाव रखते हो इससे तुमको सन्त कहते हैं तब अवधूत ने पूछा कि यदि बराबरहै तो पण्डित और मूर्ख में क्या भेदहै तब ध्रुवजी बोले कि तुम कौन हो तब अवधूत ने कहा कि तुम्हारा रूपहूं फिर ध्रुवने पूछा मैं कौनहूं तब अवधूत ने उत्तर दिया कि तुम मेरा स्वरूप हो तब ध्रुवने फिर भी पूछा कि तुम कौनहो तब अवधूतने उत्तर दिया कि मैं नहींहूं तब ध्रुवजी बोले कि यदि तुम्हीं हो तो तुम्हारा स्वरूप कैसाहै तब अवधूत ने उत्तर दिया कि जैसा तुम्हारा आकार है इस वार्त्ता के सुनने से ध्रुव बहुतही आश्चर्य को प्राप्तहोकर मौन होरहे तब अवधूतनेकहा कि मौन मतहो तब ध्रुवने उत्तर दिया कि आपकी इस वार्ताके सुनने से मेरे चित्तमें इतना सन्देह उत्पन्न हुआ है कि जिससे बुद्धि भ्रमित होकर मुख से कुछ कहा नहीं जाता तब अवधूत ने कहा कि तू इसी ज्ञानके बलसे अटलपदवी चाहता था कि मैं बहुत कालतक अचल रहूंगा, तू स्वयंशक्तिमान् और अचल होना चाहता था, हे मूर्ख! तुझे लाज नहीं आती, तू नहीं जानता कि आत्मा अविनाशी है, यदि तू कहे कि शरीर नाशवान् है तो तुझ-को इसतरह समझना चाहिये कि जैसे पुरुष पुराने वस्त्रको त्याग कर नवीन को धारण करलेता है तैसेही आत्मा भी एक शरीर

को त्यागकर दूसरा शरीर धारण करलेता है इससे शरीर भी एकही है हे ध्रुव! मैं नहीं चाहता कि शरीर मेरा सदा बनारहे क्योंकि जो अविनाशी पदार्थ है उसके दृढ़करनेमें कुछ कर्त्तव्य की आवश्यकता नहीं है जब ईश्वर ने तुझपर दयाकी तो तुमने क्या मांगा? यह अटलपदवी ऐसी है जैसे किसी नगर में एक पहाड़ की चोटीपर मन्दिर बनावे, उस मन्दिरको अचलमन समझना चाहिये शरीररूपी पहाड़ में मनरूपी आत्मा भी एक है अर्थात् जब यह पंचभौतिक शरीर पंचत्व को प्राप्त होताहै तब सब तत्त्व अपने अपने वर्ग में मिलजाते हैं और वे अविनाशी हैं इससे शरीर को भी नाशवान् न समझना चाहिये, इससे क्या लाभ हुआ तब ध्रुवजीने पूछा कि हे महाराज! फिर किस उपाय से स्वरूप का ज्ञानहोवे तब अवधूतने उत्तर दिया कि जिस उपाय से अटलपद प्राप्तहुआ है उसी से आत्मा को भी पावोगे तब ध्रुवजी ने प्रश्न किया कि हे महाराज! अबदया करके मुझे उस की प्राप्ति के मार्गका भी उपदेश कीजिये यह सुनकर अवधूत मौन होरहे कुछभी उत्तर न देसके तब वामदेवजीने उत्तर दिया कि आत्मा से अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं यह समझनाही उसके मिलने का पूरा रास्ता है तब ध्रुवजीने कहा कि अब कृपापूर्वक मुझे उसका निश्चय कराइये कि जिससे मेरा यह द्वैतभाव निवृत्त होकर जीव और आत्मा दोनों में ऐक्यता प्राप्त होवे तब वामदेवजीने कहा कि पहिले उन संतोंका सत्संग करना चाहिये जो लोग ज्ञान के ज्ञाताहों फिर वेद शास्त्र को श्रवण करके उस पर निश्चय करना और मन से विचारना कि इस शरीर में जो जड़ता को प्राप्त होकर सब चीजों का जाननेवाला है चैतन्य पदार्थ कौनसा है और हे ध्रुवजी! यह भी बतलाओ कि तुम जड़ हो अथवा चैतन्य, तब ध्रुवजीने कहा कि मैं चैतन्य हूं, अब दया पूर्वक मुझे यह समझाइये कि मैं चैतन्यता में क्या वस्तु हूं, तब वामदेवजीने उत्तर दिया कि तुम सत्चित आनन्द स्वरूपहो, फिर

ध्रुवजीने कहा कि अब कृपा करके मुझे वैराग्य का उपदेश कीजिये,यह सुनकर वामदेवजी को कुछ उत्तर न आया और मौन होरहे तब पराशरजी बोले कि हे ध्रुवजी! अपने को कुछ भी न समझना इसीका नाम वैराग्य है जब तुम समझोगे कि मैं ध्रुव नहीं हूं तब भ्रम स्वतः नाश होजावेगा तब ध्रुवजी ने कहा कि हे महाराज! जो मैं नहींहूं तो कौन है, तब पराशरजी बोले कि मैं हूं, फिर ध्रुवजी ने उत्तर दिया कि जब तुम हो तो मैं कैसे नहीं हूं तब पराशरजीने कहा मैं अद्वितीयहूं, तब ध्रुवजीने कहा यदि आप अद्वितीय हैं तो मैं भी अद्वितीय हूं, तब पराशरजी ने पूछा कि अटल पदवी किसको कहतेहैं तब ध्रुवजी ने उत्तर दिया कि अटल पद कुछ पदार्थ नहींहै केवल कथनमात्र है, तब पराशरजी बोले कि जब अटलपद कुछ पदार्थही न था तब तुमने उसकी चाहना क्योंकी, इसप्रकार आपस में वार्तालाप करके तीनों हँसकर कहनेलगे कि हम तीनों यहां क्या करने आये हैं,आत्मा तो स्वयं ब्रह्म है, इससे ध्रुवको [illegible] कहैं, तब ध्रुवजीने कहा कि हे पराशरजी! मुझको मोक्षकी इच्छा कि यदि कैसे प्राप्त होवै, तब पराशरजी ने कहा कि हे ध्रुवजी [illegible]र दिया का त्यागकरना इसीको मोक्ष कहते हैं जो तुम मोक्ष बहुतही [illegible]हते हो तो वासना का त्याग करो, तब ध्रुवजी ने [illegible] कि मौन महाराज! वासना तो पिशाच की नाई मनको पक[illegible]ने से दूर होने के लिये कुछ मंत्र उपदेश कीजिये, तब पराशर[illegible] कि वैराग्य द्वारा इससे निवृत्त हूजिये अर्थात् यह समझ[illegible] कहा मैं कोई चीज नहीं हूं जब तुमको ऐसा भान होजायगा तब वासना तुमको स्वयं त्याग देगी, फिर ध्रुवजी ने पूछा कि वैराग्य क्या वस्तु है, तब हे मैत्रेयजी! मैंने उसको वैराग्यका ऐसा उपदेश किया कि वह अपने आपे में न रहा परन्तु मैं तुझ से नह[illegible] कहताहूं क्योंकि तू मेरा शिष्य नहीं है तब मैत्रेयजी बोले कि मैंने कुछ भक्ति नहीं की इसी से आप मुझसे गुप्त रखते हैं तब

पराशरजी बोले कि तू ब्राह्मण है इससे मुझको तेरे ऊपर दया आती है तब मैत्रेयजी ने कहा कि यदि आप मुझको ब्राह्मण समझते हैं तो आप भी ब्राह्मण होवेंगे तब पराशरजी बोले कि तुम मेरी बराबरी करते हो मेरे शिष्य नहीं हो इसी से मैं तुम को उसका उपदेश नहीं करता हूं तब मैत्रेयजी ने पूछा कि तुम कौनहो तब पराशरजी ने उत्तर दिया कि तुम अविद्या और अहंकार में फँसेहो इससे मुझको नहीं पहिचानते अब ध्रुवकी कथा श्रवण करो,—तब ध्रुवजी बोले कि मैं बासना का किस प्रकार से त्यागकरूं तब पराशरजीने समझाया कि ब्रह्मको अद्वितीय मानना यही बासना का त्याग है तब ध्रुवजीने पूछा कि यदि श्रीगोविन्द अद्वितीय हैं तो मैं क्या हूं तब पराशरजी ने कहा यह निश्चय करो कि श्रीगोविन्दजीही हैं तब ध्रुवजी बोले कि यदि श्रीगोविन्दजीही हैं तो मुझको भजन से क्या प्रयोजन है तब पराशरजीने उत्तर दिया कि भजन करना तपस्या समझो, और जानो कि सर्व मैंही हूं, हे ध्रुवजी ! संत लोग अपने में मग्न होकर अटल पदवी से छूटते हैं एक समय शिवजी ने मुझ से कहा कि मैं तुझे तीनों लोककाराज्य देताहूं तब मैंने कहा कि मुझे राज्य से कुछ प्रयोजन नहीं लेऊं या न लेऊं तब शिवजी ने समझाया कि राज्य के लेने से तेरी कोई कामना बाकी न रहेगी मनकी सम्पूर्ण अभिलाषा पूर्ण होजायगी और तू जो चाहेगा वही प्राप्तहोगा तब मैंने कहा कि यदि मैं ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ तो तुम तीनों देवताओं को ईर्षा उत्पन्न होगी कि पराशर संसार का परमेश्वर हुआ इससे ऐसी राज्य से मेरा कुछ लाभ नहीं है तब ध्रुवजीने कहा कि हे पराशर ! मैं तुमको अटल पदवी देताहूं इसको स्वीकार करो तब पराशरजी ने कहाकि मैं अटल पद लेकर क्या करूं कि जिससे बंधन में फँसना होता है तब ध्रुवजी ने अवधूत से पूछा कि हे महाराज ! मैं इस संकट कभी छूटूंगा तब अवधूत से कहा कि प्रतीति दोनों कर्म हैं

ग्रहणकरो अवधूतने उत्तर दिया कि मेरी इच्छा इसके लेने की नहीं है तब बामदेव से कहाकि तुमहीं इसपद को स्वीकार करो उन्होंने उत्तर दिया कि यह मलिन बुद्धि तुम्हारीही है यदि एक शिवरूप है तो चल और अचल दोनों पदवियों को भस्म करके अपने शरीर पर मल लेता है यह उत्तर पाकर ध्रुव उस बन में पागल की तरह पुकार २ कर कहनेलगा कि कोई मुझसे अटल पदको लेलेव तब उस बनके पत्ते और घास बोल उठे कि श्री-गोविन्दजी भीतर और बाहर सब जगह व्याप्त हैं अटल किस जगह पर है तब ध्रुव चित्र की तरह पृथ्वी पर गिरपड़ा. पराशर जी बोले तुम यह समझो कि मैं नहीं हूं और जब तुमही नहीं हो तब अटल पदवी और तुम सब गोविन्दही हो तब ध्रुवजी ने कहा मेरा रूप क्या है तब अवधूत ने कहा मैं हूं तब ध्रुवजी ने कहा कि तू कौन है अवधूत ने कहा तू, तब ध्रुव आप विषे लीन हुआ पराशरजी ध्रुवकी यह दशा देखकर बोले कि इस बालक का तो अब देहान्त होगया तब अवधूतजीने उत्तर दिया कि जिसने मेरे बचनोंको बुद्धिरूपी श्रवणोंसे सुनाहै वह फिर किसी प्रकार जीता नहीं रहसक्ता उसकी यही व्यवस्था होती है फिर बामदेवजी बोले कि तुमने बड़ा बुरा कास किया कि एक राज-पुत्र को मारडाला तब अवधूतने कहा कि राजपुत्र कहां है वह साक्षात् शिवरूप है जैसे अपनी इच्छा से उत्पन्न हुये थे वैसेही चले गये ॥ इति ध्रुवका इतिहास प्रथम अंश समाप्त हुआ ॥

अब दूसरे अंशका प्रारंभ करते हैं ॥

मैत्रेयजी बोले कि हे पराशरजी महाराज! अब दयादृष्टिसे मुझ-से वह उपाय वर्णन कीजिये कि जिससे संसारके बंधन से छूटकर मुक्तिको प्राप्तहोऊं तब पराशरजीने कहा कि तेरा मुक्तहोना अति [illegible]िन है क्योंकि तेरीबुद्धि पुराण और शास्त्रमें पूर्ण रूपसे टिकीहै मैंने कुछ भ[illegible] [illegible] [illegible]कर बंधन के कारण हैं फिर तुमको मुक्ति

किस तरह प्राप्त होगी। तब मैत्रेयजी ने कहा कि हे गुरो! अब मैं शास्त्र का सुनना त्याग कर के और आयुध से सम्पूर्ण इन्द्रियों को काटकर अपने वश में करूंगा तब पराशरजी ने कहा कि ऐसा मत करना हे मैत्रेयजी! इस उपाय से मुक्ति का मिलना बहुत दुर्लभ है, नेत्रों से देखो श्रवण से सुनो जिह्वा से बोलो व जो जी चाहे सो करो परंतु अंतःकरण से किसी कर्म के बंधन में न फँसो बिचार करके देखो कि यह शरीर मांस, रुधिर, अस्थि और मज्जा से बनकर विष्ठा से भराहुआ है इसको काटने व दुःखदेने से क्या लाभहै, तब मैत्रेय जी ने उत्तर दिया कि तुम इस शरीर को विष्ठा कहते हो इसका भेद मुझे अच्छीतरह समझाकर कहो कि जिससे मुझको भी भासित होजावे, तब पराशर जीने कहा कि तुम चित्तलगाकर श्रवण करो मैं तुम्हारी संदेह दूर होनेके लिये इसका भेद अच्छी तरह समझाताहूं, हे मैत्रेय जी! विष्ठातीन प्रकार की होती है अर्थात् खट्टी, मीठी, और कडुई, प्रथम मीठी होती है जब धन आदि का नाश होकर दुःखमिलता है तब वह मिठाई खट्टी होजाती है और जब शरीर को दुःख मिलता है तब वही हे मैत्रेयजी! जिसको ऐसी दशा प्राप्त होती है कि प्रारब्ध के अनुसार शरीर को दुःख प्राप्त होय और वह शरीर अर्थात् सूक्ष्म शरीर से आपको भिन्न जान कर शोक न करे वही सुखी है और उसीको ज्ञानी समझना चाहिये सिद्धान्त यह है कि नारायण के बिना और कुछ न देख न सुन न कहु जब अद्वितीय आत्माहै और ऐसा भजन मनविषे तू करेगा तब आपी आप भगवत् रूप होजायगा इससे भजन कर जिससे द्वैत की निवृत्ति होवे तब मैत्रेय जी ने कहा कि जो कुछ कहो वह कथाकेसाथ कहो तब पराशरजी बोले कि आश्चर्य है कि जो कोई कथा कहताहै तू उसके कहने पर ध्यान न देकर निश्चय नहीं करताहै तो कथा कहने से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा। तब मैत्रेयजी ने कहा कि कथा और प्रतीति दोनों कर्म हैं

जो पुरुष निश्चय करना चाहे तो कथा के सुननेकी अभिलाषा करे इससे आप मेरे हित के लिये कथा वर्णन कीजिये ॥

अब ध्रुव का इतिहास सम्पूर्ण हुआ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

अब वेश्याका इतिहास प्रारम्भ करते हैं ॥

पराशर जी बोले कि एकसमय हम, अवधूत और जड़भरत तीनों संत कि जिनके स्वरूप देखने में भिन्न २ परन्तु हृदय एक थे प्रसन्न चित्त साधारण रीति से निष्प्रयोजन बदरिकाश्रम में बैठे हुये आपस में हंसते थे. कि मैत्रेयजी ने अकस्मात् आकर यह कहा कि तुमलोग निष्प्रयोजन क्यों हंसतेहो यह मूर्खों का काम है कि वे बे प्रयोजन भी हंसा करते हैं तब पराशर जीने उत्तर दिया कि हमारे हंसने में पंडित और मूर्ख दोनों न थे, कि उसी समय एक वेश्या जो हिमालय में गलने गई थी आपहुंची और वहां के बसनेवालों से पूछने लगी कि यहां कोई संतभी रहते हैं तब उन लोगों ने कहा कि नगरके बाहर कई एक संत अर्थात् परमहंस रहते हैं इस बचन को सुनकर वह वेश्या प्रसन्न चित्त होकर मेरे पास आई और हम लोगों को हंसतेहुये देखकर बोली कि मैं सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थ व भोग विलासों को त्याग कर अब आप लोगों की शरण में आई हूं इसलिये आपलोग मेरे ऊपर कृपा करके रक्षा कीजिये परन्तु हमलोगों को निष्प्रयोजन हंसताहुआ देखकर बोली कि मैंने विचार कर जाना है कि यह शरीर पंचइन्द्रिय युक्त नहीं है कि तुमलोग इस अनित्य शरीर पर दृष्टि करके व मुझ वेश्या जानकर हंसतेहो इससे निश्चित है कि तुम्हारी दृष्टि में भ्रम हुआ है मैं इसको स्वप्नमात्र जानती हूं, शुभ और अशुभ अहंकार इस शरीर का मन ते प्रकट होता है मैंने इस मन को इन सम्पूर्ण वैकारिक पदार्थों से हटाकर अ-

पने वशमें करलियाहै, जो पूछे कि मन क्या है तो इसी संकल्प विकल्प का नाम मन है कि जिससे मुझको वेश्या और अपने को पुरुष मानते हो यह मन किसीतरह वश नहीं होता इसके वश होने का उपाय वर्णन कीजिये.तब वेश्या ने उत्तर दिया कि हे अवधूत! मैं तेरा गुरू हूं इसलिये कि तू मेरे साथ वार्त्तालाप नहीं करसक्ता है इसवाक्य को सुनकर अवधूत ने कहा कि तू क्या पूछती है.तब वेश्या ने कहा कि मुझको गोविन्द जी के भजन का उपदेश कीजिये कि जिससे नारायण जी का भजन करके हिमालय में गलूं तब अवधूत ने उत्तर दिया कि तू आपही कह चुकी है कि मैं तेरा गुरूहूं इससे मैं तुझे क्या उपदेश करूं तब वेश्या ने कहा कि मुझको अपनी सौगन्द है कि जो मैं तुम को शिष्य और अपने को गुरू जानती होऊं जो पूछो कि यदि ऐसा नहीं जानती है तो किस हेतु ऐसा कथन किया कि मैं गुरू हूं तब वेश्या ने उत्तर दिया कि यहवार्त्ता केवल कथनमात्र है इसका कुछ प्रमाण नहीं है तब अवधुत ने पूछा कि यदि कथन मात्र है तो इसका प्रमाण किस हेतु करती है तब वेश्या ने उत्तर दिया कि जिसतरह से मृगतृष्णा में जलका प्रमाण होता है तब अवधूत ने कहा कि तबतो इसमें भ्रम हुआ तब वेश्या बोली की श्री भगवान् से अतिरिक्त जो वाक्य है वह भ्रम है अरु बिचार करके देखती हूं तो भगवान् से बिलग कोई पदार्थ नहीं फिर धर्म कहां रहा जो कुछ है वह उसी ब्रह्म का अवयव है तब अवधूत ने कहा कि तेरे कथन से जाना जाताहै कि जिसतरह भगवान् है उसीतरह भ्रम भी कहा जाता है इसी से तू वेश्या हुई कि द्वैत लेकर बचन कहती है तब वेश्या बोली कि हे अवधूत! मेरे वचन और लक्षणों का द्रष्टा तू किसप्रकार से हुआ कि मेरे वचनों को पकड़ता है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि तू मेरी समानता क्यों करती है मैं सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों को त्यागकर अवधूत हुआ हूं तब वेश्या बोली कि बड़े आ-

श्चर्य की बात है कि अनगिनत पुरुषों ने मेरे साथ भोग किया और मैंने इस तनको बहुत कुछ धोया परन्तु फिर भी रंचक मात्र निर्मल न हुआ तूने अहंकार पदको धोया इस से क्या किया तब अवधूत ने उत्तर दिया कि क्या कहूं तब वेश्याने पूछा कि बताओ नारायण कौन है तब अवधूतने कहा कि यह ज्ञान तो अति सुगम है जो वस्तु नेत्रों से दृश्यमान है उसीको नारायण कहते हैं तब वेश्याने पूछा कि मैं तुम्हारी इस वाक्य का किस तरह विश्वास करूं, जब किसी समय कोई पुरुष मेरे पास आता और उसी समय यदि दूसरापुरुष भी आजाता तो अपने मन में यह विचारता था कि एकतो मुझ से पहिले से बैठा है अब मैं किसतरह जाऊं इससे यदि दृश्यमान संसार विषे द्वैत का सम्बन्ध नहीं और अद्वैत का भी सम्बन्ध नहीं है तहां किसतरह देखे और कौन देखे इससे तू अवधूत नहीं है तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी! इसप्रकार वेश्याकी वार्त्ता सुनकर अवधूत अवाक् होगये कुछ उत्तर न देसके तब जड़भरतजी ने उत्तर दिया कि हे वेश्या! तूने जो कहा वह सत्य है, आत्मा में द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों पदार्थों में कुछ भी नहीं है इस से यदि देखा तो आपको देखा न और को देखा तब वेश्या ने कहा कि तू जड़भरत नहीं है, देखना बिना त्रिपुटी के नहीं होता अरु वेद भी इसी बातको कथन करते हैं कि आत्मा विषे एक अरु दो नहीं है तब जड़भरतजी बोले कि त्रिपुटी आत्मा से भिन्न कहां है तब वेश्याने उत्तर दिया कि तुम्हारी बुद्धि हँसने योग्यहै। कि भिन्न और अभिन्न दोनोंको देखतेहो, क्यों व्यर्थ हँसतेहो रोदन करो, इसी बुद्धिपर तुम कहतेहो कि हम परमहंस हैं वेश्या की इसवार्ता को सुनकर जड़भरत भी अवाक् होकर कुछ उत्तर न देसके तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी! मैंने कुछ भी न कहा क्योंकि वेश्या नारायण और जीव को अभेद कहती थी इस से मैंने मौन होना अच्छा समझा निदान जब

जड़भरत और अवधूत दोनों हारमानकर लज्जित हुये और रोदन करने लगे तब मैंने कहा कि हे मित्रो! रोदन क्यों करते हो रोना और हंसना एकही है इससे हँसनेकात्याग और रोदनका ग्रहण करना उचित नहीं है तब वेश्या हंसी और ऐसा आत्मनिरूपण करतीभई कि अज्ञानी के हृदयमें साक्षात् नारायणके विना कुछनहींहै ऐसा निश्चय करके बोली कि मुझे पूर्ण विश्वासहै कि न मैं हूं न यह संसार केवल अद्वितीय आत्माहै यह संसार जो नाशवान् है इस से अपने को निवृत्त करने का कारण नाम और रूपका नाश करना है। जब नाम और रूप का नाश होवे तब चित्त कहां जावे, जैसे समुद्र के मध्य जहाज पर बैठाहुआ काग उड़ने पर भी चारों तरफ़ जलही जल देखता है कोई स्थान ऐसा नहीं दिखाई पड़ता कि जहां विश्रामकरे, तब लाचार होकर फिर भी अपने उक्त स्थान पर जा बैठता है. तैसेही यह चित्त भी सांसारिक विषयों के निमित्त उड़ता है, अरु यही नामरूप संसार है जब नामरूप को मिथ्या जाना तब कहां जाय, जब यह बात यहांतक पहुंची तब पराशर जी मैत्रेय जी से बोले कि सिद्धान्त यही है कि आत्मा एक है और यही परमभक्ति है. फिर वेश्या बोली कि जिससमय भगवान् में चाहना उत्पन्न हुई उससमय वेश्यापद नाशहोगया क्योंकि भगवान् के विना जो कुछ दिखाई देता है वह सब मलिन पदार्थ है जो कोई मूढ़ है वहही इसमें प्रीति करता है और जो पंडित है वह किञ्चिन्मात्रभी इससे प्रीति नहीं करता। अरु काल जो सर्वज्ञ है वह धर्म में फांसी डालता है परन्तु मनुष्य को यह ज्ञात नहीं होता, इससे जो पुरुष अपने शरीर में दृष्टि रखके न्यूनाधिक्य शोचता है उसको काल अपना ग्रास समझता है, काल का भय उससमय नाश होता है जब गोविन्द का भजन करता है, हे पराशर! तुम्हारी दृष्टि संसार में फंसी है इसी से कहतेहो कि मैं पराशरहूं परन्तु यह जानो कि शरीर के मल, कृमि, भस्म यही तीन रूप हैं, तब मैंने उत्तर दिया कि हे वेश्या! तू कहती है कि

आत्मा एक है इससे मल, कृमि, भस्म भी तूही है मैं कहां हूं। तब वेश्या बोली कि पद और अपद मुझ में कुछ भी नहीं है, तब मैंने पूंछा कि यदि तुझमें नहीं तो किसमें है क्योंकि तेरे विना और कौन है। तब वेश्या बोली कि तुमको पद और अपद कैसे दिखाई पड़ा, तब मैंने कहा कि जिसतरह तुमको मल, कृमि, भस्म दिखलाई दिये, तबवेश्याने कहा कि तुम तो परमहंस हो, तब मैंने कहा ऐसा मतकहो मुझमें कल्पना नहीं है यह कल्पना तुझी में है कि जिससे अपनेको वेश्या समझती है, अब जाकर अपने शरीरको जला दे क्योंकि तू मुझको परमहंस और अपनेको वेश्या मानती है यदि तेरी ऐसीबुद्धि न होती तो हिमालय में क्यों गलने आती, यदि तुझको इसमें कुछ भ्रम न था तो इससमय तक इस नामको क्यों दृढ़ रक्खा. तूने आपही नामरक्खा और आपही पालना करती है और फेर डालती है इससे तू यहां से जाकर हिमालय में गल, तब वेश्या ने उत्तर दिया कि मुझको हिम से क्या प्रयोजन है गलना मेरा तुम्हारे बचन से होगा, काहे से कि वेश्या नाम मनरूपी नगर से निकला है यह हिम से किसीतरह नहीं गल सक्ता, किन्तु ज्ञान अग्नि से। तब मैंने कहा कि मैं अतीत हूं तुझको इस नाम से निवृत्त करूं और सच्चिदानन्द कहूं क्योंकि बहुतेरे गृहस्थ संसार के दुःख अथवा विचार से उदास होकर अतीत के निकट अतीत होने के लिये आते हैं तब अतीत उसका दूसरा नाम रखता है परन्तु मैं ऐसा अतीत नहीं हूं तब वेश्या ने कहा कि सच्चिदानन्द भी तो कल्पित नामहै तब मैने कहा कि जो कुछ कथन करनेमेंआताहै वह सम्पूर्ण कल्पना और भ्रम है, इसका कुछ परिणाम नहीं है. इसवाक्य के सुनने से वेश्या अति आश्चर्यित होकर शोचनेलगी कि क्या मैं स्वयं मुक्त हूं, हे मैत्रेय जी! वह वेश्या क्षणमात्र अहंकार को त्यागकर अपने तत्त्व को प्राप्त हुई अरु तुझमें कुछ प्रवेश नहीं देखता, मेरी इच्छा है कि तेरा अहंकार नाश होवे, परन्तु कहने से नाश नहीं होता,

तब मैत्रेयजी बोले कि आप मेरे गुरु हो मेरे चित्त से अहंकार दूर कीजिये गुरु की कृपा के बिना गर्व का नाश नहीं होसक्ता तब पराशर जी ने कहा कि सत्य कहो अहंकार तेरा नाश करूं या अपना, तब मैत्रेय जी बोले हे महाराज ! मेरा अहंकार नाश कीजिये तब पराशर जी ने कहा कि तेरा अहंकार मैं कैसे नाश करूं तब मैत्रेय जी ने कहा कि जो आप मेरा अहंकार दूर नहीं कर सक्के तो अपना आचार्य क्यों नाम रक्खा, तब पराशर जी बोले कि मेरे वचन पर विश्वास करके दूसरी वाक्य मुखसे न निकाल और नित्यानित्य से भी कुछ न पूछ जो मैं तुझसे कहता हूं उसीको सत्य जान तब मैत्रेयजी ने फिर पूछा कि जबतक मेरा सन्देह निवृत्त न हो तबतक मैं किसतरह चुप रहूं. यदि आप मुझे मरने के डरसे भयभीत करते हैं तो मुझको इस विषय में कुछ भी सन्देह नहीं है, जब मैत्रेयजी ने इसप्रकार उत्तर दिया तब पराशर जी मैत्रेय के बाल पकड़ कर अच्छी तरह से उसे ताड़ना देने लगे. तब मैत्रेय जी हंसकर बोले कि हे पराशर जी! दैत्य भी तो अपनी देह में भक्षण अर्थात् भोजन की चाहना नहीं रखते फिर तुम अपनेको क्यों शासना देतेहो मैं मैत्रेय नाम मात्र भी नहीं हूं इस से आपको न मारो, तब पराशरजी कहनेलगे कि तूने क्या समझा है मैं इसीसमय तुझको भस्मकरताहूं तब मैत्रेय जीने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारी शरणमेंहूं मेरीरक्षाकीजिये और दुःख न दीजियेमैंआपका शिष्यहूं तब पराशरजी बोले कि अभी तू कहता था कि आपको आप मारताहै अब थोड़ीहीसी ताड़ना में तुझ से द्वैत का अहंकार प्रकटहुआ, जीव के भयसे क्षमा चाहता है और कहताहै कि मेरी रक्षाकरो यदि तू अपनास्वरूप नहीं जानता और कहताहै कि श्री नारायणहै यह तेरा संपूर्णदंभ इस निमित्तहै कि मैं तुझे परमहंस जानूं हे पाखण्डी ! श्रीगोविन्दजी सर्वान्तर्यामी होकर सबके हृदयकी जानते हैं, तुझको दृढ़ निश्चय नहीं है जिसको आत्मा

निश्चितहै उसकी देह यदि नाश भी होजावे परन्तु वह अपने निश्चय से कभी नहीं फिरता, तुम्हब्राह्मण से उस दैत्यके पुत्र प्रह्लाद को धन्य है कि जिसके पिताने अच्छी तरह से उसको ताड़नादी परन्तु वह अपने निश्चय से चलायमान न हुआ तब मैत्रेयजी बोले कि हे महाराज ! दयाकरके उसकी कथा मुझेभी श्रवण कराइये कि किसप्रकार है तब पराशरजीने कहा कि तुम सावधानहो चित्तलगाकर प्रह्लादकी कथा श्रवणकरो मैं तुम्हें विस्तार पूर्वक सुनाताहूं ॥ वेश्या का इतिहास समाप्तहुआ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

हरि ॐतत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

अब प्रह्लाद का इतिहास प्रारम्भ करतेहैं ॥

नृसिंहभगवान् का प्रत्यक्ष होकर हिरण्यकशिपुको मारना और प्रह्लादको दत्तात्रेय अवधूत का उपदेश करना ॥

पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी ! अब हम प्रह्लादकी कथा तुमसे वर्णन करते हैं उसको चित्त लगाकर श्रवणकरो, सतयुग में दितिके उदर से हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दो पुत्र उत्पन्न हुये थे, कि जिनमें हिरण्याक्ष जब वाराहरूप भगवान् के हाथसे मारा गया तब हिरण्यकशिपु उसके राज्यका स्वामी हुआ और रत्नजटित सिंहासन पर बैठकर राज्य करनेलगा और ऐसा प्रतापी हुआ कि तीनों लोकका राज्य उसके अधिकार में आगया इन्द्र, यम, कुबेर, सूर्य और चन्द्रमा इत्यादि सब उसकी आज्ञानुसार अपने २ कार्यों में लीन रहनेलगे, यज्ञों का भाग भी जो देवतालोग पातेथे उसने स्वयं ग्रहण करलिया, तब सबदेवतालोग उसके भय से भयभीत होकर स्वर्गलोक को त्याग पृथ्वीपर बसने लगे । राजमन्दिर सम्पूर्ण स्फटिक मणिसे बना हुआ था कि

जिसमें लाखों सुवर्ण के कलश हीरा, मोती, मूंगा, पन्ना, जवा-
हिर इत्यादि रत्नों से भरेहुये सुभग स्थानों में अपनी शोभा से
प्रकाश करते थे और उसके सजावट की सुन्दरता देखकर मु-
नियों का भी मन स्थिर होजाताहै ऐसे विचित्र मन्दिरमें प्रह्लाद
जीका जन्म हुआ और जब बाल्यावस्था व्यतीत होकर कुछ
समझने लगे तब उनके पिता हिरण्यकशिपु ने विद्या पढ़ने के
लिये उनको गुरूके पास भेजा व विधिपूर्वक विद्यारम्भ कराके
गुरूको सौंप दिया और प्रह्लाद नित्यप्रति पाठशाला को जाने
लगे जब इसीतरह कुछ दिन व्यतीतहुये तब एक दिन हिरण्य-
कशिपुने मद्यपान करतेसमय प्रह्लाद जीको बुलाकर पूछा कि हे
पुत्र ! तुमने गुरु से जो संथापाई है वह मुझे सुनाओ तब प्रह्लाद
जी बोले कि हे पिताजी ! मैं अपनी संथा आपको सुनाता हूं इस
को एकान्त बैठ, मन लगाय श्रवण कीजिये, यह जो सम्पूर्ण सं-
सार देखने और सुनने में आताहै इसको स्वप्न कीनाईं असत्य
और मिथ्या भ्रमजानकर मैंने त्यागदिया और एकअद्वितीय ब्रह्म
कोही जाना है यह वचन सुनकर हिरण्यकशिपु ने क्रोधसे नेत्र
लालकरके दैत्यों के पूज्य शुक्राचार्य जी को जो कि उनके गुरु थे
बुलवाभेजा और बोला कि हेब्राह्मण ! तूने बड़ा अनर्थ किया कि
हमारे कुल,वंशका घातक जो विष्णुभगवान्‌है उसका जप करना
सिखाकर लड़केको खराबकरादिया मैं जो तीनोंलोकका मालिक
हूं तिसको अपने चित्त से बिसार दिया, तब शुक्राचार्य ने हिर-
ण्यकशिपु को समझाया कि हे दैत्येन्द्र ! क्रोध न कीजिये मैं
इस बालक को इस बातसे निवृत्त कराके ऐसा उपदेश दूंगा कि
प्रतिक्षण तुम्हाराही आराधन किया करैगा इतना सुनकर हिर-
ण्यकशिपु प्रह्लाद से बोला कि हे प्रह्लाद ! तेरे मनरूपी मलिन
पात्रपर जो लिखगया हैं उसको छुरीरूपी गुरू के उपदेशसे छील
नहीं तो तेरा नाश होजायगा तब प्रह्लाद जी ने उत्तर दिया कि
हे पिता ! मुझको नाश करनेवाला संसार में कौन पुरुष है नाश

करने और पालनेवाला एक विष्णुही है जो सम्पूर्ण संसारमें वायु और आकाश कीनाईं व्याप्तहै उसीको परमात्मा कहते हैं कहिये उस परमात्मा को नाश करने और दुःख देनेवाला कौन है. तब हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से कहा कि हे पुत्र ! तू मृत्युके निकट को प्राप्त हुआ है वह विष्णु कौन है कि जिसका बारम्बार तू नाम लेताहै मैं तीनोंलोक का ईश्वरहूं और सब सृष्टिमुझी से उत्पन्न हुई है ऐसे मुझ ऐश्वर्यवान् को त्यागकर तूने किसका निश्चय किया तब प्रह्लादजी ने उत्तर दिया कि हे पिता ! विष्णु अगोचर है अर्थात् नेत्रों से देखने में नहीं आता, न कानों से सुनने में आताहै और न जिह्वाही में इतनी शक्ति है कि उसके गुणानुवाद वर्णन करसके योगेश्वर उसीको परमपद कहते हैं यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने पूछा कि हे पुत्र ! वह कौन है जो आपी आपहै, हे मूर्ख ! तूने मुझको छोड़कर किसका निश्चय किया है और वह कहां है तब प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि ब्रह्म में तू और मैं नहीं है केवल वही प्रकाशवान् है तब हिरण्यकशिपु बोला कि हे मूर्ख ! मैं जानताहूं कि पापों ने तेरे मनको मलिन कर-दियाहै, सन्त लोग कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनोंप्रणव अर्थात् ॐकार से उत्पन्नहुये इससे जड़हैं एक चैतन्य आत्माहै तू इसे भगवान् कैसे कहताहै, भगवान् मायाको कहतेहैं, तू आपको त्यागकर मायामें लीनहोता है इससे मारडालने के योग्यहै और आज्ञादी कि इस पापीको मेरे नेत्रों के सामने से दूरकरो और गुरु के घर में लेजाव, फिर अध्ययनशाला में लेगये और कुछ दिन व्यतीत होनेपर एकदिन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लादसे पूछा कि तू क्या पढ़ाहै तब प्रह्लाद जी ने उत्तर दिया कि क्या कहूं प्रधान-पुरुष विष्णु जो सर्वव्यापी और इन्द्रियों और सर्वभूतोंकाकारण है उसी को बिचारताहूं और उसी का यश गाकर जप करता हूं तब हिरण्यकशिपु ने कहा कि हे रुधिर पान करनेवाले राक्षसो ! इस बालक का वधकरो यह अपने जी ने की आशा त्यागकर

कालग्रसित होरहा है, इसने अपने धर्म का भी परित्याग किया, यह हमारी जात और कुल में अग्नि उत्पन्नहुआहै,जब यह बात यहांतक पहुंची, तब पराशर जी बोले कि हे मैत्रेय! जितनात्रास प्रह्लाद को हुआ इतना तुझको होय तो तू तत्कालही कहे कि मैं ब्रह्म नहीं हूं ब्राह्मणहूं तब मैत्रेय जी बोले कि उसको क्या लाभ हुआ कि इतनी शासना देखी और अग्निनाम पड़ा, क्यों न होय कि आप को त्यागकर दूसरे को अपने ऊपर स्थित किया है तब पराशर जी बोले कि हे मैत्रेय जी! राजा की आज्ञा पाकर दश हज़ार राक्षस प्रह्लाद को शासना करने लगे और खांड़ा और गदा लेकर भय दिखाने लगे तब प्रह्लाद बोले कि यह आयुध, राक्षस, और मैं, सर्व विष्णुमय है हे राक्षसो! खांड़ा नंगा न करो कछ द्वैत भाव नहीं है, फिर राक्षसों ने नानाप्रकार की शासनायें प्रह्लाद को दीं परन्तु वह अपने निश्चय से चलायमान न हुये और जैसे थे वैसेही ठहरे रहे तब फिर हिरण्यकशिपु ने कहा कि हे प्रह्लाद! तू नीच बुद्धिको त्यागकर वैरी के पंथपर मत जा, तेरा अब भी कुछ नहीं बिगड़ाहै मैं तुझे निर्भय करूंगा तब प्रह्लादजीने कहा कि मैं कुछ नहीं. जो है सो वही है तब हिरण्यकशिपुने अतिविषैले सर्प मंगवाकर प्रह्लाद के बधकरने के लिये उसपर छुड़वाये प-रन्तु प्रह्लादजीने जो शरीर से मुक्त थे उन सर्पों को विष्णु रूपही देखा और शोचा जैसे कि ईश्वर मुझमें सूर्यकी नाईं प्रकाशित है उसीतरह सर्प और बिच्छूमेंभी प्रकाशकरताहै इससे प्रत्यक्षहै कि वह सर्वव्यापी है ऐसा जानकर कुछभी भयभीत न हुआ जब सर्पों ने उस के शरीरपर दांतलगाया तब वेसर्प आपही बेसुधि होगये तब यहसमझे कि प्रह्लाद चैतन्य विष्णुहै वह सर्पों के योग्य नहीं है.जब वही है तो दांतोंकाबिष उसके लोहकेसमान शरीर पर कैसे असर करसक्ताहै, जब राक्षसोंने यहदशा देखी तो हिरण्यकशिपु केसमीप जाकर प्रह्लादजीका संपूर्णचरित्र सुनाया और प्रार्थना की कि हे महाराज! और दूसरा काम जो आज्ञा हो सो करें प-

रन्तु प्रह्लाद का काम करने से लाचार हैं क्योंकि जब हम उसको पीड़ा देना चाहते हैं तब हमारे मन कांपने लगते हैं तुम इसको बालक समझके इसकी त्वचा कोमल न समझो इसका शरीर पाषाण से भी अधिक कठोर है तब हिरण्यकशिपु ने आज्ञा दी कि पहाड़ के समान बड़े२ हाथी लाकर उनसे इसको खुँदवाडालो राक्षस लोग उसकी आज्ञा पातेही बड़े २ मत्त हाथी जिनके शरीर पहाड़ के समानथे ले आये, और जब वे प्रह्लादपर उसके बध करने के लिये छोड़ेगये तब हाथियों ने प्रह्लाद को सूंड़ि से पकड़कर उसकी छाती पर दांत धरे परन्तु प्रह्लाद ने गोविंद जी के भजन का त्याग न किया निरन्तर भजन में लीन रहा और यही जानता रहा कि यह हाथी नहीं है गोविंदजी हैं इसके प्रतापसे हाथी भी व्याकुल होकर भागे तब हिरण्यकशिपु ने कहा कि इसको अग्निमें जलादो उसकी आज्ञा पातेही राक्षसों ने बहुतसी लकड़ी, काठ कवाड़ इकट्ठा करके उसमें प्रह्लादको डालकर चारों ओरसे अग्नि लगादी जब अग्नि प्रज्वलित हुई तब प्रह्लाद उसमें समुद्रकूर्मिकी नाईं बैठा यह कहता था कि हे पिता! यहअग्नि और वायु हमको अमृतकेसमान गुणदायक होरहे हैं क्योंकि अग्नि और पवनमेंभी मैंही हूं ये मुझे किसप्रकार जलावें और श्रुति साक्षी है व गीतामेंभी श्रीभगवान्‌ने अर्जुन से कहाहै कि आत्मा आयुध अर्थात् शस्त्रसे नहींकटता और न अग्नि से जलता है अरु यह काष्ठ और अग्नि मुझकोकमल के फूलकी नाईं शीतल जानपड़ते हैं जब हिरण्यकशिपुने देखा कि सम्पूर्ण काष्ठ जलगया और प्रह्लाद निष्कण्टक बैठाहै तब सण्डा, मर्का शुक्राचार्य के दोनों पुत्रों को बुलाकर सैन से समझाया कि इस को अग्निमें से निकालके साम, दाम, दण्ड और विभेद चार प्रकार से शिक्षा दीजिये उन्होंने उसकी आज्ञा पाकर प्रह्लादजी को अग्निसे निकाला और साम, दाम किया अर्थात् हिरण्यकशिपुके सन्मुख लेजाकर विनय किया कि पुत्रपर क्षमा कीजिये

बालकों की भूलपर बड़े लोग सदा से अनुग्रह करते आते हैं, अब हम इसको ऐसा प्रबोध करायेंगे कि फिर कभी विष्णुका नाम अपनी जिह्वा पर न लावेगा यदि यह पुत्र फिर कभी विष्णुका नाम उच्चारण करे तो हम इसको अपनी ज्वालारूपी श्वासों से जलाकर भस्म करदेंगे ऐसा कहकर गुरूके घर लेगये और वहां उनके गुरूने समझाया कि पिता जो कुछ आज्ञाकरे पुत्रको उचितहै उसको अङ्गीकार करे तब प्रह्लादजी ने गुरूसे कहा कि हे गुरूजी! आपकी तो ऐसी बुद्धि न होना चाहिये तब शुक्राचार्यजी ने समझाया कि हे पुत्र! अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारो पदार्थ गुरू व पिताकी आज्ञा पालन करने मेंही टिके हैं इनसे उनकी आज्ञा अवश्य माननीय है, तब प्रह्लादजी ने उत्तर दिया कि मैं तेरा कथन कुछभी श्रवण न करूंगा एक अद्वितीय विष्णु है दूसरा कोई नहीं इसके बाद किसी दिन शुक्राचार्य किसी कार्य को गये तो उससमय प्रह्लाद अध्ययनशालाके बालकों को यह उपदेश करनेलगा कि हे राक्षस पुत्रो! तुम लोग पूर्णरूप से निश्चय करो कि मैं और तुम यह कुछ नहीं है केवल एक अद्वितीय ब्रह्महीहै तब बालकों ने कहा कि बाल्यावस्था तो खेल कूदका समयहै इसके उपरान्त जब युवा अवस्था आवेगी तब भजन करेंगे, इस अवस्था में कुछ न कहो तब प्रह्लाद जीने कहा कि हे बालको! प्रथम जन्म लेना बहुरि बालक होना तदुपरि युवावस्था फिर कालग्रासके समान वृद्धा प्राप्त होती है परन्तु ये सम्पूर्ण अवस्थायें दुःख का हेतु हैं इन में सुख कदापि नहीं विचारदृष्टि से देखो कि प्रथम जन्म लेना कैसा क्लेश है फिर बाल अवस्था है फिर यौवन अवस्था कैसी दुस्तर है कि जो भीतर, बाहर से सब अङ्गों को प्रफुल्लित करके परमार्थ के मार्ग पर जाने से रोकती है श्रवणसे शब्दादि व नेत्रों से अच्छी चीजों का देखना और घ्राणसे महक का सूंघना यह सम्पूर्ण विषय घेरे रहते हैं किसी समय शान्ति अर्थात् सुख

नहीं मिलता और जब यौवनावस्था के पीछे जरा अवस्था आती है तब निराश होकर अवधि व्यतीत होने से पश्चात्ताप करता है कि हाय हाय मैंने कुछ न किया और अब निर्बल होगया इस से कुछ नहीं होसक्ता फिर जब इसके बीतने पर मृत्यु को प्राप्त होताहै तब संसार से सिवाय पश्चात्तापके और कुछ हाथ नहीं लगता जब गर्भ में होताहै तब उसके कष्ट से व्याकुल होकर यह कहता है कि यह क्या दुःख है जो मैंने अपने को इस में फँसा रक्खा है और आवागमन में पड़ाहूं अब जो इस महा भवसागरसे छूटूँ तो फ़िर देहाभिमान न करूंगा, फिर जब समय पाकर उदर से बाहर होताहै तब कहा कहा कहके कहरता या रोदन करता (कि कहां आया) और समय समय पर यह कहता है कि अभी मैं बालकहूं, अब जवानहूं, अब वृद्ध हुआ इसी विचार में आयु व्यतीत होजाती और प्रयोजन सिद्ध नहीं होता अर्थात् तत्त्वको नहीं पहिंचानता कि मेरा आदि, अन्त क्या है मैं कहां आया और कहां जाऊंगा ऐसी व्यवस्था उसकी होती है जैसे किसी पुरुष को चिन्तामणि प्राप्त होनेपर वह उस मणि के गुण न जानकर कीच में फेंकदेवे इसी तरह इस मनुष्यशरीर को पाकर उसकी बड़ाई को न जाना तो शरीर पाने से क्या लाभ हुआ. भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी इसी को दुःख जानता है परन्तु दुःख के कारण को नहीं पहिंचानता कि किस तरह प्राप्त हुआ. यह समझना चाहिये कि यह शरीर मांस, त्वचा, अस्थि, मज्जा और रुधिर के एकत्रित होनेका विकार है, हे बालको ! शरीर से अभिमान को त्यागकर यही जानो कि विष्णुही सर्वव्यापी है और अन्तर, बाहर सब उसी का प्रकाश है. पिता, पुत्र, राज्य, धन, आश्रम, बाल्यावस्था, युवा और बुढ़ापा यह सब इस शरीरही के विकार हैं परन्तु आत्मा इनसे निर्लेप होकर अपनेही प्रकाश से प्रकाशितहै वह शरीर के प्रतिबन्धसे नहीं भासता, जैसे स्फटिकमें नानाप्रकार के रंग दिखाई

देते हैं परन्तु वास्तव में उसमें कोई रंग नहीं है वह बिलकुल निर्मल व विकार रहित है, इसी तरह आत्मा में भी दृश्यमान संसार दिखाई देता है परन्तु शरीर की कोई भी अवस्था उसमें नहीं है, क्योंकि वह स्वयंप्रकाशवान् है. केवल यह नाम रूप भ्रम है कि मनुष्य इससे प्रीति करके जन्म मरण के बंधन में पड़ता है. इससे हे बालको! तुमको उचित है कि इसी समय नारायण में परायण होकर यह निश्चय करो कि वह ईश्वर बाल, युवा, वृद्धा इनतीनों से न्यारा रहकर सबका साक्षी है और उसी के तेज से सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित है इन सांसारिक विकारों का उसमें लेश मात्र भी नहीं है यदि ऐसा निश्चय करोगे तो तुम आपही विष्णु होजाओगे, यह संसार के बंधनों से जो भ्रम रूप हैं मुक्त होकर तीनों ताप अर्थात् आध्यात्मिक, अधिभौतिक और अधिदैविकसे बचोगे क्योंकि ये सम्पूर्ण शरीर कीही उपाधियां हैं, जब शरीरका अभिमान नाश होजाता है तब सब दुःखों से छूटता है, इससे द्वैत का विचार मन से त्याग करो जो कुछ देखा और सुना है वह सब विष्णु है, दूसरा कोई नहीं जिसने एक ब्रह्म को जाना है वही आवागमन से छूटा है इससे तुम लोग गोविन्दजी का भजन करो. पराशरजी बोले कि उसी समय शुक्राचार्यजी आगये और उन्हों ने देखा कि अध्ययन शालाके कुलबालकों के मुख से यह शब्द निकलरहा है कि हम विष्णु हैं हम विष्णु हैं इस चरित्र को देखकर शुक्राचार्य अत्यन्त विस्मित हुये और चिन्ता करने लगे कि अभी तक तो केवल प्रह्लादही यह बचन कहताथा परन्तु अब सम्पूर्ण बालकों ने इसी वचन की धारणा धारणकीहै कि हम विष्णुहैं हम विष्णु हैं यह बड़ा अनर्थ हुआ: यह विचार मनमें ठान हिरण्यकशिपु के निकट पहुंचकर सम्पूर्ण व्यवस्था वर्णन की इसको सुनकर हिरण्यकशिपु को अति प्रचण्ड क्रोध उत्पन्न हुआ कि जिसको संभाल न सका और शुक्राचार्य को साथ लेकर उसी समय पाठ-

शाला में पहुँचा और वहां जाकर यह देखा कि सब बालक आपस में यह चर्चा करतेहैं कि यह शरीर अनित्य अर्थात् तीनों कालमें विद्यमान नहीं रहता केवल एक आत्माही सदा बना रहता है, हिरण्यकशिपु यह सुनकर उसी समय अपने स्थानको लौटआया और विस्मित होकर शोचने लगा कि मैं इस लड़के को किस प्रकार बध करूं तब मैत्रेयजी ने पराशरजी से प्रश्न किया कि हे पराशर! तुम कौनहो और वह कौनहै जो कहताहै कि शरीर भ्रमहै यह सुनकर पराशरजीने उत्तर दिया कि तुम्हारा प्रश्न अत्यन्त आश्चर्यजनक और गूढ़ है इसका उत्तर किसी पंडित से पूछो मैं पंडित नहीं हूं, तब मैत्रेयजीने कहाकि जो तुम पंडित नहीं हो तो मूर्ख होगे, तब पराशरजी ने कहा कि मूर्ख भी नहीं हूं. फिर मैत्रेय ने पूछा कि जब तुम पण्डित और मूर्ख कुछभी नहीं हो तो कौन हो तब पराशरजीने कहा कि जो कहताहै त कौनहै वही हूं. मैत्रेयजीने पूछा कि वह कौनहै. तब पराशरजीने उत्तर दिया कि तू ही है तब मैत्रेयजीने कहा कि मैं तो मोम की नाईं पिघल रहाहूं यह कुछ मेरे बिचार में नहीं आता, और न मुझको यहही ज्ञान है कि मैं कौन हूं हे गुरो! अब दया करके प्रह्लादजी की कथा मुझको सुनाइये। तब पराशरजी बोले कि ध्यान धरके व चित्त लगाकर सुनिये मैं प्रह्लाद की कथा सुनाकर तुम्हारी अभिलाषा पूरी करताहूं, हिरण्यकशिपु ने अपने सर्दारों को यह आज्ञा दी कि इस बालक ने मेरी आज्ञा भंगकी है इसलिये इसको जब भोजन दियाजावे तब विष मिलाकर दियाजावे कि जिससे तत्काल मृत्यु को प्राप्तहोवे, राजाकी आज्ञा पाकर रसोईदारों ने वैसाही किया, परन्तु जब प्रह्लाद भोजन करने बैठते थे तब भी गोविन्द का भजन किया करते थे और यह जानते थे कि भोजन, भोज्य, भोक्ता यह तीनों विषय भी केवल विष्णुही जी हैं दूसरा कोई नहीं और वह सर्वव्यापी घट घट निवासी विष्णुजी प्रह्लाद के हृदय के बीच में

स्थित थे इससे प्रह्लाद जो कुछ विष खाते थे वह उनको कुछ भी नहीं व्यापता था, ऐसी दशा प्रह्लाद की देखकर रसोईदार भयभीत होकर शोचने लगे कि जो हिरण्यकशिपु को यह मालूम होगा कि रसोईदारों ने विष नहींदिया तो कौनगति होगी तब पराशरजी ने कहा कि हे मैत्रेयजी ! यदि कोई तुमको विष देवे तो तुम उसी समय यह कहोगे कि मैं ब्रह्म नहीं हूं, उस राक्षस के बालक प्रह्लाद को धन्य है कि जो निरन्तर गोविन्दजी से प्रीति रखता था, तब मैत्रेयजी ने कहा कि प्रह्लाद और हिरण्यकशिपु कहां थे, केवल मैंही था तेरी बुद्धि में फेर है जो तू प्रह्लाद और मैत्रेय को भिन्न समझता है तब पराशरजी बोले कि तू पाखंडी है प्रह्लाद के समान स्वच्छ चित्त नहीं है यह समानता केवल तेरे कथनमात्र है तेरेसे पाखंडीका दर्शन करनेमें भी पाप लगताहै मैत्रेयजीने कहा सत्यहै इससे अधिक और पाप क्या होगा कि सर्वविश्व आपसे उत्पन्न कियाहै और कहताहूं कि मैं नहींहूं, और इन्द्रियोंके संपूर्ण कार्य करके उनको भोग देता लेता हूं औरमेरेही आनन्दसे सम्पूर्णइन्द्रियां आनन्दित रहतीहैं अर्थात् ये पंचतत्त्व आनन्द रूपहैं, और यह भी कहताहूं कि मैं जीव हूं, और पाखण्ड बड़ा है तो आप अरु तत् पद, त्वं पद और असि पद कल्पनाकरता हूं इससे निश्चय करता हूं कि मेरे देखनेसे तुमको पाप न होगा अब तुम लज्जित न होगे जो मुझको त्याग करोगे. तब फिर पराशर जी मैत्रेय जी से बोले कि अब तुम प्रह्लाद की कथा श्रवण करो, तब हिरण्यकशिपुने शुक्राचार्य को बुलाकर कहा कि अब शीघ्रही इस बालक का नाश कीजिये इसमें कुछ बिलम्ब न होवे तब शुक्राचार्य ने प्रथम प्रह्लाद को नानाप्रकार के उपदेश देकर समझाया और कहा कि हे पुत्र! तेरे पिता का यश तीनों लोक में फैलरहा है, तुमको और से क्या काम है, अपने पिता की कृपा के शरणमें जाकर उसके शत्रु को अपना मित्र न करो प्रथम गुरू तुम्हारा पिताही है उसकी आज्ञा भंग

न करो नहीं तो तुम्हारा नाश होवेगा, पराशरजी बोले कि तू भी भयभीत होवे देख गुरू ऐसे होते हैं. शुक्राचार्य तो एकही शक्ति रखते थे परन्तु मुझमें सहस्र शक्तियां विद्यमान हैं शुक्राचार्य को मैंने ही संथा दी है, तब मैत्रेय जी ने पूछा कि शुक्राचार्य को भी यही उपदेश दिया था जो कि प्रह्लाद वर्णनकरताहै तब पराशरजीबोले कि जब मैं शुक्राचार्यको ज्ञानसिखाताथा तब वह उस ज्ञान से प्रीति नहीं करताथा क्योंकि उसका मन कामना में टिकाथा जब मैं उससे कहता कि निर्वाण शास्त्र सीखो तब वह उत्तर देताथा कि मुझको वह विद्यासिखाइये कि जिससे किसीको मारण करूं और किसीको जिलाऊं. हे मित्र ! तू ऐसे गुरू से सदा भय भीत रह, तब मैत्रेय ने कहा कि मैं क्यों डरूं जब आप से मेरे गुरू हैं जिनमें मारना और जिलाना दोनों विद्यमान हैं तब पराशर जी बोले कि न्यायशास्त्र में लिखा है कि गुरू, अतीत, राजा, सर्प और व्याघ्र इनसे सदा भयभीत रहना चाहिये, यह कभी न समझना चाहिये कि ये हमारे मित्र हैं तुम मुझे क्या समझते हो, मैं कौन हूं, मैं ऐसा हूं कि यदि कहो तो तुमको नाश करडालूं तब मैत्रेय जी ने कहा कि मैं आपकी शरणहूं अब प्रह्लाद की कथा कहिये तब पराशर जी बोले कि तू मेरा पुत्र है मुझसे किसीप्रकार का डर न मानके प्रह्लाद की कथा निडर होके श्रवणकर। तब प्रह्लाद जीने शुक्राचार्य से कहा कि हे महाभाग ! गुरु जाति हमारी सर्वसृष्टि से निन्दित है और तीनों लोक में प्रकट है इससे किसतरह प्रतीति करूं जो आप कहते हैं कि पिता गुरू के समान है यह आपका कथन मिथ्या है क्योंकि पिता तो केवल पालन, पोषण का अधिकारी है किन्तु परमार्थ का नहीं है, जो पुत्रपर पिता की अति अनुग्रह होगी तो इन्द्रियों की पालनाही अच्छी रीति से करेगा, तुम्हारी बुद्धि भ्रम से युक्त होरही है इसी से ऐसे पिताको गुरू समान कहते हो, और गुरूजी आपका वचन सत्य भी है कि पिता गुरू के समान है परन्तु

पिता का ध्यान करना योग्य नहीं है मैं सिवाय जनार्दन भगवान् के किसी को नहीं जानता और आप कहते हैं कि भगवान् से तुझको क्या प्रयोजन है यह अति असंगत वचन है, जो परमार्थ को पहिचानता है वह ऐसा कदापि कथन नहीं करता इस तुम्हारी वार्ता से निश्चित होताहै कि तुम्हारी बुद्धि मंदता को प्राप्त होगई. तब शुक्राचार्य क्षणमात्र अवाक् होरहे फिर विचार कर बोले कि तू जो इतना गोविन्द जी का भजन करताहै इससे तेरी क्या अभिलाषा है जो तेरा वाञ्छित होवे उसको तेरा पिता भी पूर्ण करनेकी शक्ति रखता है, मरीचि इत्यादिक सब ऋषीश्वर जिन चार पदार्थों के मिलने के लिये भजन करते हैं उन चारों पदार्थों को तुम्हारा पिता भी देने की सामर्थ्य रखता है, इससे उचितहै कि उसकी शरणमें जावो और उसकी शिक्षा को अंगीकार करो तब प्रह्लाद जीने कहा कि आप मेरे अन्तःकरण की वार्ता कैसे जान सक्ते हैं, भजन और ध्यान से यही प्रयोजन है कि अपने मूल को प्राप्त होऊं जिससमय अपने तत्त्व को प्राप्त हुआ तब सम्पूर्ण बन्धनों से छूट जाता है, गोविन्द के भजनही से सम पदकी प्राप्ति होती है, भजन श्रीभगवान् का पूर्ण रूप है तब शुक्राचार्य्य ने कहा कि हे प्रह्लाद! क्या तुम को वह समय भूल गया कि अग्नि में जलते हुये से मैंने तुम्हारी रक्षा की थी, अब फिर तेरी बुद्धि पहिले की सी आगई यदि मैं ऐसा जानता तो उसी समय आज्ञा देकर तुझे भस्म करवा डालता, अब जो तू मेरी शिक्षा न मानेगा तो इसीसमय तुझको नाशकर डालूंगा तब प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि किसी में इतनी शक्ति नहीं है कि किसी को मार अथवा जिला सके, सब जगत् की रक्षा और नाश करना केवल उन्हीं भगवान् के हाथ है तब शुक्राचार्य ने क्रोधित होकर मुखसे अग्नि निकाली और चाहा कि प्रह्लाद को भस्म करडालूं, इस चरित्र को प्रह्लाद जी ने देखा कि यह मुझे भस्म करना चाहताहै तब बिष्णु भगवान् से प्रार्थना

की कि हे अनन्त देव ! मुझको इस ब्राह्मण के हाथ से बचाइये, फिर बिचार किया कि जब जगद्गुरु बिष्णु जी सम्पूर्ण जगत् जो चराचर है और जहांतक दृष्टि गोचर है उसमें विद्यमान हैं तब ब्राह्मण में द्वैत कहांरहा और जो विष्णुही है तो किस वस्तु का डर है। जब शुक्राचार्य अग्निमय अपनी निकालीहुई श्वास को फिर अन्तर न लेजासका तब शोचा कि श्वास के बिना जीना कठिन है क्योंकि जीवन श्वासही से है यह बिचार मन में ठान प्रह्लाद की शरण में प्राप्त हुआ और बिनती करने लगा कि मैं तुम्हारा पुरोहित और ब्राह्मण हूं तुम चिरजीवी हो और तुम्हारी आयुबढ़े अब हमारी रक्षा कीजिये हे मैत्रेय जी ! शुक्राचार्य ने प्रथम जितना क्रोध किया था उतनीही जब अन्त समय को अवस्था पहुंची तब स्तुति करनी पड़ी परन्तु प्रह्लाद दोनों अवस्था अर्थात् निन्दा, स्तुति में सदा एक रस रहा इससे कुछ भी हर्ष शोक को प्राप्त न हुआ, मैत्रेयजी ने यह वार्ता सुनकर उत्तर दिया कि तुम अपना और पराया समझतेहो तब पराशरजी ने कहा कि मैं औरों की तरह किसीको भजन और उपासना का उपदेश नहीं करताहूं कि भजनकर अथवा उपासना, तब मैत्रेयजी ने कहा कि जो मैं कुछ न करूं तो मेरा कार्य किसतरह सिद्ध होवे और मूलको कैसे प्राप्त होऊं तब पराशर जी बोले कि तू आपही मूलहै मूलके पहुंचनेकी इच्छा किसकारणसे करताहै, नारायणसे व्यतिरेक जो भ्रम करके मानाहै उसे तू जबतक त्याग न करेगा तबतक तत्त्वकी प्राप्ति अतिदुर्लभहै, मैत्रेयजीने कहा कि कृपाकरके मुझको यह समझाइये कि भजन क्या चीज है तब पराशरजी बोले कि अपना और दूसरे का द्वैत चित्त से दूर करके सब में समान भाव देखना इसी को भजन कहते हैं और यही अद्वैत भजन भी कहलाता है इससे अधिक करने की कुछ आवश्यकता नहीं है फिर मैत्रेयजी ने कहा कि अब प्रह्लादचरित्र वर्णन कीजिये तब पराशर जी बोले कि मैं पंडित नहीं हूं न दूसरों

कथा या कोई चरित्र जानता हूं जो किसी दूसरी विधिसे प्रह्लाद-चरित्र का निरूपण करसकूं मैं केवल यही जानता हूं कि इतना ही समझनाठीक है कि आत्मा के सिवाय और कुछ भी नहीं है इसी को प्रह्लादचरित्र समझो तब मैत्रेयजीने कहा कि जो आप पंडित नहीं हैं तो मूर्ख होगे तब पराशरजीने उत्तर दिया कि जब पंडित नहीं तब मूर्खही कहां है तब मैत्रेयजी ने पूछा कि जब तुम दोनों में से कोई नहीं तो फिर कौनहो तब पराशरजी बोले कि जो कुछ है सो यहीहै तब मैत्रेयजीने पूछा कि मैं तुम्हारा आदि अंत कुछ भी नहीं जानताहूं इसको समझाकर मेरा संदेह निवृत्त कीजिये कि आपका आदि, अन्त क्याहै तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेय! चारोंवेद और चार मुखके ब्रह्मा भी मेरा आदि अन्त नहीं जानते क्योंकि मैंही सबका आदि, अर्थात् उत्पत्तिका कारणहूं इससे तुम क्याजानो तब मैत्रेयजी ने कहा कि अब मैं अतीत होताहूं तब पराशरजी बोले कि यदि तूने अपने चित्त से ऐसा चिन्तवन किया तो तुझको धन्य है क्योंकि मनुष्य की देह धारण करके जिसने श्रीगोविन्दजी का भजन न किया तो पीछे सिवाय पछितावे के और कुछ हाथ नहीं लगता, मैं भी यही चाहताहूं कि सब अतीत होवें तब मैत्रेयजीने पूछा कि मुझे आश्रम बतलाइये कि मैं उनमें प्रवृत्तहोऊं तब पराशरजी बोले कि तू दंडी, संन्यासी हो तब मैत्रेयजी पूछा कि हे महाराज! जबतक ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ न होवे संन्यास किस प्रकार धारण करसक्ता है परन्तु मेरी समझ में आता है कि संन्यास से आशय सर्व वस्तुओं का त्यागना है, परन्तु कर्मों का त्याग विना कर्म के नहीं होसक्ता तब पराशरजी बोले कि तूने यह शोचा है कि मैं जीव हूं अब अतीत होऊं इनदोनोंका त्याग करनाही कर्मोंका त्यागहै तब मैत्रेयजीने कहा कि जो मैं अहंकार का त्याग करूं तो फिर क्याकरूं तब पराशरजी बोले कि जो तू अतीत होवे तो मैं जानूं कि तू मेरी शरणमें आया है जबतक तू

कुटुम्ब और सांसारिक व्यवहार में लगाहै तबतक मुझको तेरा विश्वास नहीं है कि तू संन्यासी होगा, तब मैत्रेयजीने कहा कि जो मैं कहताहूं कि अतीत होऊं तब कहतेहो कि संन्यासीहोत्रो, मेरे एक शिखा और यज्ञोपवीतहै, इसके भी त्याग कराने की तुम्हारी इच्छाहै, यह अब मुझको करना पड़ा तब पराशरजी बोले कि तुम सत्य कहो यह बुद्धि कहां से पाई इससे जानाजाता है कि तुम इसी क्षण तीनोंलोकों से उड़ना चाहतेहो, हे मैत्रेयजी! जिस समय मनुष्य गृहस्थी से मुक्त होने के लिये अतीत के पास जाकरमुक्त होने के लिये प्रश्न करताहै और अतीत कहताहै कि अतीत हो तब शिष्य कहताहै कि अतीत होने और गृहस्थी के त्याग करने से क्या लाभ होगा, तब अतीत कहता है कि आप से आप भगवान् के दर्शन होंगे, और शिष्य वैसाही करता है, परन्तु यह विचार नहीं करता कि जब अतीत होने को भगवान् के दर्शन नहीं पाये तो मुझे किस तरह प्राप्त होंगे, अतीत का केवल यही प्रयोजन है कि जो यह भी अतीत होजावेगा तो लोग कहेंगे कि यह अमुक अतीत का शिष्य है—तब मैत्रेयजी बोले कि मैं अब सब छोड़ के योग करूंगा, क्योंकि योग करने से (चित्त) कामना जलजाते हैं, और योगवाशिष्ठ तुम्हारे पितामह भी योगही उपदेश करतेहैं, पराशरजी ने कहा कि इससे क्या भला है, तू योग कर जिससे यह तेरा शरीर सदा बना रहे, परन्तु यह शरीर नरक का मन्दिर है, जो पापी है उसको नरक प्राप्त होता है, तू भी पापी है योग कर, और सदा नरक वास कर, हे मैत्रेयजी ! जब चाहना मिटगई तब शरीर रहे या न रहे, यदि तेरी इच्छा है कि यह शरीर सदा बना रहे तो जबतक इच्छा शरीर का परित्याग न करे, यह सब छोटे बड़े तेरे शरीर हैं किस कारण से कि यही इच्छा शरीर का बीज है, इससे चाहियें कि ऐसा काम करो कि जिससे शरीर न रहे, मैत्रेयजी बोले कि तुम से कहताहूं कि अतीत करो परन्तु तुम

नहीं करते इसमें मेरा क्या वश है तब पराशरजी ने कहा कि ये जो अतीत हैं इनका पंथ ले, और अतीत हो जब तू अतीत होवेगा तब मन में अहंकार की अग्नि से जलेगा और जब अहंकार की अग्नि से जला तब सुख चैन कैसे पावेगा, कि गोविन्द का भजनकरे, तब मैत्रेय ने कहा फिर क्या करूं पराशर ने कहा कि अतीत हो यही कर तब मैत्रेयजी ने कहा कि अब मुझको अतीत का धर्म समझाइये, तब पराशरजी बोले कि मैं अबतक अतीत नहीं हुआ तो तुमको उसका धर्म कैसे बताऊं, जो गृहस्थी को त्याग करे उसको अतीत कहते हैं परन्तु मैं इस को नहीं मानता, अतीत वह है जो सूक्ष्म और स्थूल दोनों से अतीत हुआ है, तब मैत्रेयजी ने पूछा कि सूक्ष्म और स्थूल क्या वस्तु है तब पराशरजी बोले कि जब पिता, माता, पुत्र, शत्रु, और मित्र इन सबका त्यागकर अतीत हुआ तब सूक्ष्म में बंध हुआ, अर्थात् कहता है कि मैं परम त्यागी हूं मैंने सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों को त्याग करके गोविन्दका पूर्ण विश्वास रक्खा है, अब मैं जिससे कहूं कि तेरे पुत्रहो उसको पुत्र प्राप्तहो और जिससे कहूं कि तू मरजा वह मरजाय अर्थात् आशिष, और शाप दोनों की सामर्थ्य है, लोग मुझको परम तपस्वी कहते हैं, जब शरीर का त्याग करूंगा तब स्वर्गलोक प्राप्त होवेगा इससे हे मैत्रेय! स्वरूप कीचाह मिटगई, और आप अपने महत्व में बँधा हुआ, इससे ऐसे अतीत होने की तेरी इच्छा है तो अच्छाहै, तुझ को लोक परलोक की कामना प्राप्त होती है, मैं जानता हूं कि तेरी आयु ऋषिपुत्रों में व्यतीत हुई है, इसीकारण से तेरे मन में अतीत होनेकी उपजी है पर जितने ऋषिपुत्र देखता हूं सब अहंकार में पड़े जल रहे हैं कोई अपने को ज्ञानी और कोई तपस्वी कहता है परन्तु सब झूंठे अहंकार में बँधे हैं, परन्तु अहंकार आत्मा को त्याग नहीं करता, इससे तूभी क्यों अतीत नहीं होता, तब पराशरजीने कहा कि गोविंद गोविंद कहो संसार कहां

है तब मैत्रेयजी बोले कि इस कहने से क्या प्रयोजन और कर्त्तव्य है तब पराशरजी ने कहा कि यही कर्त्तव्य है कि कारण कुछ नहीं, तब मैत्रेयजी ने कहा कि जब मैं कहूं कि सर्व गोविंद है तब तू प्रसन्न होवे तब पराशरजी बोले कि मैं इस कहने से प्रसन्न नहीं होता, जब तैंने आपको जाना तब भगवान् कहां और पंथ कहां रहा इस कथन से क्या सिद्ध हुआ कि, आपको न जाना और कहे कि संत हूं, इससे जो स्वरूप है तो संत असन्त कहां, अब प्रह्लादचरित्र सुनो, उससमय शुक्राचार्य अपना जीव प्रह्लाद से छुड़ाकर भागा तब हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लाद को बुलाकर पूछा कि तेरे पास क्या शक्ति है जो किसी उपाय से भी नहीं माराजाता यह मन्त्र किससे सीखा है, तब प्रह्लाद पिता के चरणों की वंदना करके बोला कि हे पिता ! मैंने कोई मन्त्र नहीं सीखा केवल यही कारण है कि श्री विष्णु जी को सर्व ब्रह्मांड में समान देखता हूं आत्मा से अतिरिक्त और दूसरामन्त्र नहीं सीखाहै काहेसे कि सम्पूर्ण संसारमें आत्मा को पूर्ण जानकर तीनों तापों से छूटा हूं किसकारण से कि जिस पुरुष ने सारग्रहण किया उसको असार झूठ कैसे दुःख देसक्ता है हिरण्यकशिपुने इसवचन को सुनकर इतना क्रोधयुक्त हुआ कि नेत्रों के सन्मुख अन्धकार छागया और जिसस्थान पर स्थित था वह पृथ्वी से सौ योजन अर्थात् चारसौ कोश ऊंचा था वहां से राक्षसों को आज्ञा देताभया कि प्रह्लाद को इसीसमय कोई नीचे गिरादेवे, राक्षसों ने आज्ञा पातेही तुरन्त प्रह्लाद को उस स्थान से नीचे गिरादिया परन्तु गिरने के समय प्रह्लाद अपने मनमें यह बिचारनेलगा कि जनार्दन बिना और कुछ नहीं है इस बिचार से उसको कुछभी परिश्रम न हुआ तब प्रह्लाद को पर्वत के शिखरपर लेजाकर वहां से गिराया कि जिसके गिरने से पृथ्वी कांपने लगी, और यह बिचार किया कि यह परमेश्वर का भक्त मेरे ऊपर गिरता है मैं दोनों हाथों से इसको उछंग

उठालूं तब केशवजी अपने दोनों हाथों से उनको लेकर पृथ्वी पर बिठाकर बोले कि यह मेरी अमानत है इसको भलेप्रकार से रखना और प्रह्लाद से बोले कि जो तेरी इच्छा होवे वह मांग मैं दूंगा तब प्रह्लाद ने श्रीविष्णु भगवान् से कहा कि हे महाराज! वह सेवक नहीं है जो अपने स्वामी से कुछ मांगे आपतो स्वयं अन्तर्यामी हैं हृदय के भीतर की जानते हैं यदि मैं ऐसा कहूं कि मेरे पिताका नाशकरो तो मुझको लाज आतीहै क्योंकि सम्पूर्ण स्थावर जंगम, पशु और पक्षी तुम्हीं हो हिरण्यकशिपु कहां है कहीं हिरण्यकशिपु होकर कहतेहो कि विष्णुमत कहो और कहीं विष्णुहोकर कहतेहो कि विष्णुही है, मैं तुमको भलेप्रकार जानता हूं और आपसे यह इच्छा करताहूं कि तुम्हारे सिवाय और किसीको न जानूं यदि कहो कि तुम्हारा उपकार मेरे ऊपर है तो मैं प्रतीति नहीं करता, किसकारण से कि सर्व तूहीहै तेरा उपकार किसपर है। जब विष्णुजीने देखा कि कुछ नहीं मांगता निष्काम है तब आज्ञा करतेहुये कि नेत्रों को मूंद जब प्रह्लादने नेत्र बन्द करके फिर खोले तो अपने को अपने पिता के पास खड़ा देखा तब हिरण्यकशिपु बड़े आश्चर्य को प्राप्त होकर संभर नाम राक्षस को बुलाके बोला कि यह बालक किसीप्रकार नहीं मरता क्योंकि यह माया का भजन करता है अपनी आत्मा को नहीं जानता केवल माया के प्रताप से इसकी रक्षा होती है इससे तू इसको मन्त्र के बल से नाश करडाल यह आज्ञा पाकर संभर राक्षस ने करोड़ों उपाय और मन्त्र यंत्र इत्यादि किये कि प्रह्लाद को भस्म करडालूं परन्तु प्रह्लाद को कुछ भी भासित न हुआ और यही कहता रहा कि संभर भी एक पूर्ण आत्माहै तब मधुसूदन भगवान् ने चक्र को आज्ञा दी कि प्रह्लाद की रक्षा करके संभर का शिर काटडालो जब सुदर्शन चक्र ने विष्णुभगवान् की आज्ञा पाकर प्रह्लाद की रक्षा और संभर दैत्य का शिर काटडाला तब हिरण्यकशिपु इस वृत्तान्त को देखकर मूर्त्ति की तरह स्थित

होके विस्मय युक्त यह वचन बोला कि इसको मेरे सन्मुख से दूर करो, और पवन को आज्ञा दी कि इसको सुखा डालो, अथवा किसी दूसरे द्वीप में लेजाकर छोड़ आओ, परन्तु प्रह्लाद भगवान् की शरण में था इससे वायु न उड़ासकी और न उन को कुछ कष्टही देसकी तब प्रह्लाद वहांसे भागकर शुक्राचार्य के घरमें गया और हिरण्यकशिपु उनका पीछा करता हुआ चला गया और शुक्राचार्य के मकान से उन्हें फेरलाया फिर उनके केश पकड़कर बहुत ताड़ना दी परंतु प्रह्लाद अपनी प्रतीति से किञ्चिन्मात्र भी चलायमान न हुआ और यही जानतारहा कि भगवान् से अतिरिक्तकोई पदार्थ नहीं है दुःख और सुख दोनों में वहीहै जब हिरण्यकशिपु ने अपने हाथ की गदासे प्रह्लाद पर प्रहार किया तब उस गदा के तुरन्तही सातखंड होगये, तब शुक्राचार्य ने कहा कि हे हिरण्यकशिपु तूने इतनी शासना पुत्रको करी परन्तु तेरी नानाप्रकार की शासनाओं से उसको कुछ भी क्लेश न हुआ वह जैसे का तैसा बना है इससे निश्चित है कि उसने तत्त्व को पाया है अब उसकी शासना त्यागदे तब हिरण्यकशिपु बोला कि यह जबतक दूसरे का निश्चय त्याग न करेगा तब तक मैं उसके नाश करने की चिन्ता को किसी प्रकार त्याग न करूंगा, क्या तू भी कालके वश हुआहै जो इसप्रकार उपदेश करताहै, मैं तो तीनों लोकका राजाहूं इसने मेरे सिवाय किसको देखाहै जो कहताहै कि विष्णुहै, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों का प्रकाशक मैं ही हूं, नहीं जानता कि इसने कौन से विष्णु का निश्चय किया है, इसके इस आचरण से प्रतीत होताहै कि यह मेरे वीर्यसे उत्पन्नही नहीं हुआहै यदि यह मेरा पुत्र होता तो मुझ को अवश्य जानता इसतरह वार्तालाप करके फिर प्रह्लादसे बोला कि हे प्रह्लाद ! अपना धर्म त्यागकर दूसरे को जानना यह कौन मार्ग है तूने जो कुछ गुरू से पढ़ाहै वह मुझे सुनाव तब प्रह्लादने हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक हिरण्यकशिपु अपने पिताको उत्तर

दिया कि हे पिताजी! जो कुछ मैंने पढ़ा है यह सब गुरुजीका ही उपदेश है परन्तु मैंने असार त्यागकर उसमें से सारांश को ग्रहण करलिया है उन्होंने मुझको बहुत कुछ उपदेश दिया कि तुम्हारा पिता अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों का दाता है पर मैंने परमार्थपर दृष्टि की, अर्थात् यह समझा कि जनार्दन बिना और कुछ भी नहीं है और जब वही हैं तब इन चारों पदार्थों से क्या प्रयोजन है, इस से हे पिताजी! इसबात का तुम भी निश्चय करो कि मैं और तुम कुछ वस्तु नहीं केवल विष्णुहीजी हैं अविद्या का त्याग करके विद्या में प्रवृत्त हूजिये और इस पंचभौतिक शरीर को मिथ्या व नाशवान् जानकर ईश्वर को नाश रहित व सर्वव्यापी जानो, यह पूर्ण निश्चय करो तब हिरण्यकशिपु ने उत्तर दिया कि अपना सम्पूर्ण राज्य तुझको देता हूं अब तू परमेश्वर को त्याग के मेरा भजन कर तब प्रह्लाद ने कहा कि मैंने राज्य और सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों से विशेषकर गोविन्दजीही को जाना है मैं राज्य लेकर उस विष्णुको त्यागकरूं और पतितहोऊं हे पिताजी! बिश्वास मानो कि स्थावर, जंगम सब के बिषे एक विष्णु आत्मा व्याप्त है और शम, निर्वाण, चैतन्य और संन्यास ये सब उसी से हैं, जिसने ऐसा जाना सो भगवद्रूपहै, हे पिता! मेरी यही इच्छा है कि भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ अब पराशरजी मैत्रेयजी से कहते हैं कि हे मैत्रेय! तुमने कभी ऐसा प्रश्न मुझसे न किया कि जिससे मैं प्रसन्न होता तुझ ब्राह्मण से तो वह राक्षस का पुत्र धन्य है. तब मैत्रेयजी ने कहा कि हे गुरो! प्रह्लाद केवल जीभ मात्र से कहता था परन्तु वह इसका सुख नहीं जानता था काहे ते कि संत सर्व बिषे सम हैं ताते पिता को दूसरा जानना और यह कहना कि भगवान्हीहैं, यह संतोंका मार्ग नहीं है जे कोई पुरुष अहंकार रहित और समहैं उनको परम सुखहै, हे गुरो! यदि मैं कहूं कि अद्वितीय हों तो लज्जा प्राप्त होती है

क्योंकि इस कहने से आगे क्या न था, जो अब कहूं कि सर्व विश्व मेरास्वरूप है तब आत्मा बिषे विश्व कहां है जैसे कोई जल बिषे तरंग और बुद्बुदे कल्पित करे परन्तु ज्ञानी उस संपूर्ण को जलही जानता है ये तरंग और बुद्बुद जल से भिन्न नहीं हैं सब उसी जलका स्वरूप हैं यह सुनकर पराशर जीने कहा कि हे मैत्रेय! अब तू मुझको परमहंस दिखाई देता है परन्तु एक बात और सुन जब प्रह्लाद ने हिरण्यकशिपु अपने पितासे कहा कि,सम्पूर्ण देवता,राक्षस, मनुष्य और सर्प इत्यादि जो कुछ दृष्टि आता है तिनको तुम केवल अनन्त विष्णु जानो जब तुम ऐसा निश्चय करोगे तब अच्युत तुम पर दयालु होंगे और तब तुम्हारे द्वैत दुःख का नाश होगा, हिरण्यकशिपु प्रह्लाद के मुखसे ऐसे वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधित होकर चौकी से उठा और प्रह्लाद को अपनी बग़ल में दबाकर ऐसा सिंहनाद किया कि मानों संसार का नाश करना चाहता है और जैसे रुद्रको प्रलयकाल में संसारके नाश करने की चाहना होती है तैसेही प्रह्लाद का हाथ पकड़कर चाहा कि इसी समय इस का नाश करूं कि इतने में राहु केतु की ओर दृष्टिजा पड़ी तब उनसे बोला कि प्रह्लाद को बांधकर अथाह समुद्र में डालदो कुछ बिलम्ब न करो इसके सिवाय इसके नाश होने का कोई दूसरा उपायदृष्टि नहीं आता यह हतभाग्य माया में लीनहुआ है मैंने इसके मारडालने में बहुत बिलम्ब किया कि यह अबभी अपनी चाहना त्यागकरे परन्तु इसको मृत्युने घेरा है यह आपभी पापी है और पापी हीका भजन भी करता है, अब इसका शीघ्र नाश करो, तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेय! यदि तुझको नदी में डालदें तो उसी क्षण कहेगा कि मैं ब्रह्म नहींहूं, धन्य है उस प्रह्लाद को कि जिसको राक्षस लोगोंने हिरण्यकशिपु की आज्ञानुसार लोहेकी मोटी जंजीर में गर्दन बांधकर समुद्रमें डाल दिया परन्तु वह अपने प्रण से च्युत न हुआ और न किसी

प्रकारकी शङ्काही उसके हृदय में आई हे मैत्रेय! यदि तुझको ऐसी दशा प्राप्त होवे तो क्याकरे, तब मैत्रेयजीने कहा कि यदि गोविन्दजीके भजनमें ऐसे कठिन क्लेशहैं तो मैं कभी जिह्वासे भी उनका किञ्चिन्नाम न लेऊंगा तब पराशरजी बोले कि हे मूर्ख! यदि चाहताहै कि मित्रको पाऊं और साथही कामनाकी इच्छा भी रखताहै तो इन दोनों वस्तुओंका एक साथ मिलना अतिकठिन है, दो रोटी घी चुपड़ी तो पावेगा परन्तु मित्रकी मित्रता बहुत दुर्लभ होजायगी प्रह्लादकी भगवान् परीक्षा लेतेहैं कि यह अपने कहेपर निश्चलहै या नहीं, इस विषयमें एक इतिहास तुझको सुनाताहूं तू ध्यान लगाकर श्रवणकर ॥ इतिहास। मैं एक समय एक ऋषिपत्नी पर परम प्रीति करता था॥ तब मैत्रेयजीने कहा कि यह आप भी जानते हैं और वेदमें भी कहाहै कि जो कोई पराई स्त्रीपर दृष्टि करताहै वह नरकगामी होताहै और इससमय आप कहतेहो कि मैं एक ऋषिपत्नीमें लुभाया था यह कैसी वार्ता है तब पराशरजी बोले कि तेरा कहना सत्यहै कि जो कोई पराई स्त्रीपर कुदृष्टि करताहै वह नरकगामी होताहै परन्तु मुझको पर अपरका ज्ञान न था यही व्यास जो मेरा पुत्रहै मेरी विवाहिता स्त्रीके उदर से पैदा नहीं हुआ, यह अपना और पराया तेरी दृष्टि में है जो अहंकारकी देह धारणकिये है मेरी दृष्टिमें यह भेद कुछ भी नहीं है और न मुझमें पाप, पुण्यकी कल्पनाही है मैं आपी आपहूं जबतक यह जीवहै तभीतक कालका भयहै, मैं जीव नहीं हूं यदि चाहूं तो धर्मराजको चित्रगुप्तके सहित भस्म करडालूं, जो अपनेको नहीं जानता उसको भयहै, और जो आपी आपहै उसको किसीका भय नहीं है, मैंनेही मन, बुद्धि, अहंकार और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रको प्रकट कियाहै मुझसे विशेष कोई नहीं है फिर मुझको किसका डरहै मैं उस स्त्रीको देखने के लिये सदा जाया करता था, एक दिन अर्धरात्रिमें मेरा चित्त उससे मिलने को उमँगा और उसी समय अपने स्थानसे चलदिया उस समय

महाभयानक मार्ग होगया एक ओर मेहके बूंद झमाझम बरस रहे थे और दूसरे रैनि अतिकारी भयानकथी कि जिसमें अति कठिन मार्ग किसी तरह नहीं सूझता था ऐसे दुर्गम समय में मेरे पैरोंमें जो सर्प लिपटजाता था, उसको अपना मित्र जान प्रेमसे उठाकर छातीसे लगाय बगल में दबा लेताथा और यह जानता था कि मेरे मित्रने मुझको आगे से आकर आदर दिया है तब मैंने उससे कहा कि मैं तेरे निमित्त आताहूं मुझे अपने घर लेचल, हे मित्र! मेरे उस मित्रका घर गंगापारथा परन्तु गंगाजी समुद्रकी तरह जलकी बाढ़से तरंगें माररही थीं मुझे मित्रके प्रेममें समुद्र समान बढ़ीहुई गंगाजी गोपदके समान दृष्टिआई तब उस सर्पको नौका बनाकर गंगापार गया जब उस पार पहुंचा तो देखा कि ऋषीश्वरलोग बैठे तप कररहेहैं उन्होंने मुझसे पूछा कि तुम कौनहो तब मैंने कहा कि अमुकऋषि की स्त्रीहूं तब उन्होंने अपने स्थान से उठकर पूछा कि इस समय अर्धरात्रिमें तू कहां रही तब मैंने कहा कि कहीं नहीं, मैं ऋषि पत्नीहूं और ऋषिपत्नीके पास आईहूं, उन्होंने कहा कि यह स्त्री नहींहै कोई जादूगर मालूम होताहै, फिर पूछा कि तुम्हारी अब कहां जानेकी इच्छाहै तब मैंने कहा कि ऋषिपत्नीके पास जाऊंगी मेरी यह वार्ता सुनकर एक ऋषि निद्रासे उठा और मुझे लातों और घूंसों से खूबमारा परन्तु उस प्रेमकी उमंगमें मैं बुद्धिहीन होरहाथा इससे वह मारपीट मुझको कमलपुष्पके समान जान पड़ी जब उन ऋषियोंने मुझको अच्छी तरह देखा और पहिचाना तो निश्चितहुआ कि यह महाराज वशिष्ठजीका पुत्र पराशर है तब बोले कि ऐसे पिताके तू ऐसा पुत्र किसतरह उत्पन्नहुआ तब मैंने कहा कि न मेरे कोई पिताहै और न मैं किसीका पुत्रहूं तब उन लोगों ने समझा कि यह पराशर नहीं है, कोई जादूगर है अग्नि प्रज्वलितकरके मुझको उस प्रचण्ड अग्निमें डालदिया और मेरा सारा शरीर जलगया, परन्तु इस विपत्तिसे मुझको कुछ भी

पीड़ा न हुई, लेकिन जब उसी समय मेरा मित्र आपहुंचा तो उसके दर्शन करतेही अग्निकी उष्णता मेरे शरीर में प्रवेश कर गई तब मित्रने कहा कि यह क्या दशा है तब मैंने उत्तरदिया कि कुछ नहीं, जो कुछ है तूही है, मैं अपने शरीर को त्याग करूंगा परन्तु तुझको किसीप्रकार न त्यागूंगा, तब मित्रने कहा कि जो तुम्हारा शरीरही न रहेगा तो मुझको लेकर तुम क्या करोगे तब मैंने उत्तरदिया कि तेरे हृदय में अपना स्थान बनाऊंगा, हे मैत्रेय ! ऐसी प्रीति तुमने किसीके साथकी है या नहीं तब मैत्रेयजी ने कहा कि मैं तुमको सम्पूर्ण बुद्धि का आगार जानताहूं तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी ! इस मिथ्या शरीरमें प्रीतिकरने से मुझको ऋषि के दण्ड से कुछभी क्लेश न हुआ, जो सच्ची प्रीति में लीन होता है उसको किसीप्रकार की विपत्तियों से कुछ भी भय नहीं होता है, । अबप्रह्लाद का इतिहास श्रवण कर । जबराक्षसों ने प्रह्लाद को हाथ पाँव बांधकर समुद्र में डाला तब समुद्र ने कम्पित होकर अपने बीच से प्रह्लाद को उठाकर अपने मस्तकपर सुखपूर्वक आसन दिया यह चरित्र देख राक्षस लोग हिरण्यकशिपु के पास गये और उससे निवेदन करने लगे कि महाराज मैंने आपकी आज्ञानुसार प्रह्लाद को समुद्र में डाल दिया परन्तु वह डूबता नहीं है तब हिरण्यकशिपु ने कहा कि उस अभागे पर शिला का प्रहार करो कि जिससे वह डूब जावे, इस हत भाग्यपर कोई औषधि भी काम नहीं करती, यह विष्णु को जानता है और अपने जीवन की आश भी नहीं रखता, जब हिरण्यकशिपु से राक्षसों ने इसतरह की वार्त्ता सुनी तब बड़े बड़े शिला प्रह्लाद पर प्रहार करनेलगे परन्तु प्रह्लाद स्वस्थ चित्त बैठा नारायण की स्तुति करता रहा कि हे कमलनयन ! हे जगत् के कारण ! हे विष्णो ! तुमको नमस्कार है तुम ब्रह्मा होकर संसार को उत्पन्न करते और विष्णुरूप से पालन व रुद्र होकर संहार करते हो, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी,

सर्प, पिशाच, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर व पंचतत्त्व, और दशों इन्द्रियों में तुमहीं व्याप्त हो और जहांतक मन, व बुद्धि से दृष्टि आता है सब स्थानों में तुम्हाराही रूप दर्शित होता है, यदि विचार करो कि पंचतत्त्व तुमसे भिन्न हैं तो यह बुद्धि की मिथ्या कल्पना है, क्योंकि सर्व वस्तु तुमहीं होकर सब में समानरूप से वास करते हो, हे परमेश्वर! तुमको नमस्कार है, जो तुमको ज्ञानचक्षु से न देखकर अवतारों की पूजा तो करता है परन्तु उसने परमार्थ को नहीं पाया ताते जिससे सम्पूर्ण जगत् पूर्ण है उस विष्णु को नमस्कार है, जिससे सर्वजगत् है वही सर्व है, और मैं भी वही हूं यदि मैं ही हूं और सर्व सूझते हैं और गुप्त प्रकट एक पुरातन मैं ही हूं मुझको मृत्यु नहीं नित्य हूं आत्मा परमात्मा मुझी को कहते हैं और वासुदेव मैं हूं, ब्रह्मा नाम मेरा है, किसकारण से कि पूर्ण हूं और माया से रहित हूं हे मैत्रेयजी! जिसने इतनी स्तुति श्रीविष्णुजी की और यह जाना कि विष्णु आत्मा मैं ही हूं वह विष्णु में लीन हुआ तब मैत्रेयजी बोले कि हे पराशरजी! जिसने विष्णु को जाना वह विष्णु हुआ और जिसने नहीं जाना वह विष्णु से भिन्न है तब पराशरजी बोले कि गोविन्दमें मिलना गोविन्द को अपने विषे जानना है तब मैत्रेयजी ने कहा कि यदि जाना तो मिलानहीं तो भिन्न हुआ ताते आत्मा न हुआ काहेते कि सर्व आत्मा है तब पराशरजी बोले कि क्रिया करके भिन्नहै जहां वक्ता व श्रोता नहीं तहां नाम रूप नहीं तब आपी आप है तब मैत्रेयजी ने कहा कि जानता हुआ जो तू केवल विदेह मुक्त है, ताते आपी को कहो न दूसरे को तब पराशरजी ने कहा कि ज्ञानशक्ति ईश्वर है और अज्ञान शक्ति जीवहै यह दोनों कथनमात्र हैं कहां ज्ञानहै और कहां अज्ञान केवल स्वयं प्रकाशवान है जब तत्त्व प्राप्त हुआ तब ज्ञान और अज्ञान दोनों का नाश होजाता है जैसे अग्नि के प्रज्वलित होने से सूखा गीला ईंधन सबही भस्म होजाता है, इससे प्रह्लाद जो

जीव ईश्वर को एक विचार कर मोक्ष होगया था जंजीर जो हाथ पैर और गले में थी सब आपही आप टूट गईं पृथ्वी कम्पित हुई और शिला जो राक्षस लोग प्रह्लाद को मारते थे उनको जल स्वयं अपनी शक्ति से बाहर फेंक देने लगा उससमय प्रह्लाद जिस वस्तुपर दृष्टि करताथा अपने आपको देखता था और कहता था कि हे विष्णो ! आपके स्वरूप को नमस्कार है यहजगत् जो गुप्त, प्रकट दिखाई देता है सब तुम्हीं हो क्योंकि कोई वस्तु आपसे भिन्न नहीं, हे मैत्रेयजी ! कहो तुम श्री गोविन्द की स्तुति कैसे करते हो तब मैत्रेयजी ने उत्तर दिया कि मुझसे न पूछिये स्तुति तब होती है जब निन्दा भी होती है मुझे तो द्वैत दिखाई नहीं देता इससे स्तुति व निन्दा कैसे करूं यदि प्रह्लाद के समान दुःख या क्लेश पहुंचे तब कहूंगा कि आत्मा एक है तब पराशर जी बोले कि तू मिथ्या कहता है तेरी क्या सामर्थ्य है जो दुःख में कहे कि आत्मा एक है, अब मैं तेरा नाश करता हूं मुझको संसार में कोई ऐसा नहीं दिखाई देता है जो मुझसे तुमको छुड़ावे तब मैत्रेयजी ने कहा कि हिरण्यकशिपुको भगवान् ने इसी कारण मारा और प्रह्लाद को छुड़ाया कि वह निन्दक था, तब पराशरजी ने कहा कि मैं स्तुति और निन्दा किसी की नहीं करता हूं जो तुमको छुड़ावे और मुझको मारेगा इससे मैं तुझको इसी समय नाश करताहूं तब मैत्रेयजीने कहा कि यदि मैं तुम को ऐसा जानता तो तुम्हारी संगत भूल से भी न करता जैसे कोई सिंह का साथ करके बचना चाहे तो अत्यन्त कठिन है इससे हे पराशर ! तुम आपही मारो और आपही खावो तब पराशरजी बोले कि मैं ब्रह्म राक्षस नहीं हूं जो तुझे भक्षण करूं हे मैत्रेय जी ! गोविन्द का ध्यान करके उन्हीं का भजन करो और प्रह्लाद की कथा को चित्त लगाकर सुनो जब ऐसी स्तुति भगवान् की की तब श्रीविष्णुजी गरुड़ पर सवार होकर आ पहुंचे और प्रह्लाद उनको देखकर उठ खड़ा हुआ व दोनों हाथ बांधकर

प्रणाम करके स्तुति करनेलगा कि देव! महादेव! मुझपर दयालु होकर मुझे इस दुःख से छुड़ाइये आपका दर्शन मुझको अमृत के समान है मेरे नेत्र आपके दर्शनों से तृप्त नहीं होते तब श्री विष्णुभगवान् बोले कि मैं तुझपर प्रसन्न हूं जो तेरी इच्छा हो वह वरदान मांगले मैं तुझ को तेरा वांछित वर दूंगा तब प्रह्लादजी बोले कि हे जनार्दन! हे अच्युत! मैं यही चाहता हूं कि जिस योनि में उत्पन्न होऊं उसमें तुम्हारे चरण कमल की प्रीति मेरे हृदय से न जाय और जिस स्थान में रहूं तुम्हारे सिवाय और किसीको न जानूं और जैसे विषयी विषयसे प्रीति करते हैं उसी तरह तुम्हारी प्रीति मेरे मनसे न जावे तब श्रीविष्णुभगवान्‌ने कहा कि ऐसाही होगा अब इससे अधिक और जिस वस्तुकी इच्छा होवे वह भी मांगलो मैं देनेको उद्यतहूं तब प्रह्लादजीने कहा कि मेरे पिताने अज्ञानसे जो द्वैत निश्चय किया है सो कृपाकरके क्षमाकरो यद्यपि उसने मेरे मारने के लिये बहुत उपाय किये तथापि आपसे यही वर चाहताहूं कि आप उसपर ऐसी दया कीजिये कि जिससे आपके चरणकमलकी प्रीति उसके हृदय में अचल होकर तुममें सदा प्रीति बनीरहे तब श्रीविष्णुभगवान् बोले कि उसके हृदयमें जो अज्ञानका बन्धनहै उसको उठाकर मैंने अपने में लीन करलिया यह सुनकर प्रह्लादजीने विनयकिया कि हे भगवन्! आज मैं प्रसन्नताकी अधिकता से ऐसा प्रफुल्लित हुआहूं कि अपने शरीर में नहीं समाताहूं तब श्री विष्णुभगवान् बोले कि जो तू मेरी भक्तिमें दृढ़हुआ इससे मैंने तुझको निर्वाणपद दिया तब प्रह्लादने कहा कि हे महाराज! अब मैंने आपकी रुचिको जाना मुझे समझ पड़ता है कि आप मेरे पिताका नाश करना चाहते हैं पर मैं ऐसा नहीं चाहता मैं यह चाहताहूं कि उसमें आपकी ऐसी प्रीतिहोवे कि सिवाय आपके उसको और कोई वस्तु न रुचे अर्थात् तन्मय होजावे और यह समझे कि स्वयं विष्णुहूं क्योंकि आप शत्रु व मित्र भावाभावसे

रहित होकर सम्पूर्ण चराचर, स्थावर, जंगम पदार्थों में व्यासहैं और लोक परलोकमें सब जगह व जहांतक मन व बुद्धि पहुंचती है वहांतक आपकी गतिहै अर्थात् आप सर्वमयहैं यदि मेरे ऊपर आपकी अनुग्रहहै तो मुझको यह वरदान दीजिये कि मेरा पिता मारा न जावे और यही समझे कि मैंही विष्णुहूं और जो आप मुझसे पूछिये कि तू कौनहै तो मैं तो अपनेको ब्रह्म आत्मस्वरूप जानताहूं तब फिर विष्णुभगवान्ने पूछा कि तुम अन्तर बाहरसे निष्कपट होकर बताओ कि तुम कौनहो विष्णुभगवान् के इस प्रश्नको सुनकर प्रह्लादने कहा कि हे महाराज! आदिसे यही निश्चितहुआ और जाना व सुनागयाहै कि मुझमें तुझमें व सम्पूर्ण जगत् में एक आत्माही परिपूर्णहै इससे मैं जानताहूं कि मैं स्वयं ब्रह्महूं तब फिर विष्णुभगवान्ने प्रश्नकिया कि यदि तुझको यह निश्चय है कि मैं पूर्ण आत्मा हूं तो तेरा पिता जो तुझे इतना कष्ट देताहै उसके नाशका उपाय क्यों नहीं करता उसके जीवित रहने की इच्छा क्यों करता है यह जीवन और मरण केवल शरीरका धर्म है परन्तु ब्रह्ममें इन दोनोंका विकार किसीप्रकारसे नहींहै मैं उसको अवश्य मारकर अपने में लीन करूंगा विष्णुके मुखसे यह कथन सुनकर प्रह्लादने फिर विनयपूर्वक निवेदनकिया कि हे महाराज! यह उत्पत्ति और नाश सब आपका धर्महै मैं निर्गुण हूं मैं इनको नहीं जानता तब विष्णुभगवान् बोले कि जब तू मेरे निकट आता है तब आत्मस्वरूप बतलाता है और जब अपने पिता के पास जाकर उससे कष्ट पाता है तब तू कहता है कि विष्णु है यह क्या बात है तब फिर प्रह्लादजी ने कहा कि हे महाराज! दुःख का संहार करना आपही का काम है इससे उचित है कि विपत्ति और क्लेश की दशा में कभी आपको न भूले इतना सुनकर विष्णुभगवान् ने प्रह्लाद से कहा कि तू अच्छा मेरा मित्र है कि शासना व क्लेश में मुझको आगे करता है तब प्रह्लादजी ने उत्तर दिया कि हे महाराज! यदि

आत्मा सर्वमयहै तो फिर शत्रु व मित्र कहां रहे तब विष्णुभगवान् ने कहा कि जो सर्व आत्मा में तेरा विश्वास है तो तेरा पिता भी तो यही उपदेश करताहै कि आत्मा सर्वमयहै तू उस उपदेश को क्यों नहीं मानता तब प्रह्लादजी ने विनय किया कि आपकी इनबातों और शास्त्रों के अर्थ इन दोनों का प्रमाण करूं तो शास्त्र की आज्ञा मिटजाती है तब विष्णुभगवान् ने कहा कि कुछ मांगो तब प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि देना ईश्वरका धर्महै और लेना जीव का काम है परन्तु मैं इन दोनों से विरक्त हूं इस से मैं आपसे क्यामांगूं मुझको इनदोनोंमें से किसी की चाह नहीं है आप मुझको क्या देवेंगे प्रह्लाद के इस कथन को सुनकर विष्णुभगवान् को निश्चय हुआ कि प्रह्लाद इन दोनों भावों से विरक्त निष्काम और संशय रहित है तब कहने लगे कि मैंने अग्नि और जल को आज्ञा दीहै कि वे तुम्हारी सब प्रकार से रक्षा करके आनन्दपूर्वक रक्खें यह सुनकर प्रह्लादजी बोले कि हे महाराज! इतनी किसी में सामर्थ्य नहीं है कि मेरी रक्षा करे मैं एक आत्माही को सर्वमय देखताहूं इतना सुनके विष्णुभगवान् बोले कि अब मैं अन्तर्द्धान होकर अपने स्थान को जाताहूं तब प्रह्लादजी ने कहा कि अवतार कभी दृश्य और कभी अदृश्य होजाते हैं इसीकारण से मैं इन अवतारों का भजन कभी नहीं करता हूं और इसी दृश्यादृश्यके कारण से मैं सिवाय आत्मा के जो नित्य प्रकाशकहै और किसी का निश्चय न करूंगा यदि आप अपने स्थान को जाते हैं तो जाते समय उसी आत्मा का निरूपण करते जाइये तब विष्णुभगवान् बोले कि तुमको आत्मनिरूपण से क्या प्रयोजन है तब प्रह्लादजी ने विनय किया कि हे महाराज! जब मैं आत्मा हूं तो मेरे सिवाय और किसको उस आत्मनिरूपण से प्रयोजन होगा इस विष्णु और प्रह्लाद के उत्तर प्रति उत्तर के पश्चात् विष्णुभगवान् अन्तर्द्धान होकर अपने स्थान को चले गये और

प्रह्लाद भी जलमें से निकल के अपने पिताके निकट आया इस चरित्र को देखकर हिरण्यकशिपु अचम्भित होकर आश्चर्य करने लगा कि यह पुत्र जलमें से भी जीवित बच आया ! तब अत्यन्त क्रोध युक्त होकर प्रह्लाद को लोहे की जंजीर में बांधकर उनके मुंहपर इतने तमाचे मारे कि जिनकी पीड़ा से प्रह्लादजी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरपड़े और बोला कि रे अभागे, मतिमन्द ! तू तो स्वयं आत्मस्वरूप है और मुझसे कहता है कि विष्णु है, रे मूढ़ ! विष्णु तो तुझसेही प्रकाशवान् है वह आप को त्यागकर माया में लीन होता है ऐसी बातों में तुझ को लज्जा नहीं आती, कि आत्मा मैं हूं मुझ आत्मस्वरूप को छोड़कर तू मेरे सिवाय किसका भजन करता है तब प्रह्लादजी ने उत्तर दिया कि हे पिताजी ! आत्मा अच्युत ब्रह्म को कहते हैं आपको आत्मा कदापि नहीं कहसक्ते तब हिरण्यकशिपु ने कहा कि अभी तू जलके मध्य में विष्णु से कहता था कि मैं ही आत्माहूं तब मैं बहुत प्रसन्न हुआ परन्तु अब तू मेरे सम्मुख कहताहै कि आत्मा श्रीविष्णुजी हैं इस द्वैतको स्थित करना यह कहां की रीति है,हे पुत्र ! विचार करके देखो जो सम्पूर्ण संसार विष्णु होता तो प्राणी मात्र सबही चतुर्भुज होते तब प्रह्लाद जी ने पूछा कि हे पिता जी ! जब मैं विष्णु जी से वार्ता करता था उससमय आप कहां थे तब हिरण्यकशिपु ने कहा कि तुम, विष्णु और संवाद तीनों मैं ही था, कारण यह है कि मैं सबमें पूरित हूं इससे हे प्रह्लाद ! तू आत्मा को छोड़कर और किसी का ध्यान मतकर, विचार के देखले कि जब आत्माही सब में व्याप्त है तब विष्णु को क्यों सिद्ध करना है तब प्रह्लाद ने कहा कि यदि मैं ऐसा न कहूं तो संत और ससार के जीव विष्णुभगवान् को कैसे जानें मेरे कहने का प्रयोजन यह है कि यह पद नाश न होवे हे पिता ! तुम परमात्माहो तब हिरण्यकशिपुने कहा कि आत्मा और परमात्माका प्रकाशक मैंही हूं तब प्रह्लाद जी ने कहा कि जो कुछ कहने, सुनने

और देखने में आता है वह सब एक चैतन्य विष्णु है और यह पंच तत्वात्मक जगत् श्रीविष्णुही हैं यह सुनकर हिरण्यकशिपु अत्यन्त क्रोध युक्त होके बोला कि मैं इसी क्षण तेरा नाश किये देता हूं देखूं तेरा विष्णुनारायण कहां है तब प्रह्लाद जी बोले कि तुमने अभीतक विष्णुनारायण को नहीं जाना, तुम मुझे इतना कष्ट देते हो और वह मेरी रक्षा करते हैं इसी से सिद्ध है, फिर जहां निश्चय करे वहीं प्रकट होते हैं, तब हिरण्यकशिपु ने कहा कि तू बड़ा निर्लज्ज है तब प्रह्लाद ने कहा कि मैं पंचतत्त्व को त्यागकर श्रीविष्णुभगवान् कोही एक आत्मा जानता हूं इसी से आपकी दृष्टि में निर्लज्ज हूं इतना सुनतेही हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद के दोनों हाथ बांधकर खंभे में लटका दिया और नंगी तलवार लेकर कहने लगा कि अब दिखाव तेरा विष्णु कहां है तब प्रह्लाद जीने कहा कि जो वस्तु गुप्त होवे वह प्रकट करके दिखलाई जावे, वहतो सर्वव्यापी निरञ्जन मुझमें, तुझमें, खड्ग और खंभ में सब ही जगह विद्यमान हैं उनके सिवाय और कोई दूसरा नहीं है तब हिरण्यकशिपु ने कहा कि यदि प्रकट है तो निकलता क्यों नहीं है इससे जानाजाता है कि यह केवल भ्रम मात्र है तब प्रह्लादजीने कहा कि जो सम्पूर्ण नहीं है तो यह खंभ जिससे तुम ने मुझे बांधा है यह भी नहीं है ज्योंही प्रह्लादजी ने इतना कहा त्योंही उस खंभ से एक ऐसा गम्भीर शब्द हुआ कि जिसको सुनकर हिरण्यकशिपु भी शब्दाघात करके प्रह्लाद से बोला कि आज तूने अपना परमेश्वर प्रकट किया देखें यह मेरे साथ क्या करता है यदि मैं इस नाशवान् शरीर पर दृष्टि करूं तो भयभीत होता हूं इससे यही दृढ़ संधान है कि इसमें जो प्रकाशस्वरूप आत्मा है उसका नाश करनेवाला कोई नहीं है तब प्रह्लाद ने कहा कि हे पिता! अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है इस शरीराभिमान को छोड़कर कहो कि सर्वमय एक विष्णुही है तब हिरण्यकशिपु ने कहा कि आज कामना सिद्ध हुई जो शत्रु को रण

में सम्मुख पाया अब पीठ देना शूरता से विरुद्ध है यह सुनकर विष्णुभगवान् जैसे प्रातःकाल पूर्व दिशा से सूर्य का उदय होता है सन्ध्या समय में नृसिंहरूप से प्रकट होकर दरवाज़े के बीच में स्थित हुये और हिरण्यकशिपु के उदर को अपने नखों से विदीर्ण करडाला परन्तु हिरण्यकशिपु अपना उदर फट जाने पर भी तुरन्त विष्णु के हाथसे छुटकर और खड्ग हाथ में लेकर। उनके सम्मुख दौड़ा तब विष्णु भगवान् ने उसकी ऐसी दशा देख कर उससे कहा कि अब तुझमें जितना पराक्रम होवे मुझपर करके दिखाव, तब हिरण्यकशिपु ने जितना कि उसमें पराक्रम था विष्णुभगवान् पर किया तब नारायण ने उसको पकड़कर उसका शिर अपने पैरों पर रखकर उसके शरीर से जीव को भिन्न करदिया जिसको देखकर ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवगण आकाशसे फूल बर्षाकर स्तुति करनेलगे कि हे महा प्रभो! जब २ हम लोगों को दैत्यों से दारुण क्लेश पहुंचता है तब २ आपही रक्षक होकर उस दैत्यजनित कष्ट से बचातेहो, इसप्रकार देवगण विष्णुभगवान् की स्तुति करके फिर प्रह्लाद से बोले कि अब तुम इनके क्रोध को शान्त करो तब प्रह्लाद जी देवगणों के यह बचन सुनकर विष्णुभगवान् के सम्मुख हाथ जोड़के विनय करने लगे कि हे दीनानाथ! यह बाजीगर कासा चरित्र आपने क्यों किया और इतना क्रोध किसपर करतेहो हे करुणाकर! आपके सिवाय और कौन है सम्पूर्ण संसार आपही से उत्पन्न, पालन और लय होता है तब श्रीविष्णुभगवान् ने प्रह्लाद की इसप्रकार विनययुक्त नम्र बाणी सुनकर उनको अपनी गोद में उठालिया और उसी अपने रुधिर भरे हुये मुख से प्रह्लाद के मस्तक को सूंघकर बोले कि अब तुम निर्भय राज्य करो तब प्रह्लादजी ने विनय किया कि हे करुणाकर! अब मुझको इस राज्य की कांक्षा नहीं है कृपा करके मुझको सुराज्य दान दीजिये तब विष्णु भगवान् अन्तर्द्धान होगये और प्रह्लाद विष्णु जी की आज्ञानुसार अपने पिता

की राजगद्दी पर बैठकर राज्य करने लगा जब यह वार्ता यहां तक पहुँची तब पराशरजीने मैत्रेय से कहा कि हे विप्र ! मैंने प्रह्लाद की कथा तुमको भली बिधि से समझाकर सुनाई इस से तुमको क्या लाभ हुआ तुमने एक कान से सुनकर दूसरे से निकालदी इससे मेरा यह सम्पूर्ण कथन निष्फल हुआ तब मैत्रेय जीने कहा हे महाराज ! मुझे इस कथाके श्रवण करने से यह निश्चित होगया कि परमात्मा से अतिरिक्त और कुछ नहींहै तब पराशरजी ने कहा कि तुम अब भयभीत होकर यह समझो कि परमेश्वर की माया अति प्रबल है ब्रह्मादिक इस प्रबला से पार नहीं पासक्ते तब मैत्रेयजी बोले कि आप के कथन से यह निश्चय हुआ कि माया अति दुस्तर है परन्तु जब गोविन्द के स्वरूप में दृढ़ निश्चय हुआ कि जिसके बिना और कुछ वस्तु नहीं है तब माया से क्या काम रहा तब पराशरजी बोले कि अभी तेरी बुद्धि में पूर्ण प्रकार से भासित नहीं हुआ, यह माया परमेश्वर की बाजीगरी है हे मैत्रेयजी ! ध्यान धरकर श्रवण करो मैं तुमको कुछ और दृष्टान्त सुनाता हूं जब प्रह्लादजी अपने पिता के राज्यसिंहासन पर बैठ चुके तब एक दिन शुक्राचार्यजीने आकर प्रह्लाद से पूछा कि हे प्रह्लाद ! सत्य २ कहो कि हिरण्यकशिपु के मारने के लिये विष्णु भगवान् से तुमने कहा था अथवा उन्हीं ने स्वयं अपनी इच्छानुसार तुम्हारे पिता का बधकिया तब प्रह्लादजी बोले कि हे महाराज ! इस विषय में मैंने विष्णु भगवान् से कुछभी नहीं कहा उन्होंनेही अपनी इच्छानुसार उसका बधकिया मेरी तो यह इच्छा भी न थी तब शुक्राचार्यने कहा कि हे प्रह्लाद ! जबतक तुम अपने पिता के नाश होने का बदला शत्रु से न लेवो तुम्हारा जीवन मृत्यु से भी निन्दित है बरन तुम्हारा भोजन व जलपान इत्यादि सब पाप रूपही है तब प्रह्लादजीने कहा कि किसकी सामर्थ्य है कि विष्णु भगवान् की समता करसके तब शुक्राचार्यजी बोले कि

गोविन्द कहा है कि जो तुझको निश्चय हुआ वह तो नाम रूप से न्यारा है धर्म शास्त्र में लिखा है कि जबतक पुत्र पिता का बदला न ले लेवे तबतक जो कुछ करता है सब वृथा अर्थात् निष्फल है। शुक्राचार्य से इस वार्त्ता को सुनकर प्रह्लादजी बोले कि हे शुक्र! प्रथम तो आप कहते थे कि जिस समय तेरी श्वास रुकी सर्व विष्णुको माना और कहा कि गोविन्द का भजन कर और अब कहते हो कि उसको मारो यदि हिरण्यकशिपु को उसके मारने की शक्ति न थी तो मेरी क्या सामर्थ्य है तब शुक्राचार्य ने कहा कि तेरे पिताने इसी स्थूल शरीर पर निश्चय किया था उसको आत्मशक्ति का ज्ञान न था परन्तु तुझको आत्मशक्ति का भली विधि से बोध है इससे तू इसकार्य के सिद्ध करने में समर्थ है तुझ से यह सिद्ध होवेगा पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी! प्रह्लाद जिस जिज्ञासा बिषे कि पिताकी बड़ी शासना सहने पर भी अपनी प्रतीति से न फिरा था अब शुक्राचार्य के कहने से क्षणमात्र में कुसंग वश होके उसके चित्त में यह चाहना उपजी कि यदि आप आज्ञा दीजिये तो मैं शक्ति रखता हूं कि पिताका बदलालूं और इसी क्षण विष्णुका नाश करूं फिर शुक्र के मंत्र से राक्षसों को इकट्ठा होने की आज्ञा देकर फौज इकट्ठी की और नगर से पांच योजन पर जा उतरा यह चरित्र देख विष्णु भगवान् अन्तर्यामीने जो प्रह्लाद के हृदय में स्थित थे जाना कि प्रह्लाद ने सत्य बुद्धि का त्याग करके दुर्बुद्धि और राज्याभिमान में स्थित होकर यह साहस किया है, क्याकरे कुसंगति का फल सदा निकृष्ट होता है, वृद्ध ब्राह्मणका दुर्बल भेष धारण करके व लकड़ी हाथ में लिये हुये हिलते कांपते आकर पूंछा कि यह क्या धूम धामहै तब लोगोंने बतलाया कि प्रह्लाद को विष्णु के साथ युद्ध करने की इच्छा है इसलिये आगे से न आइये क्योंकि जो किसी कामके जाते समय ब्राह्मण आगे से आकर मिले तो अशुभ होता है यह सुनकर ब्राह्मण ने

उत्तर दिया कि प्रह्लाद ब्राह्मण और दुखियों पर दया करताहै तब उन्होंने कहा कि पहिले थे अब उसकी प्रकृति बदलगई है तब ब्राह्मण ने कहा कि मैं बृद्ध हूं मुझको क्या डरहै शरीर में मांस तक नहीं रहा मैं यह जानता हूं कि यह शरीर आज कलह में नाश हुआ चाहता है इससे किसी तरह की शंका नहीं है यह सुनकर उनमें से कोई भी न बोला और वह बृद्ध ब्राह्मण प्रह्लाद के निकट पहुँचा तब प्रह्लाद ने उसे आते देख पूछा कि तू कौन है और यहां किस कार्य के लिये आता है तब ब्राह्मण ने कहा कि मैं ईश्वर के अन्याय से पीड़ित होकर तुम्हारी शरण में आयाहूं उसने मेरा सम्पूर्ण कुटुम्बनाश करदिया और अब मुझको भी नाशकरना चाहता है,मैंने सुनाहै कि आपने ईश्वर के नाश करनेका बिचारांश कियाहै इससे तुम धन्यहो, मैं जानता हूंकि तुमने यह बुद्धि अपनेदयालु गुरुजी से पाईहै, परन्तु यह बताओ कि तुमने उस विष्णुके रहने का स्थान कहां विचारा है जो तुम सेना लेकर युद्धकेनिमित्त अपने गृहसे बाहरनिकलेहो, वह विष्णुकहांहै मैं भी चलकर तुम्हारी सहायता से युद्धकरूं और अपने पिता पितामह का उससे बदलालूं तब प्रह्लादने कहा कि मैं उसके रहने का स्थाननहीं जानताहूं कि वह कहां रहता है तब ब्राह्मण ने हँसकर कहा कि जैसा मैं मूर्ख था वैसाही तूभी मिला, भला जिसको न कहीं देखही सक्के न उसका स्थानही जानतेहो उससे पिता का बदला किस तरह ले सकते हो तब प्रह्लाद ने कहा कि बदला मैं अवश्य लूंगा तब उस ब्राह्मणने कहा कि मुझे किस तरह निश्चयहो पहिले यह लकड़ी जो मेरे हाथ में है मैं इसको पृथ्वीपर डालता हूं तुम इसी को उठाकर मेरे हाथ में दो, मैं इसी से इसबात की परीक्षा करलूं कि यह कार्य तुमसे सिद्ध होजायेगा तब प्रह्लाद ने कहा तू यह क्या कहता है तब ब्राह्मणने कहा कि उठायकर देखो तब प्रह्लाद ने कहा बहुत अच्छी बातहै तू इसको पृथ्वी में डालदे मैं उठालूंगा इसी बात चीत में

उस ब्राह्मण ने वह लकड़ी अपने हाथ से पृथ्वीपर गिरादी और प्रह्लादने चाहा कि इसको पृथ्वी पर से उठालूं परन्तु सम्पूर्ण शारीरिक बल करके हारगया और वह लकड़ी पृथ्वी से कुछ भी न उठी तब ब्राह्मण ने कहा कि जो तू इस लकड़ी कोही न उठासका तो विष्णु को कैसे मारेगा तब प्रह्लाद को निश्चय होगया कि ये ही विष्णु भगवान् हैं तब उस ब्राह्मणके चरणों पर अपना मस्तक धर के विनती करनेलगा और प्रार्थनाकी हे महाराज ! मैं आपकी शरण में हूं आप दया पूर्वक मेरी रक्षा कीजिये तब विष्णु भगवान् ने कहा कि तू मुझपर क्षमाकर कि तू ने मेरे मारने की इच्छा की है तब प्रह्लाद ने कहा कि हे महाराज ! मैं निरपराध हूं यह सब शुक्राचार्य के उपदेश का फल है तब बिष्णु भगवान् बोले कि इसीकारण से कहा है कि गुरु कीजिये जानके और पानीपीजे छानके अर्थात् गुरुऐसा होनाचाहिये जो ज्ञानविज्ञान से सम्पन्न होवे तब प्रह्लादने कहा कि ऐसा गुरु कहां पाऊं तब बिष्णु भगवान् बोलेकि एकसंत आपसे आप मेरे रूपसे तुम्हारे निकट आवेगा तुम उसके चरणोंकी धूलिकी चाहना अपने मनबिषे रखना पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी ! जबऐसे बुद्धिमान् प्रह्लाद को कि जिसने अपने पितासे इतना कष्ट पानेपर भी अपने बिश्वासको दृढ़रक्खा और अपने निश्चयसे न फिरा अंत में उसको भी मायाने भ्रमादिया तो तू किस गिनतीमें है तब मैत्रेयजीने कहा कि हे प्रभो ! फिरमैं क्या यत्नकरूं तब पराशरजी बोले कि वहीकरो जिसमें कुछ करना नहो तब मैत्रेयजीने पूछा कि हे महाराज ! यदिमैं कुछ न करूं तो इसअज्ञान सागर से किस तरहपार पाऊंगा तब पराशरजीने कहा कि जो तू सदा मेरा ध्यान कियाकर तो तुझे माया दुःख न देवेगी परन्तु यहभी यादरखना कि ध्यान करने कोही माया कहतेहैं इससे गोबिंदका भजन कर तब मैत्रेयजीने पूछा कि यदिभजन करने से माया छूटजातीहै तो प्रह्लादसे क्या चूकपड़ी कि उसको मायाने नहीं छोड़ा तब पराशर-

जी बोले कि वह अपनेको बड़ाजानताथा "अपनेको श्रेष्ठ जानना,, इसीको माया कहते हैं तू इसको छोड़दे जब यह छूटजायगी तब माया स्वयं निवृत्त होजायगी तब मैत्रेयजीने पूछा कि प्रह्लादको कौनसंत मिलाथा जिससे उसे यहज्ञान प्राप्तहुआ तव पराशरजी बोले कि जब भगवद्रूप दत्तात्रेयजी नगरके समीप आये और वहां से कुछ दूरपर स्थितहोकर अपनी बांहको शिरकेनीचे तकियाकी तरह रखकर सोगये कि इतने में राक्षसोंने उनको शयन करते हुये देखकर आकर पूछा कि तुम कौनहो तब अवधूत अर्थात् दत्तात्रेयजीने उनसे कहा कि मैं राक्षसहूं यह बचन सुनकर उनमेंसे एकने जाकर प्रह्लादजीसे कहा कि एक परमहंस तुम्हारे नगर के निकट आये हैं उनकी जातिपांति का कुछ ठीक नहीं जाना जाता परन्तु वे दर्शन करने योग्य हैं इतना सुनतेही प्रह्लादजी तुरन्त उठकर उनके समीप गये और दंडवत् करके अपने जीमें शोचने लगे कि मैं इनका वर्णाश्रम भी नहीं जानताहूं इनको किस तरह से प्रणाम करूं यह शोच करके उनसे पूछा कि आप कौन हैं और कहां से आये व कहां को जायँगे जब अवधूत ने उत्तर न दिया तब प्रह्लादने पूंछा कि आपने कुछ उत्तर न दिया इसी तरह जब प्रह्लाद ने तीनबार अवधूत से पूछा तब तीसरी बार अवधूत ने प्रह्लादसे कहा कि मैंने सुना है प्रह्लाद परमहंसहै परन्तु दिखाई नहीं देता तब प्रह्लादने उत्तर दिया कि मैं माया से परे हूं तब अवधूत ने कहा कि इसी को माया कहते हैं कि जिससे देखकर भी पूंछता है कि तुम कौनहो व कहां से आते और कहां जावोगे, देखो जब कि कोई वस्तु गोविन्द से भिन्न नहीं है तब गोविन्द कहांसे आवे और कहां जाय और क्याकहे कि कौन हूं वह तो वायु की तरह सब जगह पूरित है फिर उस में आना जाना कहां है, ये तेरी राक्षसी बुद्धि है इसी को त्याग कर। यह सुनकर प्रह्लाद ने पूछा कि फिर मैं क्याकरूं तब अवधूत ने समझाया कि वही करो जिसमें करना न हो इसको सन

कर प्रह्लादने पूंछा कि जो करना नहीं है तो क्या करना चाहिये तब अवधूत ने कहा कि इसीको कर्म कहते हैं, कि कर्म नहीं है गोविन्द है, हे प्रह्लाद! जब यह ज्ञान प्राप्त होवे कि एक गोविंही है, तब मैं और तू यह द्वैत बुद्धि नष्ट होजाती है और जब मैं और तू के द्वैताभाव का ज्ञान प्राप्त हुआ तब आना, जाना, अपना, पराया यह जो अहङ्कारमय ज्ञानबुद्धि एक लोहे की शृङ्खला के समान तेरे जीवरूपी हृदय के पैर में पड़ी है इससे मुक्त होजावेगा और जब तक जीव इस जंजीर से नहीं छूटता तबतक आने जाने का कारण बना रहताहै हे प्रह्लाद! जो ज्ञानी इस जंजीर को अपने ज्ञानरूपी खड्ग से काटता है वह संसार से पार होकर निर्वाणपद पर पहुंचता है और जो तू मेरा नाम पूछताहै सो मुझको सब लोग दत्तात्रेय अवधूत कहते हैं, परन्तु यह नाम केवल अहङ्कार है, मेरा नगर कोई नहीं जानता कि मैं कहां से आयाहूं और न मेरे जानेके स्थान को कोई जानता है कि मैं कहां जाऊंगा, इस स्थूल शरीर को कि जिसे तुम समझते हो मैं प्रह्लाद हूं इसको सदा नाशवान् समझो जब इस शरीर का विनाश होताहै तब इसके तीन प्रकार के रूपान्तर अर्थात् कृमि, बिट्, भस्म होते हैं अर्थात् जलाया गया तो भस्म किसी ने खालिया तो बिट् (मल) और यदि पड़ारहा तो कीड़ा पड़जाते हैं तू इसी नाशवान् शरीर के बलपर अहङ्कार करके अपने को राजा बताता है यदि तू राजा है तो तेरी प्रजा कौन है, हे प्रह्लाद! इसी को माया कहते हैं जिससे तूने अपने को प्रह्लाद निश्चित किया है, तुझे चाहिये कि इस बुरे ध्यान को अपने मन के पात्र से धोडाल और विचार करके देख कि यह क्या वस्तु है कि जिसके ऊपर चर्म और भीतर मांस, रुधिर, हाड़ और मज्जा है तू ऐसी निन्दित वस्तु को कहता है कि मैंहूं तुझे इस बातके कहने से लज्जा नहीं आती, हे प्रह्लाद! विचार करो कि जब तू और यह शरीर जो अहङ्कार व माया का रूप है इसको तूने

अपना जाना तब सर्व दुःखोंका भोक्ता हुआ, इस मांस के टुकड़े को कि जो शरीर का घर है अपना जानकर कहता है कि मैं महात्माहूं, यदि ऊपर से कहता है कि मैं शरीर नहीं हूं और भीतर से इससे स्नेह रखता है तो यह अच्छा नहीं। निश्चय करके जानो कि यह शरीर काल का एक ग्रास है और मैं इससे परेहूं, यदि शरीर से परे है तो इसके दुःख सुख से अपनेको दुःख में क्यों डालता और मोह करताहै। इस शरीर की बनावट चार प्रकारसे है अर्थात् नाम, रूप, कर्म, अहङ्कार और इन तीनों वस्तुओं की पुष्टता अहङ्कार से है जो अहङ्कार नहो तो तीनों नहीं हैं यह सुनकर प्रह्लादजी ने कहा कि आप मेरे गुरु हैं मुझ को उपदेश कीजिये, तब दत्तात्रेय अर्थात् अवधूत ने कहा कि पांचतत्त्व और दश इन्द्रिय तू नहीं है और वर्णाश्रम से दूर किसी वस्तु से तेरा मेल नहीं है और क्रिया कर्म से रहित है तू आपही आत्म स्वरूप है। तू अपने को नाशवान् जान, क्योंकि तू शरीर नहीं है। तेरा सत्, चित्, आनन्द स्वरूप है इस लिये जीवन, मरण का शोक किसलिये करता है, जो जन्मता है वह अवश्य मरता है और जो मरता है वह अवश्य जन्म पाता है मैं तुझ को मैं यह उपदेश करताहूं इसको अपने हृदयमें रखके विचारकर। हे प्रह्लाद! गोविन्द का भजन करो जो अहङ्कार के मल से शुद्ध होजावो। तब प्रह्लादजीने कहा कि हे दत्तात्रेयजी! मैं आप की आराम केलिये चारपाई लेआऊं आप उसपर सुख से विश्राम करें तब दत्तात्रेयजीने कहाकि हे प्रह्लाद! यदि भाग्यवश इस शरीरको रेशमकी बिनीहुई चारपाई मिलजावे तो कुछ आनन्द नहीं और न कांटोंके मिलने से कुछ दुःखही प्राप्त होताहै तब प्रह्लाद ने कहा कि कुछ भोजन कीजिये तब अवधूत ने कहा कि यदि कुछ भोजन मिलगया तो करलेताहूं नहीं तो सूखे पत्तोंही से अपनी क्षुधा मिटा लेताहूं तब प्रह्लाद ने कहा कि राज्य कीजिये अवधूत ने उत्तर दिया कि किसान और देश मेरी दृष्टि में नहीं है तब

प्रह्लाद ने कहा कि जैसे चारपाई पर सोना और भोजन करना ग्रहण करतेहो उसीतरह राज्य भी कीजिये तब अवधूतने कहा कि मैं स्वयं अर्थात् आपीआप राजाहूं न मेरे कोई भ्राताहै न मित्र, जो प्रजा होवे अब मैं जो तुझ से प्रकट करताहूं उसको ध्यान देकर श्रवणकर! इससंसार के आदिमें मेरी इच्छा जिस को प्रकृति कहते हैं उत्पन्न हुई फिर उस प्रकृति से तीन गुण, जिनको सात्त्विक, राजस, तामस कहते हैं पैदाहुये। जिनमें तामस से पंच भूत और राजस से दश इन्द्री, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार यह चारों जो मेरे मन्त्री हैं उत्पन्न हुये मैं इन्हीं की सहायता से इस शरीर रूपी नगर की पालना करताहूं! यदि पूछो कि हाथी, घोड़ा, रथ पियादा जो राजका सामान है वह कहां है तो उसे भी तुमको सुनाता हूं श्रवण करो। अहंकार मेरा रथ, सात्त्विक शान्ति उसका सारथी, मन हाथी, चित्तघोड़ा, बुद्धि पियादाहै और यही बुद्धि सबकी सहायक और शरीरको पालन करनेवालीहै इस से इसशरीरके नगरमें जो पच्चीस बस्तुसे रचाहुआहै मैं एकराजा हूं यहसुनकर प्रह्लादजी ने पूछा कि मैं कौन हूं तब अवधूतने उत्तर दिया तू वही राजा है कि जिसका मैं ऊपर बर्णन करचुका हूं तब प्रह्लादने पूछा कि हे कृपासिंधु! गोबिन्दका भजन किसप्रकार का है दया करके इसे भी समझाइये यहसुनकर अवधूत ने उत्तर दिया कि मैं तुमको समझाताहूं इसको ध्यान धरकर सुनो हे प्रह्लादजी! गोबिन्दका भजन उसी को अच्छा लगता है जो कि शरीराभिमान से रहित है क्योंकि चित्त एक है इससे जो कुछ उसके सम्मुख पड़ा वही प्रकृति होती है और जिसने शरीरका अभिमान किया वह गोविंदका भजन कैसे करसकेगा हे प्रह्लाद! जोकोई शरीराभिमान करके गोबिन्द का भजन करताहै उसको मनुष्य देह धारण करनेका आनन्द कभी नहीं प्राप्तहोता क्योंकि वह अपने मनमें बिचारताहै कि मैं अमुकहोकर गोविन्दका भजन करताहूं मुझ में और गोविन्द में द्वैत नहीं है इससे जो श्वास

आती है उससे गोविंद गोविन्द कहो, यदि चाहो कि ममता भी बनी रहे और गोविन्द के भजन का सुख भी प्राप्तहो तो यह अत्यन्त दुर्लभ है, स्वरूप का जानना यह है कि, आपही शोचे कि मैं कौन हूं, और कहां से आया व कहां जाऊंगा। जिसकी स्थूल दृष्टि है वह परमेश्वर को कैसे जानसक्ताहै। पाप पुण्यकी दृष्टि खुली है और भीतर से क्या जाने कि क्यावस्तु है, जैसे तू मुझे देखनेको आया परन्तु नमस्कार न किया और मनमें शोचने लगा कि इनका वर्णाश्रम क्या है। तब तुझको गोविन्द के सुखसे क्या लाभ है। यदि कहो कि गोविन्द में वर्णाश्रम है या नहीं, परन्तु तू मूर्ख है तेरी दृष्टि शरीरपर है, शरीर क्या है? मांस, चर्म, और रुधिर। तूने स्वरूपको नहीं जाना इससे जो तेरे समान वर्णाश्रम रखता हो उससे मिल। आश्चर्य है किअपना माथा जो मेरे चरणपर रखताहै वह भी मांसका टुकड़ाहै। मुझको तुझसे चरण छुवाने की इच्छा नहीं है। परन्तु अपने को जान और जो अपनेको जानताहै वह तू नहीं है। तू सर्व दृश्यका प्रकाशक रूपहै। जागृत्,स्वप्न,सुषुप्ति कहांहै। यदि तेरी दृष्टिअसल स्वरूपपर पड़े तो भीतर बाहर से उड़ने लगे,और आपीआप होजाय। हे प्रह्लाद! तू अपना, पराया छोड़कर श्रीगोविन्दका भजनकर यह निकृष्ट ख़याल नाहक मनमें करता है कि मैंने इतने दिन गोबिन्दका भजन किया परन्तु दर्शन न पाया,तेरे मनमें तो पाखण्डहै उसको कैसे पावे, अगर तू पूछे कि पाखंड क्या है तो सुन कि जिह्वासे नारायण नारायण करे और मनमें इच्छा सांसारिक पदार्थों के भोग की रक्खे। इससे इस इच्छाको निश्चयरूपी अग्नि से जलादे कि जिससे आपहीआप होजावे, यदि तू पूछे कि निश्चय किसतरह प्राप्तहोवे तो पाखण्डको मनसे दूर करके महात्माओंका सत्संगकर महात्मा कौनहै, जो अपने सिवाय दूसरेको न जाने व अपने और सम्पूर्ण स्थावर, जंगम में एक प्रकाश देखे, इसी को मुक्ति कहतेहैं, क्या भगवान् की भक्ति यही है कि अपने और भगवान्

में द्वैतभाव देखता है। और प्रत्यक्ष में किसी से प्रीति करै जिससे वह जाने कि मित्र है यदि बीच में फरकपड़ा तो परदा पड़गया, इससे आपही शोचो कि अन्तर्यामी से जो सम्पूर्ण संसार की गुप्त प्रकट व सबके मनका भेद जाननेवालाहै उससे प्रीति क-रना और अभिमान (आपा)का परदा बीचमें रखना यह परमात्मा की भेंट की अप्राप्ती है।यदि कहो कि आपाक्याहै.तो सुनो यहविचा-रना वृथाहै कि मैं प्रह्लाद हूं और यह शरीर व यह वर्णाश्रम मेरा है इसको अन्तर्दृष्टि से देखो कि श्रीनारायणही हैं प्रह्लाद कहां है और यह निश्चय करो तू शरीर नहीं है। जो यह नहीं है तो वह जो है सो तू है तब फिर प्रह्लादने पूछा कि यदि मैं नहीं हूं तो तू कौन है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि मैं नहीं हूं तब फिर प्रह्लाद बोले कि जो मैं व तू नहीं है तो कौन है अवधूत ने यह सुनकर उत्तरादिया कि मुझ में इतनी शक्ति नहीं है कि जो मैं कहूं यह है तब प्रह्लादने पूछा कि यदि तुम में कहने की पूर्ण शक्ति नहीं है परन्तु जो कुछभी शक्ति हो तो कहिये तब अवधूत ने कहा कि हे प्रह्लाद ! नाशवान् और नित्य दो वस्तु हैं परन्तु नित्य को, कौन है इससे जो नाशवान् है कहता है वही है तब प्रह्लाद ने पूछा कि हे महाराज ! नित्य को अनित्य कौन कह सकता है तब अवधूत ने कहा कि यदि यह भेद जानने की तुम्हारी इच्छाहै तो ध्यान लगाकर सुनो, यह शरीर पञ्चभौतिक अर्थात् पांचतत्त्वों से बना है और इस महत्तत्त्व की जड़ अह-ङ्कार है, यह महत्तत्त्व अहङ्कार माया अर्थात् अविद्या से देखा गया है,और फिर त्रिगुण अर्थात् सत, रज, तम हुआ। फिर तमो-गुण से पञ्चतत्त्व और रजोगुण से दश इन्द्रिय और सतोगुण से अन्तःकरण और जीव और देवते उत्पन्न हुये, इसी वस्तु से इस शरीर का शृङ्गार है। अब शरीर क्या है। यह शरीर मांस की प्रतिमा है, और यही शरीर उत्पन्न होता और मरता है और जो इस सम्पूर्ण शरीर का प्रकाशक है वह तू है यह सुनकर

प्रह्लाद ने पूछा कि मैं कौनहूं तबअवधूत ने कहा कि योग कर, क्योंकि वह योग के बिना जाना नहीं जाता तब प्रह्लाद ने कहा कि योग क्या है मुझे बतलाइये तो करूं तब अवधूतने उत्तर दिया कि योग दोप्रकारकाहै एक चींटीमार्ग दूसरा विहङ्गमार्ग दोनोंमें तुझे जिसके पूछने की इच्छा होवे वह बतलाऊं तब प्रह्लादने कहा कि हे महाराज! आप दया करके मुझको दोनों मार्ग समझाइये तब अवधूत ने कहा कि प्रथम चींटीमार्ग को सुनाताहूं ध्यान से सुनो—पहले शनैः शनैः प्राणायाम करकेफिर धीरे धीरे शरीर के सम्पूर्ण छिद्रों को बन्द करना चाहिये जैसे चींटी किसी वृक्ष पर चढ़ती है परन्तु मध्यमार्ग में यदि उसका पैर कांपता तो फिर पृथ्वी पर गिर पड़ती है और फिर चढ़ती है यही दशा इसमार्ग की है हे प्रह्लाद! तू राक्षस है यह लज्जा योग्य चींटीमार्ग तेरे ग्रहण करने लायक नहीं है। अब दूसरा विहङ्गमार्ग तुझे सुनाता हूं उसको भी ध्यान से सुन। जैसे विहङ्ग बिना किसी के सहारे पृथ्वी से उड़कर आकाश और पहाड़ों में घूमता हुआ स्वेच्छाचारी होकर सम्पूर्ण संसार में विचरकर आनन्द को प्राप्त होता है इसी तरह इस मार्ग का ग्रहण करनेवाला सर्वत्र आनन्द पूर्वक विचर सक्ता है। इन दोनों मार्गों में जो तुझको अच्छा लगे उसको ग्रहण कर इस प्रसङ्ग को सुनकर प्रह्लाद ने कहा कि महाराज मालूम होताहै कि विहङ्गमार्ग अति उत्तम है परन्तु जो कोई तीरन्दाज तीर से मारे तो अवश्य पृथ्वीपर गिरपड़ता है तब अवधूत ने कहा कि हे मूर्ख! उनका उड़ान पंख से नहीं है वे चित्तके पंख से आकाश से पाताल पर्यन्त उड़ते हैं इससे प्रेमी एक मास की राह एक दण्ड में जासक्ता है हे प्रह्लाद! अब कहो चित्त का रूप कैसा है तब प्रह्लाद ने कहा कि चित्त को सुनताहूं परन्तु उसका रूप देखा नहीं है तब अवधूतने कहा कि वह निराकार है इस कारण से दृष्टिमें नहीं आता इस विषय में एक इतिहास तुझे सुनाताहूं उसको ध्यान से सुन॥

इतिहास–मैं एक समय हिमाचल पर्वत पर गया तो जितने पग उठाताथा मुझे मालूम होताथा कि सर्व शिवही हैं और जितनी श्वासें भीतर से बाहर निकलती थीं वेभी सम्पूर्ण सदाशिवही जान पड़ती थीं व हाथी, पहाड़ व वृक्ष फलफूल आदि जो मेरी दृष्टि में पड़ते थे वे सब शिव का रूपही दिखाई पड़ते थे भरना जो पहाड़ पर बहता था वह भी शिव शिव कहता था। हे प्रह्लाद ! इसी प्रकार विहंग मार्ग है इससे विहंग अमुकके समान कहां उड़के जाय जानो कि भीतर बाहर सर्व शिवही है यह नामरूप शिव है दृष्टादृष्ट दर्शन सर्व शिव है, भोगी व त्यागी सर्व शिवहै स्थावर, जंगम, सूर्य, चन्द्रमा और तारा गण भी सर्व शिव हैं। हे प्रह्लाद ! मैं इसी प्रकार सम्पूर्ण चरित्र देखता चलाजाता था जब शिखर पर पहुंचा तो क्या देखताहूं कि वहां नौ योगेश्वर बैठे हुये हैं। यदि तुम पूछो कि वे नौ कौन थे तो सुनो मैं तुमको उनके नाम विवरण से सुनाताहूं–उनमें पंच महाभूत व चित्त बुद्धि मन व अहंकार जिसको विष्णु पारषद् कहते हैं ये सब योग की यत्न करतेथे जब मैंने उनसे पूछा कि आप लोग यहां क्या करते हैं तब उन्होंने उत्तर दिया कि हम लोग यहां योग करते हैं तब मैंने उनसे पूछा कि किससे योग करतेहो उन्होंने कहा कि आकार में योग करते हैं उनकी यह वार्ता सुनके मैं हँसा और उनसे कहा कि हे मित्रो ! आकार तो तुम्हीं हो फिर किसके साथ योग करतेहो तब उन्होंने कहा कि यह हमने आज तुमसे जाना कि आकार हम लोग हैं अगर पहिले से जानते कि हमीं आकार हैं तो आकार से न मिलते तब मैंने कहा कि हे अवधूतो ! तुम नवों शरीर कहां से उत्पन्न हुये तब उन्होंने उत्तर दिया हम लोग निराकार से उत्पन्न हुयेहैं तब मैंने उनसे कहा कि निराकार तो एक है उसमें योग क्याकरें; वह आपी आप है, इस बचन के सुनने से हमको ज्ञात हुआ कि हम निराकार हैं। हे प्रह्लाद ! यह मैंने तुमको विहंग मार्ग

सुनाया, यह सुनकर प्रह्लादजी ने कहा कि हे महाराज! यह विहंग मार्ग मुझको बहुतअच्छा लगा परन्तु तुमको एक मार्ग की बड़ाई व दूसरे की निन्दा करना उचित नहीं है तब अवधूत ने कहाकि यदि तूही तू है तब कौन भला और कौन बुरा है मैं तुझसे एक बात कहताहूं जिसमें कौन, व क्या और विहंगम तीनों नहीं हैं क्योंकि ये सम्पूर्ण एक शिवही है तू कुछ मतकर और भगवान् में लीन हो तब प्रह्लाद ने कहा कि हे अवधूत! मैं राक्षसहूं तब अवधूत ने कहा कि यदि तू राक्षसहै तो मनुष्य कौनसाहै, निश्चय कर कि सर्वत्र तूही है तब प्रह्लादने कहा कि इस बिषय को मैं नहीं जानताहूं कहांजाऊं क्या कहूं और कौन कर्म करूं, मैं और विहंगम कहां और प्रह्लाद कौन है और अवधूत कहांहै और यह भी नहीं जानता कि शत्रु, मित्र, जीवन मरण व अपना पराया और स्थूल सूक्ष्म क्या वस्तु है न गुप्त प्रकटही को देखताहूं हे अवधूत! न तू अतिथि और न मैं राक्षस हूं और न यह संसार न जीव न ईश्वर है एक अद्वितीय आत्मा बचन से रहित हुआ मैं अर्थात् गूंगाहूं जैसे कि कोई मनुष्य जंगलमें बैठकर आपी आप बातकरे तो उसका बचन किसके साथ है इससे क्या कहूं दूसरा नहीं, हे अवधूत! अब मैंने जाना कि संत मैं ही हूं, सत्संग यही सुफल है, श्रीविष्णुजीने सत्य कहा था कि एक संत मेरा स्वरूपहै तुझे मिलेगा तेरीस्तुति किस जिह्वा से करूं क्योंकि मुझ व मेरी वार्त्ताकी तुझतक गम नहीं है और मैं अज्ञानी तु नहीं हूं जो कहूं कि मेरा उद्धार न किया, यही तेरी स्तुति है कि सर्व तूही है नहीं नहीं मिथ्या कहा मैं सर्व कहां है तूही है स्तुत्ति तेरी यह है कि तूनेसर्व तूही है, तेरेमें सर्वही है, आपी आपहै, तातें अपनेको मैंने तुझको दिया और आप हुआ मैं नहीं हूं तूही है तब अवधूत ने कहा कि झूंठ मतकहो क्यादिया औरक्याहुआ कहांहैतें कि देनालेना मध्य में नहीं है सर्व शिव है तातें मेरी नमस्कार मुझको है अब जाताहूं तब प्रह्लाद ने कहा कि तेरे विना मेरा जीवन न होगा

तब अवधूत ने कहा कि तू सत्य कहता है तेरे में जन्म मृत्यु दोनों नहीं हैं और तू मृत्यु से रहित है मैंने जाना कि तू अद्वितीय है तब प्रह्लाद ने कहा कि यदि कोई कहै कि तू विष खाले तो मैं विष खालूं परन्तु सन्तों का सत्संग ब्रह्मनेष्ठी का कैसे त्याग करसक्ता हूं संत मेरे प्राण हैं, नहीं प्राण कहा है संत आप हैं, काहेते यदि संत को भगवान् के तुल्य कहूं तो अनुचित है क्योंकि भगवान् सम्पूर्ण उपाधियों से युक्त है अर्थात् उत्पत्ति, पालन और नाश करना उसका काम है और संत निर्मल है हे अवधूत! अब तुम कहीं न जाव इसी स्थान पर रहो तब अवधूत ने कहा कि मैं आदि से पूर्ण हूं कहां जाऊं और कहां रहूं तब प्रह्लाद ने कहा कि क्या कहूं वचन तेरे समीप लहती नहीं केवल एक नारायण है दूसरा नहीं है। मूर्ख अज्ञानी से कहता है कि कोई यत्न हो तो उसे देखूं मैं आपको नहीं जानता कि मैं कौन हूं परमार्थरूप आप शिव है। और कहता है कि उसको देखें, तब कैसे प्राप्त हो, हे अवधूत! मेरे साथ विहार करो तब अवधूत ने कहा कि स्त्री पुरुष मेरी दृष्टि में नहीं है, आपी आप शिवरूप हूं॥ तब प्रह्लाद ने कहा कि मैं आप से पूछता हूं पर यह नहीं जानता कि मैं कौन हूं क्योंकि मैं अपने में नहीं हूं, और आपी आप हूं, यदि कहूं कि तेरे सत्संग से मुझको कुछ प्राप्त हुआ तो नहीं, क्योंकि एक अद्वितीय शिव है इससे जहां तेरी इच्छा हो वहां जा मैंने अपने को जाना कि सर्व मैंही हूं तब अवधूत ने कहा कि जिह्वा से कहता है और मनमें दूसरे का शोच रखता है जो तुमको श्रीगोविन्द के दर्शन की इच्छा है तो जान कि गुप्त, प्रकट वही है, यही श्रीगोविंदजी का भजन है कि सर्व भगवद्रूप है, तुमको चाहिये कि आपा को त्यागकर आपी आप होजावे और ज्ञान प्राप्ति का सारांश है तब प्रह्लाद ने कहा कि जब आपे से रहित हों तब आप कैसे हों तब अवधूत ने कहा कि जब आपा मिट गया तब कहो कि नारायण है,

यदि वही है तब सर्व वही है, दूसरा नहीं, इससे सर्वसाधन और कर्म यही है कि तू जान कि श्रीगोविन्द है, जब चैतन्यको जाना तब वही हुआ ताते स्वरूपको मत देख काहे ते कि रूप कोई वस्तु नहीं है वह सर्वआत्मा है, हे प्रह्लाद! यदि तू जानना चाहता है तो जान ले कि मैं भी वही हूं तब प्रह्लाद ने पूछा कि हे महाराज! मुक्त क्या वस्तु है यह भी दयापूर्वक समझाइये तब अवधूत ने उत्तर दिया कि इसके जानने का यही उपाय है कि सर्वमय नारायणही को जाने, क्योंकि आत्मा सम्पूर्ण पदार्थों में आकाश की तरह परिपूर्ण है, हे प्रह्लाद! तुम राक्षसी बुद्धि का त्याग करो और पाखंडी न बनो यह समझो कि वह पुरुष भाग्यहीन है जो नारायण के सिवाय दूसरी वस्तु निश्चय करे, और जो पुरुष चलना, निद्रा, भोजन इत्यादि सम्पूर्ण वस्तुओं को एक समझे उसको धन्यभाग्य समझना चाहिये, मैं ऐसा अतिथि नहीं हूं कि जो राज्य व सम्प्रदाय की रक्षा करूं इससे सारांश यह निकलता है कि अपने सिवाय और कुछ न देखो न सुनो, तुम्हारे विना कोई दूसरा नहीं है, जो कुछ दृश्यपदार्थ है उस सम्पूर्ण को मिथ्या और अहंकारमय जानो, यदि तुमको निश्चय न होवे तो मैं तुम को प्रत्यक्ष दिखा दूं, कि जिसतरह तुम्हारे बाप, दादे का शरीर त्याग होने उपरान्त अब पता नहीं मिलता कि वे कहां हैं उसी प्रकार इस शरीर को भी नाशवान् समझो तुम यह नित्य देखते और सुनते हो कि अमुक पुरुष का शरीर पात (मरा) हुआ और भस्म कियागया तिसपर भी अपने शरीर इस शरीर को अचल व नाश रहित समझते हो, इससे सत्य यही है कि आपा को त्याग करके आत्मा को निश्चय करो जो कि अखंड है तब प्रह्लादजी ने कहा कि हे महाराज! मेरे चित्त पर काई अर्थात् मल दुःख का लगाहुआ है। इससे जब तक उसका नाश न होवे आत्मा का निश्चय किसप्रकार से होसक्ता है तब अवधूत ने समझाया कि हे प्रह्लाद! अब मैं तेरे इस संशय को दूर करने के

लिये नारायण की स्तुति तुझ को सुनाता हूं उसे ध्यान देकर सुन व अपने हृदय में स्थिर करके उसपर चल कि जिससे इस मल से निवृत्त होकर स्वच्छशरीर होजावे– यह न जानना कि मैं सुनता हूं, क्योंकि गोविन्द और स्तोता एकहै और जो तुझको यह निश्चय है कि मैं राक्षस हूं तो इस बुद्धिको बीच से उठाकर शिवलिंग का पूजन कर लिंग शरीर को कहते हैं इससे जहां लिंग है वहीं शिव हैं, और यह समझो कि जो देखते व श्रवण करते हो वह सब लिंगही है व सूर्य, चन्द्रमा, तारागण ये सम्पूर्ण लिंगही हैं, सम्पूर्ण आकाश, पाताल, मर्त्य लोक को भी लिंगही समझो हे प्रह्लाद ! मैं शिव से अतिरिक्त किसी वस्तु को नहीं जानता व देखता हूं इसी ज्ञान से मैं शिवरूप हुआ, क्योंकि शिव सर्वत्र व्याप्त है और जब केवल वही शिवहै तब मैं उससे अतिरिक्त कहां रह सक्ता हूं। इसी विचार से जानो कि मैं शिवरूप हूं, ब्रह्मा व विष्णु भी शिवजी का पूजन करते हैं इससे भी मुझ को निश्चय है कि आदिब्रह्म से पिपीलिका पर्यंत एक अद्वितीय शिवही है हे प्रह्लाद ! मैं जिससमय शिव के स्थानपर पहुंचा तो उससमय उस शिवपुरी की शोभा मुझ से वर्णन नहीं होसक्ती कि जिसमें शिवजी आनन्दमूर्त्ति अपने पुत्र स्वामिकार्त्तिक आदि को साथ लियेहुये आनन्द से विराजतेहैं कि जिनकी जटाओं से श्री गंगाजी शिव शिव शब्द करती हुई बड़ी ऊंची २ लहरों से बह रही हैं और निर्मल सरोवरों में पक्षीगण कल्लोल करते हुये अलगही शिव २ की ध्वनि से कूज कूज के तैर रहे हैं और उनके मुंह से यही राग निकलता था कि शिवजी अद्वितीय आत्मा हैं। उसीसमय कुवेर भंडारी ने भी आकर दण्डवत् की और विनय की हे महादेवस्वामी ! हे ज्ञान के समुद्र ! मुझको एक संशय उत्पन्न हुई है उसको आप अपनी कृपामयी शीतल वाणी से निवृत्त करके मेरे हृदय को निस्संशय कीजिये वह यह है कि हे महाप्रभो ! मुझको यह नहीं जान पड़ता कि आप

कौन हैं और मैं कौन हूं और यह सर्वदृश्य क्या पदार्थ है यह आत्मतत्त्व कृपापूर्वक मुझको दर्शाइये—इसप्रकार कुबेर की नम्रतायुक्त विनय सुन के श्रीसदाशिव भोलानाथ ने उत्तर दिया कि हे कुबेर ! यह जो पंचभूत, मन, बुद्धि व अहंकार दृष्टि आते हैं सब मैंही हूं मैं तीन प्रकार के स्वरूप धरके संसार को रचताहूं ग्यारह रुद्रहोकर मेरा दर्शनहै मैं आकाश की नाईं सर्वत्र परिपूर्ण हूं यह नाम रूपजो तुमको दिखाई पड़ता है इसको मृगतृष्णा की तरह समझो, चारों वेद, अठारह पुराण और छःशास्त्र मैंही हूं हे कुबेर ! मुझको संगरहित व एक जानो यह मैं परम तत्त्व तुमको समझाताहूं, यह नानाप्रकार के शब्द जो प्रत्येक शरीर से निकलते हैं यह तत्त्व से निकलते हैं इस से एक अद्वितीय विष्णुको जानो । श्री सदाशिवजी से यह वचन सुनकर कुबेर अत्यंत हर्षितहुये ! हे प्रह्लाद ! यदि तू आपको जानना चाहे तो सदाशिवजी का पूजनकर क्यों कि शिवजी के पूजनसे पुजारी भी शिवरूप होजाताहै और शिवका नाम कथन करना ही जन्म मरण की मुक्तिहै तब प्रह्लादजीने कहा कि शक्ति की पूजन अच्छी है तब अवधूतने उत्तर दिया कि शक्ति का पूजन यही है कि शिव है, पार्वतीजी नित्यही शिवके साथ रहती हैं परन्तु जड़होनेके कारणसे उसके तत्त्वको नहीं जाना तू स्त्री का चेला न हो न प्रह्लादहै न अवधूतहै सर्वव्यापी शिवजीही हैं अबकुबेर की कथा श्रवण करो; कुबेरजी ने पूछा हे शंकर ! अब कृपापूर्वक बंध और मुक्तका भेद समझाकर मेरे संशयको निवारण कीजिये कि बंध और मोक्ष क्या वस्तु है । तब सदाशिव भगवान् बोले कि हे कुबेरजी ! बंध और मोक्ष ये दोनों अहंकार से उत्पन्न होते हैं जब अहंकार का नाश होवे तो ये दोनों स्वयं निर्मूल होजाते हैं यह सुनकर कुबेर ने फिर विनय किया कि हे महाराज ! योग क्या वस्तु है यह भी कृपा करके मुझको समझाइये तब शिवजी ने कहा कि सम्पूर्ण पदार्थों में शिवजी का वास समझना इसीको योग कहतेहैं जब

यह वार्ता यहांतक पहुंची तब पराशरजी ने मैत्रेयऋषीश्वरसे कहा कि हे मैत्रेय! चतुर पुरुषको एक वचन बहुत है अगर तू मूर्ख है तब तो तत्त्व की प्राप्ति तुझको अतिदुष्कर है फिर कुबेरजी ने हाथ जोड़कर शङ्करजी से पूछा कि हे सदाशिवजी! कृपाकरके अब मुझको धारणाका यत्न बताइये तब शंकरजी बोले कि शिव काही सम्पूर्ण पदार्थों में बास समझना धारणा है फिर कुबेरने पूछा कि हे शिव! मैं हर्ष व शोक से किसप्रकार निवृत्त होऊं तब शिवजीने कहा कि एक शिवजी को ही अद्वितीय समझना यही हर्ष शोक से निवृत्त होने का मार्ग है तब कुबेरजीने कहा कि हे शिव! यदि काम,क्रोध और मोहका त्याग न करूं तो किसतरह से कहसक्ता हूं कि एक शिव है तब शिवजीने कहा कि कहो शिव है तब कुबेरजी ने कहा कि अब मुझको दयाकरके श्वास का रोकना बतलाइये तब शिवजी ने कहा कि जब शिवको जानेगा तो श्वास रोकना कहां रहा तब कुबेर बड़े आश्चर्य को प्राप्त होकर बोले कि यदि मनही नहीं तब कुबेर कहां है तब शिवजी ने कहा कि प्रथम कुबेर कहां था जो अब नाशहुआ तब कुबेरने कहा कि यदि कुबेर ही नहीं है तब पाप और पुण्य नरक व वैकुण्ठ किसपर है तब शिवजी ने कहा कि सर्व शिव है यह सब चारों अन्तःकरण और इन्द्री और पांचों तत्त्वरूप शिव का है बैकुण्ठ व नरक भी सदाशिवहै और आदि अन्त और मध्य भी शिवही है और आकाश, पाताल भी शिवही है तब कुबेरने कहा कि हे शिव! बेद शास्त्र में लिखा है कि जिसने श्रीविष्णु को देखा वह फिर मर्त्यलोक में नहीं आता, मैं उसलोकको कैसे पहुंचूं तब शिवजी ने कहा कि यही स्थान है कि शिव है तब कुबेरजीने पूछा कि हे शिवजी! जो कोई वासना में लिप्त है वह कैसे निवृत्तहोवे तब शिवजीने कहा कि कहो शिव है तब कुवेर जीने कहा कि अब मैंने तत्त्वको पाया इससे यह निश्चय हुआ कि इच्छा से रहित होना यही तत्त्वकी प्राप्ति है तब शिवजी ने

पूछा कि हे कुबेर ! तू कौनहै तब कुबेरने कहा कि मैं शिवहूं जैसे कि जब अग्नि से काष्ठका सम्मेलन होता है तब काष्ठभी अग्नि होजाता है ऐसे ही जब मैंने अपने को आपके अर्पण किया तब मैं भी तुम्हारा रूप होगया तब शिवजीने कहा कि जब काष्ठ है तब अग्निभी है और जब तुमहोतो मैं भी हूं यदि तुम नहीं तो मैं कहां इससे जहां मैं और तू नहीं है वहां कौन है तब कुबेर चुप होरहे क्योंकि इससे अधिक वचन नहीं है हे मैत्रेयजी! जब यह इतिहास अवधूतने प्रह्लादको सुनाया तब प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि हे अवधूत! आपके सत्संग से मैंने तत्त्वको जाना अब यह आवरण अर्थात् पर्दा नाशहुआ तब अवधूत ने कहा कि अब मेरी नमस्कार मुझको है मैं जाताहूं तब प्रह्लाद ने कहा कि जहां जा मैं हूं तब अवधूतने कहा कि अब मैं न जाऊंगा काहे से कि तुझे परमहंस देखताहूं तब प्रह्लाद ने कहा कि जब कौवा नहीं है तब हंसकहां है यह कहकर स्वरूप में लीन होगया और अवधूत जैसे आयेथे वैसेही चलेगये हे मैत्रेयजी ! तुमभी समझो कि मुझको सन्तों का सत्संग सर्वदा प्राप्त न होगा यही समय और काल है जो तुमसे कहताहूं तब मैत्रेयजीने कहा कि हे पराशरजी ! मैं तुम्हारे इस उपदेश से मोमके समान पिघल उठा मैं अपने को समझता था कि मैं ब्राह्मणहूं सो मैंने कितनाही ढूंढ़ा परन्तु मुझको इसका पता न मिला कि मैं कौनहूं अब कोई यत्न सिवाय इसके कि अपनेको अग्नि में जलाकर नाशकरडालूं दूसरा दिखलाई नहीं देता अब कृपाकरके जड़भरत महाअद्वैत का इतिहास वर्णन कीजिये वह किसप्रकारका है यदि मैं जानता कि तेरा सत्संग अग्निके समान है तो किञ्चित् भी ग्रहण न करता तब पराशरजीने कहा कि हे मैत्रेयजी ! सन्तों का सत्संग अति दुर्लभ है मैं तेरे मनकी बात जानताहूं यह सब मक्र और दंभ है इस नाशवान् शरीरकी प्रीतिका त्यागकर और आनन्द को प्राप्तहो। हे मैत्रेय ! अब प्रथम अंश समाप्त हुआ और

द्वितीय अंशका प्रारम्भ करताहूं जो पहिलाहै वही दूसरा है- छः अंश जो विष्णुपुराणमें हैं उन छहोअंशोंमें वही एकविष्णुहै आदि व अन्त दूसरा न जानो क्योंकि पंच महाभूत और छठवां आत्मा है यह सम्पूर्णनाम व रूप जो कुछ दृष्टि में आता है इसको एक श्री विष्णुका पूर्ण जान काहेते कि जो एकको नाशकरूं तो पांच दूसरे उत्पन्न होते हैं परन्तु वह एक जिससे पांच उत्पन्नहुये उस को किसी ने नहीं देखा ॥

इति प्रह्लाद का इतिहास समाप्त ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

हरिः ॐतत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

द्वितीयअंशप्रारम्भः ॥

अब जड़ भरतका इतिहास प्रारंभ करते हैं ॥

पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी ! इस धर्मपुराण में लिखा है कि ऐसा न हो जो अनेक प्रकारके धर्म सुनकर अपनेका निश्चय त्यागकरे, वही धीरजीवा बली है जो शरीर नाश न होवे तो भी अपने निश्चयका त्याग न करे काहेसे कि शरीरका धर्म गिरनाही है इससे निश्चयको क्यों त्यागे, हे मैत्रेय ! द्वितीयअंशमें निरंजन भगवान् की भक्तिका निरूपण वर्णन कियाजायगा जो कोई भक्ति करे वह मुक्त है और जो भगवान् से विमुख है वह बंधमें रहताहै, निर्भयहोना और सर्वबिषे एक चिन्मात्रदेखना यही मुक्त है और आपको गोविन्दसे भिन्न जानना यही बंध है, ज्ञानी वहीहै जिसकी सत्में स्थितिहो, न कि मिथ्या में फँसा होय और कहे कि मैं ज्ञानी हूं निश्चय करके समझो कि यह संसार कुछ नहींहै

स्वप्न अथवा मृगतृष्णा के समान भासमानहै, इससे सूक्ष्म दृष्टि चाहिये कि बुद्धिसे सत्य और असत्य को समझे, और असत्य को सत्यसे पृथक् करे। सन्तोंने कहा है कि गोविन्दसे प्रीति करना और संसार का त्याग करना योग्य है परन्तु ऐसी प्रीति न करे कि दृश्यको देखकर आश्चर्यवान् रूपका होवे और ब्रह्ममें लीन होकर मुक्त होवे जैसे समुद्र में बूंद मिलनेसे वह भी समुद्र होजाता है। हे मैत्रेय ! जो मिथ्या निश्चय करता है अर्थात् अपने को यही शरीर नाशवान् जानता है उसको नरक से निकलना अति दुष्कर है। नरक इसी शरीराभिमान को कहते हैं जोकि रुधिर, पीब से भराहुआ चर्म्म, मांस, हाड़ व विष्ठा और मूत्रका स्थान है। जिस पुरुषको इसके साथ प्रीति है वही नारकी है। हेमैत्रेय ! तू अपनी चाहनासे ऐसे गहिरे कूपमें पड़ा है कि जिससे रक्षा करने को किसीकी शक्ति नहीं है। इससे इस असार शरीरकी प्रीतिका त्यागकरके दृश्य की दृष्टिको त्याग दे कि जिससे नरक से छूटे, तब मैत्रेयजी ने कहा कि अब कृपा करके बाहरकी पूजा व अन्तर का ज्ञान वर्णन कीजिये, तब पराशरजी बोले कि बाहरी पूजावाले को त्वचा देखती है और अन्तर के पुजारी को सर्व आत्मा जानताहै इससे तू इन दोनों से रहितहो तब मैत्रेयजी ने कहा कि आपने प्रथम अंशमें कहा है कि सर्व विष्णुही है तब मैं कहांहूं हेपराशरजी ! मैं जन्म,मरण के तापसे अति भयभीतहूं इससे मेरी रक्षा कीजिये तब पराशरजी बोले कि इस असार शरीरकी प्रीतिका त्यागकर जोकि आवागमनका बीज है इससे उचित है कि वैराग्य कर जिसके करनेसे आनन्द को प्राप्तहोवे तब मैत्रेयजी ने पूछा कि अब आप कृपाकरके राग और वैराग दोनोंका भेद मुझसे वर्णन कीजिये तब पराशरजी कहा कि संसारको मिथ्या जानना इसको विराग कहते हैं औ भगवान्को छोड़कर और वस्तुका अहंकार करना इसको राग कहते हैं इससे इसशरीर से विराग करके गोविंद का भजन करो।

तब मैत्रेयजी ने कहा कि मैं विरागके विनाही इस शरीराभिमान से विरागी हूं किस कारण से कि मेरा शरीर तेरे निकट है और मैं आप कहां कहां जाताहूं यही चित् चैतन्यहै जहां चित् जाता है वहीं चिन्ता साथ २ जाती है इससे किसी से नहीं मिलता और जो गोविन्दका भजन करताहूं तो भजनको छोड़कर हजारों स्थानों में मारा मारा फिरता है मैं नहीं जानताहूं कि यह चित् क्या वस्तु है। न शरीर में है और न गोविन्द में, शरीर की पालना करता है, निष्प्रयोजन मित्र इसी को देखा है। यह शरीर से मुक्तभी है और जब शरीर को कुछ दुःख होता है तब हाय २ भी करताहै, और एक आश्चर्य और भी है कि सम्पूर्ण संसार इससे पूर्ण है परन्तु यह संसार से मुक्तहै इससे यह शरीर सदा मेरे संग है और मैं इससे निर्लेप हूं कि जैसे आकाश घटके अन्तर व बाहिर पूर्ण है और निर्लेप भी है तैसेही शरीर के नाश से आत्मा का नाश नहीं होता क्योंकि आत्मा नित्य है जरा, मृत्यु, युवा अवस्था से रहित एक रसहै, यह आत्मनिरूपण मैंने तुमसे प्रकट किया अब तुम भी कुछ आत्मनिरूपण करो तब पराशरजीने कहा कि तुमने यह क्या निर्णय किया, आत्मनिर्णय वह है कि जो भक्तिसंयुक्त हो, भक्ति विना ज्ञान फल रहित वृक्षके समान है, भक्ति तो आपही भगवद्रूप है अब जड़भरतकी कथा को श्रवण करो ॥

अथ जड़भरतकी कथा ॥

पूर्व जन्म में जड़भरत यमुना किनारे तपस्या करते थे और रात दिन परमेश्वर के भजन में मग्न रहतेथे कि एकदिन उसी वनमें सिंह आया जिसको देख भयभीत होकर मृग इधर उधर भागने लगे तब एक गर्भवती हरिणी के उदरसे एक बच्चा पृथ्वी जड़भरत के तपस्थल के निकट गिरपड़ा जोकि अत्यन्त होनेके कारण चल नहीं सक्ताथा जब जड़भरतका नैमित्तिक तपस्याके अन्तमें ध्यान उखड़ा तो देखा कि एक हरिणका बच्चा

पड़ाहै उसकी सुन्दरता देखकर जड़भरत का चित्त मोहित हो-गया और उसपर रीझके अपनी गोदमें करके अपने तपस्थलमें उठालाये और फिर दिन प्रतिदिन उससे ऐसी प्रीति बढ़ाई कि जिससे उनके ध्यानमें बाधा पड़नेलगी और वे उस बच्चेके पालने में मग्न होगये एक दिन जब किसी आवश्यक कार्यके वशहोके जड़भरतजी अपने स्थानसे कहीं बाहर गयेथे कि स्थान सूना पाकर वह हरिणका बच्चा वनमें किसी ओर भागगया जब जड़-भरत ने उक्त कार्य करने के उपरान्त लौटकर अपने स्थानमें उक्त बच्चेको न पाया तब उसके स्नेहसे अत्यन्त पीड़ित होकर बड़ा पश्चात्ताप किया कि कैसा सुन्दर हरिण मेरे हाथलगा था वह न मालूम कहां चलागया उसके बिना मुझको क्लेशहै निदान उस बच्चेकी प्रीति में जड़भरत के शरीरका नाशहुआ और दूसरे जन्म में हरिण का तन पाकर वनमें विचरनेलगे परन्तु ज्ञान व ध्यानका बीज उनके मनसे नहीं मिटाथा कि जिसके प्रकाश से एक दिन उनके मनमें आई कि पूर्वजन्म में मैं तपस्वी था और इस ब्रह्मके ध्यान के बिना एक श्वासभी वृथा न खोताथा परन्तु अब हरिणकी योनिमें प्राप्तहोकर फल मूलका भी अप्राप्त होना केवल हरिण की प्रीतिका कारण है इससे अब मुझको उचित है कि संसार की किसी वस्तुमें प्रतिबन्ध की निवृत्ति के लिये प्रीति न करूं जब ऐसा विचार जड़भरत के मनमें उत्पन्न हुआ तब ज्ञानकी भविष्यत इच्छाकरके विचार करनेलगे कि अब इस शरीर को त्यागना चाहिये यह विचार के यमुना किनारे पर पहुंचे कि उसी समय एक ब्राह्मण स्नान से निश्चिन्त होकर फूल तोड़कर देवता की पूजाकर रहाथा जड़भरत इस चरित्र को दूरसे देखकरके अपना शरीर त्याग ब्राह्मण के घरमें जन्म लेतहुये जब दो बरस की अवस्था को प्राप्तहुये तब से अपने माता पिता व भाई बन्धु किसीके बुलाने से उत्तर न देनेकी वृत्ति धारण की और इसी मौनवृत्ति से नौ दश बरस की अवस्था को

पहुँचे तब उनके माता पिता को बड़ा सन्देह हुआ कि जाना जाताहै हमारा पुत्र गूंगा और मूढ़है और वे लोग जिस कामको कहते थे जड़भरत कभी नहीं करते थे और अपने चित्तमें सदा आनन्दित रहते थे जब भाइयोंने देखा कि जड़भरत किसी काम का नहीं है तब एक दिन वन क्रीड़ा के लिये लिवालेगये और खेत सींचने की इच्छा करके खेतकी मेड़पर पहुँचे परन्तु मेड़ उस खेतकी टूटीथी कितनाही यत्न किया परन्तु उस मार्गसे बहतेहुये जलको किसी प्रकार बांध न सके तब लाचार होकर आपस में विचार करनेलगे कि इस जड़भरत से कुछ काम नहीं होता लाओ इसी को बांधकी ठौर डालदें और यह विचार करके जड़भरतको बांधके स्थानपर डालदिया और ऊपर से मिट्टी डालकर खेत सींचा और खेतको सींचने के पीछे जड़-भरतको उसीदशामें छोड़ अपने घरचलेआये परन्तु इसव्यवस्था को जड़भरत ने अपने मनमें कुछ भी खेद न माना और अपने दोनों खुलेहुये नेत्रों से आनन्दपूर्वक वनका कौतुक देखते रहे कि इतनेमें उसदेशका राजा जो प्रतिवर्ष कालीजीको एक मनुष्य का बलिदान चढ़ाताथा बलिढूंढ़ता हुआ आ पहुंचा, वह चाहता था कि कोई बाहरी मनुष्यमिले तो उसीका बलिप्रदानकरूं परन्तु कोई विदेशी मनुष्य दिखाई न पड़ता था कि अकस्मात् उसकी निगाह जड़भरतजी पर जापड़ी और इनको हृष्ट पुष्ट चैतन्य शरीर पानी के बांध में मिट्टी से दबाहुआ देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और अच्छा बलि विचाकर उनको उस मिट्टी से निकाला और पूछा कि तू कौन है जब जड़भरतजी ने कुछ भी उत्तर न दिया तब वह इनके दोनों हाथ बांधकर भवानी के मन्दिर में लेगया और खड्ग उठाकर जैसेही चाहा कि इनकी गर्दनपरमारें कि इकबारगी मन्दिरसे बड़ा घोरशब्द हुआ और उसके पीछे देवीने स्वयंप्रकट होकर राजा को इनके मारने से निवृत्तकिया और कहा कि रे मूर्ख! तू इनको बलिदान करने के लिये लाया

है इनके चरित्र को तू नहीं जानता, यदि ये चाहें तो मेरा और तेरा दोनों का संहार होजावे, यह सुनकर राजा ने जड़भरत जी को छोड़दिया जब जड़भरतजी इस बन्धनसे छूटे और फिर भी निश्शंक हो आनन्द से उसी वन में विचरने लगे कि इतने में एक दूसरा राजा जो कपिलमुनि के आश्रमपर सांख्यशास्त्र पढ़ने के लिये पालकी में सवार चला जाता था और जिसकी पालकी के दो कहार थकजाने के कारण पालकी के बोझ व अपनी चाल से लाचार हो रहे थे यकायक उसकी दृष्टि जो इधर पड़ी तो देखा कि एक मनुष्य अतिबलवान् और हृष्टपुष्ट उसी वनमार्ग में चला जाता है सेवकों को आज्ञादी कि इसे पकड़लाओ एक तो मिला अब दूसरे की खोज में जो इधर उधर दृष्टि फेरी तो वामदेव भी इनकी दृष्टि के सम्मुख आगये तब उनको भी बली जानकर सेवकलोग राजा के पास पकड़लाये और राजा की आज्ञानुसार दोनों के कन्धोंपर उस सुखपालका बांस धरा के चलतेहुये, परन्तु ये दोनों तपस्वी इस नई व्याधिमें जिसका कभी स्वप्न में भी नाम न सुना होगा फँस जाने के कारण व बोझ के भार से पैर ठीक २ न धरते और धीरे २ चलते थे, तब राजा ने कहा कि जल्द २ चलो परन्तु वे दोनों तपस्वी राजा की बातको कुछभी ध्यान में न लाते थे, कभी चलते और कभी खड़े होजाते थे, निदान उनकी यह दशा देखकर राजा अति क्रोधितहुआ और बहुत से कठोर वचन इन दोनों तपस्वियों को सुनाकर बड़ा क्लेशदिया परन्तु इन दोनों के मुखपर कुछ भी ग्लानि के चिह्न दर्शित न हुये, जब राजाने उनकी यह व्यवस्था देखी तो अपनी बुद्धिके बलसे अनुमानकिया कि ये दोनों पुरुष कोई महात्मा मालूम होते हैं, निदान इसी विचार में पालकी पृथ्वीपर रखवादी और शीघ्रही अपने राज्यसुख के अहंकारको छोड़कर सुखपाल से पृथ्वी पर उतर आया और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा कि हे महाराज! आपके इस

शील शान्ति व आचरण से लक्षित होता है कि आप कोई म-
हात्मा पुरुष हैं इससे मेरे इस अनुचित कर्म से जिससे आपको
इतना क्लेश सहना परा क्रोध न करके मुझको इस अपराध से
क्षमा दान दीजिये—तब जड़भरत ने उत्तर दिया कि तुझपर
कौन क्षमा करे तेरे सुखपाल के लादने का बोझ मेरे कन्धोंपर
हुआ और कन्धों का कटिपर व कटिका भार जांघोंपर व जांघों
का बोझ चरणोंपर व चरणों का बोझ पृथ्वी पर हुआ इससे तू
मुझसे क्या क्षमाकराता है अपने इस अपराध की पृथ्वीसे क्षमा
कराओ हे राजन्! यह तुमने वृथा समझ रक्खाहै कि मैं सुख-
पालपर चढ़ाहूं देखो सुखपाल लकड़ीका है और लकड़ी वृक्षकी
है तुमको लज्जा नहीं आती कि वृक्षपर चढ़के पालकी पर अ-
पना चढ़ना बतलाते हो तब राजाने पूछा कि हे महाराज जड़-
भरतजी! दया करके मुझको भी इस अहङ्कार से छूटने का उ-
पाय बताइये कि सुखको प्राप्तहोऊं तब जड़भरतजी ने कहा कि
हे राजन्! जिसतरह तू सुखपाल में बैठा है और सुखपाल तुझ
से भिन्न है इसी तरह अपने शरीर में भी विचार की दृष्टि से
देख कि तू इस शरीर में केवल स्थितही है परन्तु यह तुझ से
भिन्न है जब तुझे ऐसा भासित होगा तेरा अहंकार स्वयं नाश
होजायगा तब राजाने पूछा कि महाराज यदि मैं समझूं कि मैं
शरीर से भिन्नहूं तो कौनहूं तब जड़भरतने कहा कि तू वही
है जो कहताहै कि मैं कौनहूं तब राजा अवाक् होरहा तब जड़-
भरतजीने कहा कि हे मूर्ख! रिभु और निदाघ की कथा जो मैं
तुझे सुनाता हूं उसको ध्यान लगाके श्रवणकर॥

अथ ऋभु और निदाघ की कथा प्रारंभ॥

ऋभु ब्रह्माजीके पुत्र एक दिन निदाघ अपने शिष्य को
देखने के लिये जब उनके आश्रम परगये तब निदाघ ने
जो कि दशहजार वर्ष से ऋभुजी के शिष्य थे अपने गुरुको

देख उठ खड़े हुये और साष्टांग दंडवत् कर और शास्त्रानुसार विधिपूर्वक उनका पूजन करके उच्चासन पर बिठाकर विनय की कि हे महाराज! आपकी जिस वस्तु में रुचिहो भोजन कीजिये तब ऋभुजीने कहा कि मुझे मीठे भोजन से अधिक प्रेम है यह आज्ञा पाकर निदाघने अपनी स्त्री को भोजन तय्यार करने की आज्ञादी और वह उनकी आज्ञानुसार नानाप्रकार के भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य व्यंजन बनाकर ले आई और ऋभु जीने आनंदपूर्वक भोजन किये तत्पश्चात् निदाघ ने विनय पूर्वक उनसे पूछा कि हे महाराज! इस भोजन करने से यदि आपकी तृप्ति हुई हो तो कृपा करके दासके चित्तको अनुमोदित कीजिये तब ऋभुजीने उत्तर दिया कि मुझमें तो क्षुधा और तृप्ति दोनों में से कोई भी नहीं है किसलिये कि जब अग्नि तत्त्व भोजन की इच्छा करता है तब पृथ्वी तत्त्वपर उष्णता करती है तब भोजन की चाहना होती है इसी को क्षुधा कहते हैं और भोजन कर चुकता है तब तृप्ति होती है यह सम्पूर्ण शारीरिक धर्म हैं फिर मुझको क्षुधा से क्या प्रयोजन है तब निदाघ ने पूछा कि आप कहां रहते हैं व कहां जाइयेगा तब ऋभुजीने उत्तर दिया कि मैं आकाश की नाईं सर्वव्यापी हूं आना, जाना मुझ में कुछ भी नहीं है, मैं देश, कालसे मुक्त हूं, तू और सर्व नहीं एक मैं ही हूं हेराजन्! साधन सम्पन्न मुक्त-रूप है, जड़भरत ने कहा कि हे राजन्! ऋभुजीने जो कुछ निदाघसे कहा यह सब परमार्थ है। तब ऋभुजीने कहा कि हे निदाघ! तू यह समझ कि सम्पूर्ण चर अचर में एकही पुरुष व्याप्त है, यदि तू यह शंका करे कि वह पुरुष कैसा है जो सब में व्याप्त है और मैं कौनहूं तो तू यह समझ कि सर्वव्यापी तूही है निदान इस प्रकार ऋभुजी निदाघ को उपदेश करके वनको चलेगये व कुछेक समय के व्यतीत होने पर फिर घूम आये और नगर के बाहर अपना आसन किया जब निदाघने

यह खबर पाई कि महाराज ऋभुजी आये हैं और वे नगर के बाहर उतरे हैं तब तुरंत अपने हाथी पर सवार होकर उनके पास पहुंचा और हाथ जोड़कर विनयकी कि हे कृपानाथ ! आप यहां क्यों स्थित हैं नगरको पधारिये तब ऋभुजीने उत्तर दिया कि मैंने नगर और प्रजा व राजा तो कभी देखाही नहीं है इससे तुम मुझको दिखलाओ कि ये किस प्रकार के होते हैं तब निदाघने निवेदन किया कि हे महाराज ! मैं राजा हूं और ये लोग सब मेरी प्रजा हैं और यह नगर सब के बसने को और यह हाथी मेरे चढ़ने के लिये है परन्तु मेरी मुक्तकी इच्छा है तब ऋभुजीने कहा कि नगर और हाथी इत्यादि सांसारिक पदार्थ सब दृष्टिमात्र हैं जब आंख बन्द होजाती है तब कुछ भी दृष्टि नहीं आता तब निदाघ ने फिर विनयकी कि हे महाराज ! सबलोग तो यही जानते हैं कि संसारमें प्रकट भी है कि मैं हाथी के ऊपर सवारहूं और यह मेरे नीचे है तब ऋभुजीने कहाकि हे राजन् ! मैंने ऊपर और नीचे भी नहीं देखा कि कैसाहै तब निदाघ ने उनके चरणों पर गिरकर फिर विनयकी कि हे महाप्रभु ! आप आचार्यहैं इससे आपकी दृष्टिमें कुछ भेद नहीं है परन्तु मैं कामना करके ग्रसित हूं इससे मेरी दृष्टि में भेद है अब कृपा करके मुझे वह उपदेश दीजिये कि जिससे मैं कामना से मुक्त होकर आत्मा को पाऊं तब ऋभुजीने निदाघकी भक्ति व प्रेम देखकर उत्तर दिया कि मैं तेरे उपदेशही के निमित्त फिर आया हूं अब तू मेरे साथ प्रीति कर और मेरे निकट रह तब निर्मल होगा यही मैं तुझे उपदेश देताहूं और परमार्थरूप आत्माको एकही जान कि वह अधिष्ठान रूप है । इस प्रकार ऋभुजी निदाघ को उपदेश देकर अपने स्थान को चलेगये और निदाघ यह उपदेश पाकर अद्वैत में लीन हुआ और मनुष्यों और पशुवों में एक अभिन्न आत्मा देखने लगा कि ये सर्वरूप हैं और मैं अद्वैत स्वरूप हूं—जब यह कथा यहां तक पहुंची तब

जड़भरत ने राजा से कहा कि हे राजन् ! तुमभी ऐसाही समझो आत्मा से भिन्न कोई वस्तु नहीं है और जिसके ऐसा ज्ञान है उसको प्रकट में सब नाम, रूपभासते हैं परन्तु ज्ञानकी दृष्टि में वही एक सर्वान्तर्यामी है जैसे जल में तरंग इत्यादि नानाप्रकार के विकार दिखाई देते हैं परन्तु वास्तव में जल एकही पदार्थ है तैसेही नाम रूप केवल देखने व सुनने मात्र है परन्तु इन सब वस्तुओं का तत्त्व एकही परब्रह्म है, तेरी दृष्टि में इस कारण भेद है कि तेरी बुद्धिके विचार से भिन्न २ भासते हैं इससे तुम ऐसा मत समझो बल्कि यही समझो कि आत्मा एकही है और ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यन्त यह सब उसी एक आत्माका प्रकाशहै इसलिये कि अच्युतसे विशेष कोई वस्तु नहीं है यदि पूछो कि वह अच्युत कौन है, तो मैं और तुम और सम्पूर्ण चराचर जगत् जो दृष्टिमात्र व समझ में आता है वही एक अच्युत है। मुझको ऐसा अभेद जानकर संशय व भेद मन से दूरकरके व परमार्थ में चित्त लगाकर देखो कि आत्मा आकाशकी नाईं सर्वव्यापी है और जिसको यह ज्ञान प्राप्त हुआ है वह यत्न विनाही स्वरूप को प्राप्तहुआ है जब जड़भरत ने राजाको इसप्रकार उपदेशकरके उस के चित्तका बोध किया तब राजा ने सुखपाल को त्यागदिया और जड़भरत के साथ वनको चलागया और अद्वैत होकर सबका संग किया। और जड़भरत फिर गूंगे बनकर अपने घरमें लौट आये और यहां उनके भाइयोंने फिर भी पूर्वोक्त नानाप्रकारसे क्लेश दिया लेकिन उसको जड़भरत कुछ भी न समझे जब इसप्रकार नानाभांति की दुर्गति होनेपर भी जड़भरत ने कुछ उत्तर न दिया तब उनके पिताने अपने और पुत्रों को समझाया कि अब इसको किसी प्रकारका दंड व क्लेश न देना यदि यह मूढ़ है तब भी मेरा पुत्र व तुम्हारा भाई है इसको दण्ड देना वृथाहै तब उन लोगोंने निज पितासे कहा कि जो यह लोह व पत्थर की तरह मौनसाधे हैं

इसी से हमलोग इसको दण्ड देते हैं और इसको यही योग्य है तब उनके पिताने फिर समझाया कि यदि ऐसा भी है तब भी इसको दण्ड देना उचित नहीं है फिर उठकर जड़भरतका हाथ पकड़कर अपने स्थान पर लेआया और उनके शरीरपर हाथफेर कर पूछा कि हे पुत्र! तुम बोलते क्यों नहींहो क्या तुमको काल का भय है मैं तो तुम्हें योगेश्वर देखताहूं क्योंकि योगेश्वरलोग ही दुःख व सुखको समान समझते हैं अब यह बताओ कि मैं इस संसार से किसतरह पारहोऊं, जब मैं शरीर त्याग करूं तब तुम गयाजी में जाकर मेरा श्राद्ध करना कि जिससे मैं मुक्त होजाऊं यह सुनकर जड़भरतने कुछ भी उत्तर न दिया इसी समयान्तरमें वे कहार भी राजा के सुखपाल में लगे हुये थे आपहुंचे और जड़भरत के पिता को उन्हें उपदेश करते देखकर बोले कि हे महाराज! अभी किञ्चित् विलम्ब हुआ है कि इसने हमारे राजा को ऐसा उपदेश करके विरक्त कर दिया कि वह अपना सुखपाल त्यागकर और अवधूत बनके वनको चलागया उन कहारों की यह वार्ता सुनकर फिर पिताने जड़भरत से कहा कि हे पुत्र! मुझको भी संसारसे मुक्त होनेका कोई यत्न बताओ कि जिससे मैं भी भवसागर पार होजाऊँ तब जड़भरतजी उपदेश का उचित समय जानकर पहिले हँसे फिर रोनेलगे यह हँसना और रोना देखकर उनके पिताने समझा कि यह बुद्धिमान् है तब उनसे बोले कि हे पुत्र! यह तेरा हँसना और रोना किसलिये है तब जड़भरत ने उत्तरदिया कि रोना इसलिये है कि चतुराई से कुछ न पाया बहुत वेद और शास्त्र पढ़े और पंडित भये परन्तु परमार्थ का खोज न पाया और हँसना इस कारण है कि द्वैत का भ्रम निवृत्त हुआ परन्तु हे पिता! मेरे इस हँसने और रोने से तुमको क्या प्रयोजन है तब उनके पिताने कहा कि मेरा भी यह प्रयोजन है कि मेरी भी तृष्णा निवृत्त होजावे तब जड़भरत ने कहा कि यदि तृष्णा से मुक्त होने की

इच्छा रखते होतो तुम भी योग और प्राणायाम करो वह योग अनात्म और आत्म दो प्रकार का होता है पहिले मैं तुमको आत्मयोग का विवर्ण वतलाता हूं उसको चित्त लगाकर सुनो तब उनके पिताने कहा कि हे पुत्र ! नहीं मुझसे दोनों प्रकार के योगोंका विवर्ण विधान से वर्णन करो तब जड़भरत ने कहा कि शरीर से साधन करके जो परमार्थ चाहता है इसको अनात्म-योग कहते हैं देखो जब शरीर और शारीरिक धर्म दोनों मिथ्या हैं तब जो वस्तु उस मिथ्या से उत्पन्न होगी वह किस प्रकार सत्य होसक्ती है इसी तरह अनात्म से कुछ भी सिद्ध नहीं हो-सक्ता। अथवा शरीर बहुत काल तक स्थित रहे तो भी उससे कुछ प्रयोजन नहीं निकलता मैं अपने शरीर को बहुत जानता हूं और मुझे इसके पूर्व जन्म के कई शरीर याद हैं परन्तु इन शरीरों से कोई परमार्थ नहीं दिखाई पड़ा इससे ऐसा योग करो कि विना आत्मा जो सारभूत है उसको न देखो—यदि यह जानो कि आत्मा कैसा है तो वह चैतन्य और आनन्द स्वरूप है व अन्तर बाहर पूर्ण है इस भीतर बाहर को त्यागो यही आत्म-योग है हे पिता ! शुभ अशुभ का भेद अपनी दृष्टि से उठाओ क्योंकि आत्मा अभेद है तब पिताने कहा कि मैं पापी कैसे आत्मत्यागी होऊं तब जड़भरत ने कहा कि तू भूत, भविष्यत, वर्तमान नहीं है गोविन्दही है इससे पापी व पुण्यात्मा कैसे हो सक्ता है तेरी आदि और अंत को कोई नहीं जानता तब पिताने कहा कि इसी कारण से कहताहूं कि जीवहूं तब जड़-भरत ने कहा कि सच तू अजीव है तुझ में अतीत पद नहीं यदि कहो कि जीव है तो शरीर जीव से है, वर्णाश्रम तेरा क्या है तब ब्राह्मणने उत्तर दिया कि मैं जीवविषे वर्णाश्रम क्या बताऊं तब जड़भरत ने कहा कि हे पिता ! जब जीवविषे वर्णाश्रम ही नहीं है तब पाप पुण्य कैसे हो सक्ता है, जबतक वर्णाश्रम का विवेक चित्तमें रहता है तभी तक पाप पुण्य

का विचार है और जब वर्णाश्रम को मिथ्या जाना तब धर्म अधर्म कहां रह सक्ता है तब ब्राह्मण ने फिर पूछा कि जब वर्णाश्रम ही मिथ्या है तब शुभ अशुभ कर्म जो शरीर से होते हैं उनका भोग कौन करता है तब जड़भरत ने कहा कि शुभ और अशुभ कर्म तो शरीर से होते हैं जब उस शरीर को अग्नि में जलादिया तो इससे विशेष और क्या दंड हो सक्ता है कि जिसने शुभ, अशुभ कर्म किये वह जलादिया गया, आत्मा तो वर्णाश्रम से न्यारा है उसको शुभ और अशुभ कर्म की चिन्ता किसी प्रकार नहीं होसक्ती इससे उचित है कि तुम सदा प्रसन्न और मग्न रहा करो तब पिताने पूछा कि मैं किस प्रकार निश्चिन्त व मग्न रहूं मैं तो मृत्युके डरसे सूखा जाताहूं तुम कहते हो कि यह कुछ नहीं है मैं तो इस क्लेश से निवृत्त होने के लिये यज्ञ करता था तब जड़भरत ने कहा कि पहिले तुमको उचित है कि यज्ञ कर्त्ता का विचार करो कि कौन पुरुष है तब यज्ञ करो तब ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि यज्ञ कर्त्ता तो मैं ही हूं तब जड़भरत ने पूछा कि तुम कौनहो शरीर हो अथवा जीव ? तब ब्राह्मण ने कहा कि मैं जानता हूं कि मैं ब्राह्मण हूं, ब्राह्मण वर्ण को कहते हैं, आत्मा में रंग प्रवेश नहीं करते आत्मा अरूप और साक्षी है और शरीर रूपवान् होकर नाशमान है, फिर जो वस्तु नाशमान है और उसके साथी भी नाशमान हैं तब वर्णाश्रम कहां रहसक्ता है, यह केवल बुद्धि के भ्रम से वर्णाश्रम भासित होता है जब यह भ्रम निवृत्त होकर ज्ञान प्राप्त होजाता है तब वर्णाश्रम व पाप पुण्य और सुखका क्लेशस्वयं निवृत्त होजाता है इससे शरीर से चिन्ता दूर करके ब्रह्मको प्राप्त होजावो, तब जड़भरत ने कहा कि जब आत्मामें ही वर्णाश्रम नहीं है तो शरीर में कैसे रह सक्ता है, क्योंकि तुम कहते हो कि मैं ब्राह्मण हूं। तुम शुभ अशुभ की चाहना व चिन्ता को त्याग कर गोविन्द का भजन करो परन्तु चिन्ता तभी दूर होती है कि जब यह

पूर्ण निश्चय होजावे कि मैं शरीर नहीं हूं बल्कि स्वयं गोविन्द हूं जब ऐसा भान होजावेगा तब गोविंद में और तुममें कुछ भी अंतर न रहेगा, इसीको आत्मबोध कहते हैं। हे पिता! अब तेरे पिंड के निमित्त कौन गयाजीमें जावे मैं तो वह पुत्र नहीं हूं कि तुम्हारा शरीर नाश होजानेपर भी आवागमनमें बना रक्खूं बल्कि मेरी तो यह सम्मति है कि तुम पितृलोक में भी न जावो क्योंकि जो पितृलोक में जाता है वह एक दिन फिर भी गिरकर उत्पन्न होता है जब यह शरीरही तुम्हारा नहीं है तब पिंड से तुम क्या प्रयोजन रखते हो इस वार्तालापको सुनकर ब्राह्मणने कहा कि हे पुत्र! मैं तो जानता था कि तू मूढ़ है परन्तु तू बड़ा बुद्धिमान् है अब पिंडदान का नाश न कर पिंड के नाश होजाने से मैं प्रेतयोनिको प्राप्त होऊंगा और मुक्ति भी प्राप्त न होगी, मैंने गृहस्थाश्रम में इसी कारण से वासलिया था कि मेरे पुत्र उत्पन्न होवे और मेरा देहान्त होने पर मुझे मुक्त करे तब जड़भरत ने कहा कि मैं ऐसा तुम्हारा पुत्र नहीं हूं कि तुमको प्रेत करूं अथवा पितृ करूं हां यदि तुम मेरी बात पर ध्यान धरकर चित्त से सुनो तो मैं तुमको इसी क्षण में मुक्त करके तुम्हारे स्वरूप में पहुंचादूं। हे पिता! जब दृष्टि शरीर से उठती है तभी प्रेतत्वको प्राप्त होता है (इसीको प्रेत होना कहते हैं) इससे हे पिताजी! मैं तुमको शरीर से पृथक् करके सत् चित् आनंद में लगाताहूं तब ब्राह्मण ने कहा कि जैसे तू भ्रष्ट है वैसेही मुझ को भी भ्रष्ट किया चाहता है, तू मेरा पुत्र है और मैं तेरा पिता तुझसे बड़ा हूं इससे तेरी बात मेरे चित्त में नहीं आती यह मैं अवश्य जानता हूं कि कर्म प्रधान है तब जड़भरत ने कहा कि हे पिता! तुम सत्य कहते हो! मैं तो अवश्य भ्रष्ट हूं क्योंकि मैं नाम, रूपसे मुक्त हूं परंतु जो तुम भी संसार से पार होना चाहो तो भ्रष्ट होजाओ तब पिता ने पूछा कि पहिले तू क्यों पत्थर की नाईं जड़ हुआ था बोलता क्यों नहीं था तब जड़भरत

ने कहा कि इसके पूर्व मैंने कितनेही जन्म लियेहैं कि जिन में बुद्धि भी अपूर्व रही परन्तु उस बुद्धि और जन्मों से कुछ भी सिद्ध न हुआ तब मैंने बोलना बन्द करके मौन रहनाही उत्तम समझा यदि तुमको निश्चयहोवे तू कुछ नहीं जानताहै तो और पुत्रों सेकहो कि वे मुझसे शास्त्रार्थ करें हां यहमैं बेशक नहीं जानताहूं कि मैं जड़भरतहूं और तुममेरे पिता हो, मैं सम्पूर्ण पदार्थों को सत् चित् आनन्द स्वरूपही जानताहूं तब पिताने कहा कि हे पुत्र! अब काल से जिसप्रकार मेरी निवृत्ति होवे वह उपाय बताओ क्योंकि वह महाबलवान् है उससे मेरी रक्षा किस उपायसे करोगे तब जड़भरत ने कहा कि यह कालका भय केवल शरीर धारियों को है जब शरीर का भ्रम हृदय से दूर होजाताहै तब वही निर्भ्रम होना उसका रक्षक है नहीं तो जब काल शिरपर आपहुंचा तब रक्षा चाहना किसकामका है इससे जो तुम स्थिर चित्त होकर व ध्यान लगाके सुनो तो मैं तुम्हारी ऐसी रक्षाकरूं कि जिससे तुम्हें काल केवल भ्रममात्र समझ पड़े और मेरे इस वचन को वही सुनेगा जो निर्भय होगा और जो सांसारिकभोगों में आसक्त है उसको मेरा यह कथन कभी नहीं रुचेगा। हे पिता! तुम और मेरे सब भाईलोग इसबातको ध्यान से विचार कर देखो कि मेरे इस कथन से मेरा कुछभी प्रयोजन नहीं है मैं तुम से केवल इस लिये कहताहूं कि जिससे यह जीवन, मरण का भ्रम जो तुम्हारे चित्त बिषे लगा है उसका संदेह फिर कभी तुम्हारे चित्तमें उत्पन्न न होवे, हे पिताजी! योग करनेवालों को कालका भय कभी नहीं होता इससे जो तुम इस भय से निर्भय होना चाहोतो योग करो। अल्पबुद्धियों को सदा इस बातकाही विचार रहता है कि मैं यह हुआ और यह और होगा उनको जीवन मरण का भय कभी नहीं होता वेलोग यह कभी नहीं जानते कि हम कहां से आये और कहां जावेंगे वे सदा इसी रमें बँधे रहतेहैं कि यह मेरा वर्णाश्रम और यह जाति और यह

नाम व ऐसा रूप है परन्तु उनको यह ज्ञान नहीं होता कि यह सब सामग्री केवल इसी शरीर की है जो कि विनाशवान् होकर केवल भ्रममात्र है अज्ञानी और विषयीलोगों की संगति में सदा लीन रहनेके कारण इस वस्तुका चिन्तन कभी उनके हृदय में भी नहीं आता, सदा जीने की आशापाशमें बँधा रहकर यहभी नहीं शोचता कि मेरे माता पिता अब कहां हैं यह सत्य है जो कि चाहना हृदय में स्थित है इसीसे सुखकी प्राप्ति का लेशमात्र भी न होकर सदा दुःखमें बंधे रहते हैं इससे इस दुःखरूपी वासना के नाशकरने का मूल मन्त्र यही है कि इस संसार को नाशवान् समझकर इसके सम्पूर्ण पदार्थ व पिता पुत्रका सम्बन्ध व वर्णाश्रम का जो धर्म है सबको असार समझ के केवल एक गोविन्दजीकोही सदा स्थिर रहनेवाला जाने-हे पिताजी ! जब वासनाका त्याग होजाताहै तब उस वासना त्यागी को कालका भी भय नहीं रहता और इस वासना का त्याग तब होताहै कि जब हृदय में पूर्णरूप से यह भासित होजावे कि मैं, दूसरा व तू तीसरा व यह सम्पूर्ण जगत् व तीनोंलोक जिन का व्यतिरेक जो तुमको अज्ञानान्धता से भासित होता है और मेरा व तेरा जो तुमको अहङ्कार से समझ पड़ता है उसका नाश होकर स्वयं ब्रह्म सच्चिदानन्दघन भासित होवे अर्थात् यह ज्ञान उत्पन्न होवे कि यावत् जड़ व चैतन्य, चर व अचर दृष्टिगोचर होकर श्रवण से सुनाई देता है सब गोविन्दजीही का स्वरूप है और यह समझो कि न मैं किसी का हूं न कोई मेरा है सब गोविन्दही है-हे पिताजी ! तुम पहिले हृषीकेशको ज्ञान दृष्टि से देखो जब तुम्हारी ऐसी स्वच्छबुद्धि से यह दर्शित होजावे तब समझना कि मैं सम्पूर्ण पदार्थ देखचुका और जब भगवान् हृषीकेशजी में तुम्हारा दृढ़विश्वास होजावेगा तब तुमको यह जो कालभय सदा रहता है उसका किंचिन्मात्रभी भ्रम न होगा-तब पिता ने उत्तर दिया कि हे पुत्र ! आजतक मैंने बहुतेरे होम

व यज्ञ किये परन्तु उन गोविन्दजी का दर्शन मुझको प्राप्त न हुआ इससे जिस यत्न से मुझको श्रीगोविन्दजी का दर्शन प्राप्त होवे वह उपाय बतलाओ तब जड़भरत ने कहा कि हे पिताजी ! जब तुम्हारा चित्त पाप व पुण्य की भ्रान्ति से निवृत्त होजावेगा तब इसी भ्रान्तिनिवारक बुद्धि को गोविन्दजी का स्वरूप जानो " अर्थात् नारायण गोविन्दजी इन मायिकगुणों से भिन्न हैं " हे पिताजी ! ब्राह्मणवर्ण तो सम्पूर्ण वर्णों में श्रेष्ठ है यदि चांडाल जो अतिनीच व अधम योनि है एकबार किञ्चिन्मात्रभी स्वच्छ विचार से ममता त्याग करके उस गोविन्द को दृढ़ विश्वास से मनन करे व मन से निश्चित करलेवे कि सम्पूर्ण चराचर जो दृष्टि में आता है गोविन्दजी है तो वहभी मुक्त होजावे यह दृढ़ संधान है इस वार्ता के सुनने से जड़भरत के पिता को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ और अपने को कृतकृत्य मानकर कहनेलगा कि मैं बाल्यावस्था से आजतक कर्म फांसरूपी बन्धन में बँधारहा व मेरी सम्पूर्ण अवस्था विषय भोग में व्यतीत होगई परन्तु आज तेरे मुख से गोविन्दजी को सर्वव्यापी सुनकर मेरे संपूर्ण विकार नाश होगये और अपना जीवन जन्म सुफल माना तब जड़भरतजी ने कहा कि हे पिताजी ! जब तुमको यह दृढ़ निश्चय होजावेगा कि हृषीकेश (हृषीक = इन्द्रियां + ईश = स्वामी) अर्थात् जो सम्पूर्ण इन्द्रियों का स्वामी है और जो अपनी शक्ति से सम्पूर्ण जगत् को सत्ता व स्फूर्ति देनेवालाहै व जिसको ईश्वर कहते हैं और जिसके दर्शन की मुझको अभिलाषा है व वही मेरे जप, तप, धर्म, कर्म, ध्यान, ध्येय का नियन्ता है यह दृढ़ निश्चय होजावेगा तब तेरा जन्म सफल होगा तब ब्राह्मण बोला कि जब हृषीकेशही है तो अपने को मैंने वृथा निश्चय किया तेरे इस कथनानुसार मुझको अब ज्ञात हुआ कि ब्राह्मण व वर्णाश्रम, लोक व परलोक सबका नियन्ता व पालनेवाला हृषीकेशही है तब जन्म व मरण भी कुछ वस्तु नहीं है—यह वार्ता होहीरही

थी कि वामदेव भी आकर पहुँचगये और बोले कि यह बड़े आश्चर्य की वार्ता है-कि हृषी की चाहना है हृषीकेश को देखूं-तब जड़भरतने कहा कि हे पिताजी! वामदेवजीके कथनपर ध्यान दीजिये देखिये ये क्या कहते हैं, तब जड़भरतजीके पिता ने उत्तर दिया कि जैसे तुमहो वैसेही वामदेव भी हैं परन्तु यह बताओ कि मैं कौन हूं। तब वामदेवजी ने कहा कि तू हृषीकेश है इस अहंकार द्वैत को मध्य से उठादेवो-तब ब्राह्मण ने कहा कि मैं तो एक से शत्रुता व दूसरे से मित्रता का वर्ताव रखता हूं और हृषीकेश का शत्रु व मित्र आदि सब जीवों में समान भाव है फिर मैं हृषीकेश कैसे हो सक्ता हूं तब वामदेवजी ने कहा कि यदि सब में समान भाव न होता तो सबसे मित्रता करता शत्रुता न करता इस कारण से कि वह सर्वव्यापी होने से मित्रता व शत्रुता सब में पूर्णरूप से विद्यमान है और वही सर्वान्तर्यामी तुममें भी व्याप्त है इससे अहङ्कारको मध्य से उठाकर कहो कि तुम कौन हो तब ब्राह्मण ने कहा कि मैं अपने को ईश्वर किस प्रकार से कहूं क्योंकि ईश्वर काम क्रोधादि रहित निर्विकार है और मैं इन सांसारिक विकारों में बंधा हूं तब वामदेवजी ने समझाया कि तुमको तो विषमता भासती है तुम्हारा काम, क्रोध कैसे निवृत्त होवे, तुमतो सर्वविषे समरूप हो ऐसा नहीं है कि मनसे राग और क्रोध के वश होकर द्वेष करो यह भ्रम अपने चित्त से दूर करो, तब ब्राह्मण ने आश्चर्यितहोकर पूछा कि यदि आपका कथन सत्य है तो सन्तलोग राग द्वेष का त्याग किसलिये बतलाते हैं, तब वामदेवजीने कहाकि संतलोग जिस वस्तु से कार्य और कारण दोनों का नाश होता है उसको त्याग करते हैं परन्तु किसी पदार्थ का त्याग करना उचित नहीं है क्योंकि ये संपूर्ण वस्तुयें ब्रह्म में विद्यमान हैं किञ्चिन्मात्र भी ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं इससे हे ब्रह्मन्! तुमभी ब्रह्मसे भिन्न होने का अहंकार मत करो यह संपूर्ण शारीरिक पदार्थ हृषीकेशही के हैं तुमको

उनके शुभ और अशुभ से क्या प्रयोजन है तब ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि हे वामदेवजी ! तुम्हारे कथन से ज्ञात होता है कि शरीर हृषीकेश है और इसकी चाहना मुझको है इससे निश्चित होता है कि हृषीकेश मैं ही हूं इस कथन को सुनकर वामदेव जी अवाक् होगये तब जड़भरतजी बोले कि हे पिताजी ! यही योग कालके नाश का उपाय है देखो मैं तुम्हारा ऐसा पुत्र हूं कि तुमको जीवतही मुक्त करादिया तब ब्राह्मण ने कहा कि यह तुम वृथा झूठ बकते हो न तुम मेरे पुत्रहो और न मैं तुम्हारा पिता हूं यह अहंकार रूपी भ्रम केवल चार पहर दिन जो कि जाग्रद-वस्था है इसी में भासित होता है रात्रि को जब शयन करतेहो तो उस सुषुप्ति दशामें यह कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता और इस कुटुंब की व्यवस्था तो चलती हुई नौका के समान है जैसे नौका पार पहुंचती है तो सब बटोही अपनी २ बाट चलकर अंतको अपने २ घर में पहुंचते हैं यही गति इन सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों की है यह विचारकर क्षणेक मौन होगये फिर अति आश्चर्यित होकर शोचने लगे कि अब क्या करूं और कहूं या सुनूं यदि सर्वमयी वासुदेवही है तो सबके निषेध का कारण क्या मैंही हूं हे जड़भरत ! इस विचारांश से मेरी दशा अब जड़ बस्तु के सदृश होगई परंतु इतना कथन और है कि जब मैं स्वयंहृषीकेशही होगया तब मुझमें जड़ और चैतन्य का निवेश किस तरह हो सक्ता है, तब वामदेवजी बोले कि हे जड़भरत ! धन्य है तुमको कि तुमने पिता पुत्रभाव के पर्दे को इस तरह नाश किया कि आज तक किसी ने इस भेद का विवरण करके निवृत्त नहीं कर पाया था, तब जड़भरतजी बोले कि इससे जन्म-रूपी वृक्ष में मोक्षरूपी फल फलित पाकर उसके आनंदरूपी रस के पान से अपनी भ्रमरूपी तृषा शान्तकी तब वामदेव जी बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुमकौन हो, यह सुनकर ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि हेरूप, हे हृषीकेश ! तुम इन्द्रियों के स्वामी होकर किस से

पूछतेहो ऐसी किसमें शक्ति है कि जो तुमको समझा सके तब वामदेवजीने कहा कि मैं हृषीकेश नहीं हूं मैं तो वामदेव हूं तब ब्राह्मण ने कहा कि तुम सच कहतेहो कि मैं वामदेव हूं, इसलिये कि संत और वेदों का कथन है कि सब रूप और सम्पूर्ण नाम बासुदेव भगवान् ही हैं तब वामदेवजीने कहा कि यदि मैं हृषी-केश हूँ तो तुम कौन हो तब ब्राह्मण ने कहाकि मैं ब्राह्मण नहीं हूं तुम अपनी बिचारशक्ति से विचार लो कि मैं कौन हूं तब मैत्रेयजीने कहा कि मुझसे मत पूछो ब्राह्मणका इतिहास वर्णन करो, क्योंकि मैं नाम मात्र को भी मैत्रेय नहीं हूं हे पराशरजी ! तुम्हारी बार्ता जो ज्ञानी पुरुष है वह ही समझ सक्ता है अज्ञानी जो पाषाणकी नाईं जड़ बुद्धि है वह आप के इस वाक्य को सुनकर आश्चर्य को प्राप्त होता है तब पराशर जीने उत्तर दिया कि मैंने जो इतने इतिहास तुमसे वर्णन किये उनसे तात्पर्य यह है कि तुम आत्मस्वरूप होजाओ और यह निश्चय करो कि हृषी केश के बिना कोई वस्तु किञ्चिन्मात्र भी नहीं है, अब इस ब्राह्मण के इतिहास को जो मैं तुमसे कथन करताहूं चित्त लगाकर श्रवण करो–बामदेवजी ने ब्राह्मण से पूछा कि हे बिप्रवर ! आप कौन हैं, यह सुनके वह ब्राह्मण अवाक् होगया कुछभी उत्तर न देसका तब उस ब्राह्मण की मौन दशा देखकर बामदेवजी बोले कि मौन मत हो और यह बताओ कि तुम्हारा स्वरूप क्या है तब ब्राह्मण ने कहा कि हे वामदेव ! तुमको लज्जा भी नहीं आती कि आपही आप हो और पूछते हो कि तुम-कौनहो इस बार्त्ता के सुनने से बाम देव कुछ उत्तर न देकर मौन होगये तब जड़भरत जी ने उत्तर दिया कि हे बामदेवजी ! मेरा पिता इस तरह नाश हुआ कि उसका अंश किञ्चिन्मात्र भी अवशेष न रहा इसी समयान्तर में अवधूत दत्तात्रेयजी भी वहां आपहुंचे और बोले कि देखो "शिवरूप" अद्वितीय है तब ब्राह्मण ने पूछा कि हे दत्तात्रेय जी ! शिवरूप अद्वितीय है तो उसको कौन देख सक्ता है तब

अवधूत ने उत्तर दिया कि हे ब्राह्मण ! यह बचन मैं जड़भरत की कृपा से कहता हूं, मेरा कहना तुमने किस तरह से सुनलिया तब ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि जो कहता है वही सुनता है क्योंकि श्रोता, वक्ता एकही है जिह्वा से कहता और श्रवण से सुनता है यह सुनकर अवधूतने पूछा कि फिर तुम कौनहो अवधूत के इस वाक्यको सुनकर ब्राह्मण अवाक् होरहा कुछ भी उत्तर न देसका तबजड़भरतनेकहा कि तुम परमहंसहो व अनेक राजाओंको अव-धूत कियाहै अब मुझपर भी कृपा कीजिये तब अवधूतने कहा कि यही कृपा है कि मैं ही मैं हूं और शरीर और जीव से परेहूं तब जड़भरत ने कहा कि यह कृपा तो तुमने अपने परकी है, कृपा वह है जो दूसरे पर कीजावे तब अवधूत ने कहा कि तुम परम-हंस हो मैं तुम्हारे दर्शन को आया था परन्तु जब आय कर देखा तो तुम नहीं, "यही तेरा देखनाहै" तब जड़भरतने कहा कि मैं इस बातको जानता था कि सतयुग में एक दत्तात्रेयनाम अवधूत है सो वह दत्तात्रेय तुम नहीं हो यही मुझको देखनाहै तब ब्राह्मण ने कहा कि जड़भरत और अवधूत दोनों में से एक भी नहीं अब केवल मैं ही हूं, तब अवधूत ने कहा कि यदि मैं ही नहीं तब तुम कहां हो तब ब्राह्मण ने कहा कि इसी से तुम नहीं हो कि अवधूत नाम से रहित हो तब अवधूत ने कहा कि हे संतो! सबलोग भगवान् की भक्ति को करो इसलिये कि गोबिन्द की भक्ति परमार्थ है और सत्संग का यही फल है कि एक श्वास भी भगवान् की भक्ति को न भूलो जैसे बिषयी की इन्द्रियां दिनरात बिषय को नहीं भूलतीं सदा उसीमें तत्परहती हैं, इसी प्रकार आप लोग भी भगवान् की भक्ति को न भूलिये क्योंकि भगवान् के करने से द्वैत बुद्धि का नाश होकर सदा अचल व शान्त चित्त रहता है हे ब्राह्मण ! अब भक्ति का स्वरूप कहिये तब ब्राह्मण ने कहा कि बासुदेव, हृषीकेश को ही एक समझना अन्यत् किसी वस्तु सांसारिकका भास न होना इसीको भक्तिकहते

हैं तब जड़भरत ने कहा कि सर्वव्यापी गोविंदजीही को जानना इसी का नाम भक्ति है तब बामदेव जी बोले कि भक्ति गोविंद के बिषे है अन्यत् नहीं यह कथन अनुचित है तब पराशरजीने मैत्रेय जी से कहा कि हे मैत्रेयजी ! अब आप यह बतलाइये कि भक्ति का स्वरूप कैसा है तब मैत्रेय जीने कहा कि जब मैं ही नहीं हूं तब भक्ति और भगवान् कहां है—अब आप अवधूतों का इतिहास वर्णन कीजिये तब पराशर जीने कहा कि अवधूत उनको कहते हैं कि जिनको गोविन्द से अन्यतर किञ्चिन्मात्र भी कोई वस्तु नहीं दिखाई देती यह जो सम्पूर्ण जड़ व चैतन्य मायिक पदार्थ हैं सब गोबिन्दही का रूप भासित होते हैं इससे तुमभी यह निश्चय करो कि जो कुछ संसार में देखने और सुननमे आताहै सब गोविंदहीका स्वरूपहै तब मैत्रेयजीने कहा कि जब मैं आपही नहीं हूं तो यह निश्चय कौनकरे तब पराशर जीनेकहा कि यदि तुम अपने को नाशवान् समझते हो तो यह भी पूर्णरूप से निश्चयकरो कि सब संसार नाशवान् है केवल एक गोविन्द ही अविनाशी है जड़भरतका इतिहास सम्पूर्ण हुआ ॥

अब तपस्वी का इतिहास प्रारम्भ करते हैं ॥

पराशर जी बोले कि एकसमय हम और अवधूत दत्तात्रेयजी उत्तराखण्ड को चलेजाते थे जब बदरिकाश्रम के निकट पहुंचे तब क्या देखा कि एक तपस्वी पञ्चाग्नितापरहा है, जब वह अपने नित्यनियम से निश्चिन्तहुआ तब उसने हम लोगों से प्रश्न किया कि आपलोग कहां से आते व कहांको जायँगे--तब जड़भरत ने उत्तर दिया कि तुम अग्नि में जलो तुमको हमारे आने व जाने से क्या प्रयोजन है परन्तु यह शोचो कि गोविन्दके भजनके विना जितने सांसारिक व पारलौकिक कर्महैं सब मिथ्या व अभिमान मात्र हैं इससे गोबिन्द का भजन करो जिससे शुद्ध होकर द्वैत की मलिनताका अँधेरा नाश होवे, जो श्वास

गोविन्द के भजनसे रहित निकलती है उसको श्वास मत समझो वह श्वास अन्य वायु के समानहै और वह वायु जिसतरह मरी खाल (धौंकनी) से निकलती है उसी के समान है, और जिह्वा जो मांसका टुकड़ा है इसको बिना भजन गोविन्दजी के मुखमें रखना उचित नहीं है, जिस समय वाक् इन्द्रिय उत्पन्न हुईथी उससमय उसने यह नियम किया था कि मैं मुखमें स्थित होकर गोविन्द के भजन के सिवाय मिथ्यावाद न करूंगी, हे तपस्वी ! वाक् इन्द्रिय कहती है कि जो तुम मनको विषयों से रोककर आत्मपरायण करोगे तो मैं तुमको विष्णुधाम में पहुंचाऊंगी, यदि मन आत्मासे विमुख होवे और वाक् से राम राम कहाकरे तो इससे कुछ कार्यकी सिद्धिनहीं होती बल्कि यहव्यर्थ शरीर को कष्टदायक कार्य है, जब मन पाप, पुण्यसे मलिन है तो हाथ में माला लेकर मुख से राम राम करने से क्या कार्य सिद्ध होगा क्या माला और जिह्वा ये दोनों चीजें हृदयकी मलिनता को दूर करके निर्दोष करदेंगे कदापि नहीं, यदि एकश्वास भी निराश होकर गोविंद का भजन करोगे तो गोविन्दरूप होजावोगे और उसी का जीवन सुफल है जो गोविन्दजी से स्नेह रखता है और जो मन आत्मस्वरूपमें निस्सन्देह लगा है उसी को प्रसन्नता प्राप्त है श्रीभगवान् का वाक्यहै कि जो कोई क्षणमात्र मेरे वास्तवस्वरूपका अभेद चिन्तवन करता है वही मेरा स्वरूप होता है ॥ मूर्ख व अज्ञानी लोग प्रारब्ध व कालको दोष देते हैं और कथन करते हैं कि जब प्रारब्ध व काल आवेगा तब भजन करेंगे, यह उनकी अत्यन्त मूर्खता व भूल है, भजन काल व प्रारब्ध के आधीन कदापि नहीं होसक्ता यह केवल पुरुषार्थ सेही सिद्ध होताहै, यह कदापि नहीं शोचता कि यह शरीरकाल का ग्रास है, हे मूर्ख ! जब शरीर का नाश होजावेगा तब यह तेरी चाहना क्या काम करेगी मरनेकेपीछे जब इन्द्रियां जड़ होजातीहैं तब केवल पछितावा बाकी रहजाता है, जिसकी इन्द्रियां

मन और विषयों से रुकके आत्मपरायण हुई हैं उसी का मन भी आत्मपरायण होता है, हे तपस्वी! तुम पूछते हो कि तुम कहां से आये व कहां जावोगे इस विषय में मैं आपको क्या उत्तर दूं देखो यह नाशवान् शरीर केवल दृश्यमात्र है, न कहीं आता है न जाता है, जल के बुद्बुदे की भांति उत्पन्न होकर सदा उसी में लय होजाता है यह कहकर हम उठखड़े हुये तब तपस्वी ने पूछा कि कहां जाते हो तब जड़भरतजीने उत्तरदिया कि जब तुम अतीतत्व का अहंकार और तपका अभिमान त्याग करोगे तब मैं तुमको एक इतिहास सुनाऊंगा तब तपस्वी ने कहा कि जिससमय आप लोगों का दर्शन व सत्सङ्ग हुआ उसी समय सम्पूर्ण अहंकार का नाश इसतरह होगया जैसे अग्निके सत्सङ्गसे लकड़ी का रूप किञ्चिन्मात्र अवशेष नहीं रहता, इस वचन को सुनकर जड़भरतजी ने उत्तर दिया कि अब मेरे इस कथन को ध्यानदेकर सुनो और समझो कि आश्रम, व लालवस्त्र और पात्र अतीतत्व नहीं है अतीत उसे कहते हैं जो सब पदोंसे अतीत होजावे और तत्पद और त्वं पदका अभिमान जिस में रञ्चकमात्र न रहजावे हे तपस्वीजी! अब आप यह बतलाइये कि आपने किस वस्तुको त्याग कर अतीतपद धारण किया है। तब तपस्वी ने उत्तर दिया कि मेरी बुद्धि नष्टहोगई इससे अब मुझको इस बात का ज्ञान नहीं है जो आपके कथनानुसार बतलासकूं कि मैं कौन वस्तु छोड़कर अतीत हुआहूं--तब जड़भरतजी ने कहा कि अब मैं तुमको एक इतिहास नारदजी का सुनाता हूं उसको श्रवण करो—

नारद ऋषिका इतिहास॥

एक समय ब्रह्माजी के पुत्र सनकादिक और जय व विजय नाम श्रीविष्णुके पारषद अर्थात् द्वारपाल गङ्गाजी के सन्निकट बैठे हुये श्री जाह्नवीजी की उत्तम २ तरङ्गों को देखकर प्रसन्नता

पूर्वक आपस में कुछ वार्त्ता करते थे कि उसी समय नारदजी भी आ पहुंचे और परस्पर दण्डप्रणाम व कुशल प्रश्न पूछकर वेभी उस समागम में स्थित हुये तब सनन्दन ने प्रश्न किया कि हे नारदजी! यह बतलाइये कि तुम कहां से आये व कहां जावोगे और तुम्हारी स्थिति किस वस्तुमें है और तुम कौन हो तब नारदजी ने उत्तर दिया कि मैं विष्णुलोक से आताहूं और उन्हीं विष्णुमें मेरी स्थिति है और उन्हीं में जाऊंगा और मैं भी स्वयं विष्णुरूपहूं जैसे जल में बुद्बुद और स्वर्ण में भूषण की आकृति होती है वही दशा मेरी आपके समक्षमें भासित होती है परन्तु असल में मैं विष्णुरूपही हूं नारदके इस कथन से सनन्दनको बड़ी प्रसन्नता हुई और खुशहोकर बोले कि हे नारद! तुम कौनहो और कहां से आते व कहांको जावोगे तब नारदजी ने उत्तर दिया कि यह प्रश्न आप किससे करते हैं यहां इसका कौन सुननेवाला है तब सनकने कहा कि यदि कोई श्रोतानहीं है तब भी यह बतलाइये कि तुम कौनहो तब नारदजीने प्रतिउत्तरमें सनक से पूछा कि आपही बतलाइये कि कौन हैं, यह वचन सुनकर सनक अवाक् होकर मौनहोगये तब सनत् और कुमार दोनोंने मिल के नारदजी से पूछा कि हे देवऋषि! तुम कौनहो और तुम्हारा नाम क्या है और तुम कौन वस्तुहो, तब नारदजी ने उत्तर दिया कि जब विष्णुजी को यह भ्रमहुआ कि मैं कौनहूं तो उनके इस भ्रमको निवृत्त करने की सामर्थ्य है, क्योंकि पंचभूत व अहङ्कार और माया यह पुरुष से प्रकट हुये हैं यातो यह सब जड़ हैं या पुरुष में अध्यस्थ हैं तब पुरुष को कौन कहे कि तू यह या वहहै, और तुमने जो पूछा कि तुम्हारानाम क्या है सो सुनो कि सम्पूर्ण नाम विष्णुजी ही से सिद्ध होते हैं कि जिनकी सत्ता से श्रवण शब्द को सुनते और नेत्र देखते हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियां अपने २ व्यवहार में तत्पर रहती हैं मैं वही विष्णुहूं तब जय, विजय ने कहा ऐसा न कहिये हम जाकर

अपने प्रभु विष्णु भगवान् से कहेंगे कि नारद कहते हैं कि मैं विष्णुहूं तब नारदने उत्तरदिया कि हे जय, विजय! यह बात तुम किससे कहोगे तुमभी स्वयंविष्णुरूप हो जो कुछ तुमने सुना वह सब विष्णुही ने सुना है तुम विष्णुसे भिन्न नहीं हो तब जय, विजय ने कहा कि हे नारदजी! तुम जब विष्णुजी के समीप जाते हो तब तो उनको दण्डवत् प्रणाम करते हो और यहां स्वयं विष्णुरूप बनते हो यह क्या बात है तब नारदजी ने कहा कि जो दण्डवत् करता है और जिसको दण्डवत् की जाती है यह दोनों विष्णुही के रूप हैं क्योंकि सम्पूर्ण कार्यों का कर्त्ता एक ईश्वर ही है इस उत्तरको सुनकर जय, विजय अवाक् होकर मौन होगये-तब जड़भरत ने पूछा कि हे तपस्वी जी! अब मुझे यह बतलाइये कि मैं कौनहूं और कहांसे आया व कहां जाऊंगा तब तपस्वी ने उत्तर दिया कि अब आपके उपदेश से मुझको निश्चय हुआ कि न कोई आता है न जाता है एक अद्वितीय गोविन्दही सम्पूर्ण जड़ व चैतन्य में पूर्णरूप से विद्यमान है यह तप केवल भ्रम है हमने इसके करने में अपना समय वृथा व्यतीत किया ज्ञानरूप पञ्चाग्नि से काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहङ्कार इन पांचोंको क्यों नाश न किया॥ तपस्वीका इतिहास समाप्तहुआ, शिव! शिव!!

अब ब्राह्मण का इतिहास प्रारंभ करते हैं॥

पराशर जी बोले कि पूर्वकाल में एक ब्राह्मण क्रियावान् व धर्मज्ञ अपने द्विजकर्म में परायण था उससे उसकी स्त्री ने यह प्रश्न किया कि हे महाराज! कृपा पूर्वक मेरे मुक्ति होनेका कोई सुगम उपाय बतलाइये कि जिससे मैं इस आवागमन के फन्दसे निवृत्त होजाऊं, यह शरीर नाशवान् होकर सदाकाल के फन्देमें फँसा रहता है इसका कोई समय नियत नहीं कि कबतक स्थित रहेगा और कब नाश होजायेगा यदि इसी समय नाशहोजाय

तो मैं अपने स्वरूप के मिलने से भी निराश रहूं- यह सुन-
कर ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि कालका यही धर्म्म है कि जब
जिस जीवधारी के आता है उसी समय उसको शरीर से मुक्त
करताहै इसविषय में चिन्तासे छूटनेसे क्या प्रयोजनहै और कर्म
से क्या सिद्धि है शरीर से छूटजाना इसी को मुक्त कहते हैं सो
यह आप से आपही काल पाकर छूट जाता है इसलिये कर्मों से
क्या प्रयोजन है तब स्त्रीने कहा कि हे महाराज! यमपुरके मार्ग
में एक वैतरणी नाम नदी अति भयंकर व बहुत लंबी चौड़ी हैमैं
उससे किसतरह पार उतरूंगी तब ब्राह्मण ने कहा कि तूने यह
कभी देखा अथवा सुना है कि कोई उस नदी में अब तक पड़ा
है, परन्तु यह अवश्य कथन सुनाई पड़ता है कि उससे पार हो-
नाहै, इससे तुम इस विषय में कुछ भी चिन्ता न करो यदि तुम
को यमदूत उस नदी में छोड़देंगे तो तुम धर्मराज के सवाल ज-
वाब से अनायास छूटजावोगी परन्तु ऐसा कदापि नहीं हो-
सक्ता, वे किंकर जो प्राणी को लेने आतेहैं उनका केवल इतना
धर्म है कि प्राणियों को मार्ग से नघाय कर धर्मराज के सन्मुख
लेजाके खड़ा करदेवें क्योंकि वे लोग अपने स्वामी की आज्ञा
भङ्ग नहीं करसके इससे तुम निश्शंक होकर यह निश्चयकरो
कि यह तृष्णा जो शरीर में लगी हुई है यही वैतरणी नदी है
जिस प्राणी ने इस तृष्णा का त्याग किया उसको वैतरणी नदी
से कुछ भी भय नहीं है तब स्त्री ने पूछा कि हे महाराज! जो
यमपुरी के मार्ग में खांड़े की धारके समान तीक्ष्ण व अतिदा-
रुण कंटक पड़ते हैं कि जिनसे उन प्राणियों को नाना प्रकारके
क्लेश सहकर विपत्तियां भोगना पड़ती हैं उनसे वे लोगही निवृत्त
होकर सुख पूर्वक पहुंचते हैं कि जिन्हों ने अश्वदान, पादुका
दान किया व करते हैं तब ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि हमको तो
घोड़ा और जोड़ा दान करने की कुछ भी सामर्थ्य नहीं है इससे
जो क्लेश यमकिंकरोंको होगा वही तुमको भी होगा तब स्त्री ने

कहा कि हे महाराज ! उस मार्ग में बिपत्तिजनित जो क्लेश होता है वह केवल प्राणियों को ही होता है किंकर गण उससे मुक्त हैं अर्थात् वह क्लेश उन किंकरों को कदापि नहीं होता तब ब्राह्मण ने समझाया कि हे मतिमंद ! तू यह नहीं समझती कि यह पंचभौतिक शरीर तो मरने के पश्चात् यहां ही पड़ा रहता है अथवा जलकर भस्म होजाता है और जैसे यमका सूक्ष्म रूप है तैसेही तेरा भी स्वरूप होजायगा फिर तुझको किस प्रकार से मार्गजनित क्लेश प्राप्त होगा तब स्त्री ने कहा कि हे महाराज ! ग्रीष्म ऋतु में जो पुरुष पौशाला बिठाता अथवा कलसको शीतलजलसे भरकर दान करताहै उसको अति भयंकर मार्ग में जल पीने के लिये मिलता है तब ब्राह्मण ने कहा कि यमकिंकरों को तृषा निवारण करने के लिये जिस स्थान पर जल मिले तुम भी उसी स्थान पर जल पीकर अपनी प्यास बुझालेना तब स्त्री ने उत्तर दिया कि मुझको यमकिंकर जल नहीं पीनेदेंगे तब ब्राह्मण ने कहा कि हे मूर्ख ! इस बात को यम किंकर भी जानते हैं कि संसार की उत्पत्ति ईश्वर से है और प्रारब्ध भी ईश्वराधीन है यमकिंकरों की यह सामर्थ्य नहीं है कि प्राणी को जल पीने से रोकसकें किसी शास्त्र में यह लेख नहीं है कि जल यमराज का है॥ और यदि यमकिंकर तुमको जल न पीने देंगे तो भी कुछ चिन्ता नहीं क्योंकि यह शरीर पंच-तत्त्व मय है जब जलका नाश हुआ तब और तत्त्व भी नहीं रह सके वे भी नाश होजायंगे जब पांचों तत्त्वों का इस तरह से नाश होजायगा तब तुम यमकिंकर व यमराज के सवाल जवाब से बच जाओगी। तब स्त्री ने कहा कि जब यमकिंकर तुमको धर्मराज के समीप लेजावेंगे और वे तुमसे पाप पुण्य का हाल पूछेंगे तब क्या उत्तर दोगे तब ब्राह्मण ने कहा कि प्राणी जाग्रत् अवस्था में जिस वस्तु का बिचार करता है वही स्वप्न में भी अनेक रूप धारण करके प्रतीत होती है तूने जीवनावस्था में जो पाप पुण्य

का संकल्प अपने चित्त में किया है वही संकल्प मरने के पश्चात् भी तद्रूप प्रकट होगा क्योंकि मनके निश्चय से जो कर्म शुभ अथवा अशुभ करता है उसी के फलको प्राप्त होता है ऐसेही तुमने कर्म व कर्म के फल व उसका फल देनेवाले यमराज को मनसे संकल्प किया है वही तुमको प्राप्त होगा और जो अपने को मूल के बिचार से देखे तो न पाप है न पुण्य न धर्मराज है न किंकर है मुझमें तो ये दोनों बिषय नहीं हैं फिर पूछना और कहना कौन करे तब स्त्री ने कहा कि मैं पाप व पुण्य को क्या बिचारूं चित्रगुप्त जो सब प्राणियों के कर्मों के लिखनेवाले हैं वे स्वयं बिचार करके लिख लेवेंगे तब ब्राह्मणने उत्तर दिया कि सत्य कहो तुमने चित्रगुप्त को कभी देखा है ? हेनिर्बुद्धे ! यह संपूर्ण बिचार तेरे अहंकार का है जो तूने अपने मनमें बिचारकर उसका अभ्यास किया है वही प्रकट होता है, और अपने से अतिरिक्त दूसरे को देखना इसी को अहङ्कार कहते हैं यदि प्राणी इस अद्वैताभाव को त्यागकर सबको एक ब्रह्ममय जानता रहे तो पाप, पुण्य व उत्तर, प्रश्न ये कुछ वस्तु नहीं हैं, तब स्त्री ने कहा कि हे स्वामिन् ! मैं अहङ्कार का किस प्रकार से त्यागकरूं तब ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि भक्तियोग करके श्री गोविन्दमें लय होनेसे अहङ्कार का नाश होताहै इससे तुम अहङ्कार से छूटने के लिये भक्ति, योगकरो. यदि पूछो कि भक्तियोग क्याहै तोसुनो, अपने मनमें इस बातका पूर्णरूप से निश्चय करलेवे कि एक अद्वितीय श्रीनारायणही है इससे अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है, व न होगा, और जिस पुरुष ने अपने को श्रीगोविन्द भगवान् में लय कियाहै उसको किसी दूसरेसे कुछ भी प्रयोजन अवशेष नहीं है, यदि कालसे निर्भय होना चाहो तो अहङ्कार का परित्याग करो क्योंकि सम्पूर्ण शरीरमें भीतर व बाहर सब स्थानों के बिषे एक हृषीकेश भगवान्ही पूरितहैं. तैं,मैं और यह संसार व काल कहां है इससे हृषीकेश का भजन करो जिस से हृषीकेश

रूप होजावो, तब स्त्रीने कहा कि जब तुम कहते हो एक हृषी-
केशही है तो उसकाभजन कौनकरे तब ब्राह्मण ने कहा कि भजन
करना इस कारण से कहा कि हृषीकेश को भ्रमहै कि यमपुरी
जाऊंगा, हे मूर्ख ! जब एक भगवान्‌ही पूर्ण है तब काल कहां
और किसको कालका भय होवे इससे यही निश्चय करो कि
एक भगवान्‌ही है और मैं भी श्रीभगवान्‌ही हूं अब कहो कि
तुम कौनहो तब स्त्रीने कहा कि हे स्वामी ! मैं हृषीकेशहूं मैंने
अच्छीतरह समझ लिया है कि मैं नहीं हूं तब ब्राह्मण ने कहा
कि यदि तू हृषीकेश है तो मैं भोग किससे करूंगा तब स्त्री ने
उत्तर दिया तू सदाभोक्ता होकर सम्पूर्ण इन्द्रियों को भी भोग
देता और उनसे भोगलेता है और तेरे आनन्दसे उनको भी
आनन्द है तब और भोगसे क्या प्रयोजन रखता है तब ब्राह्मण
ने कहा कि तू मेरी स्त्री नहीं है अब मैं अतीत होता हूं तब स्त्री ने
कहा कि मुझको तेरे साथ कब मेलथा जो अब अतीत होताहै
यह परम्परा से चलीआती है कि कभी भर्त्ता, रहजाता है और
उसकी स्त्री उससे पहिले मरजाती है और कभी स्त्री पहिले म-
रजाती और उसका पति पीछे मरता है इस परस्पर संयोग व
वियोग से तुम आपही आप अतीत हो फिर अतीत होना और
क्या वस्तुहै जिसकी तुम चाहना करते हो यदि अतीतही होना
है तो ऐसे अतीत होवो कि जिसमें त्याग और ग्रहण कोई वस्तु
न होवे ब्राह्मण ने कहा कि हे रूप ! अब मेरे रूपकहो तब स्त्री ने
कहा कि यही रूप तेराहै कि जो तूही है इस वार्त्तालाप के अवसान
में पराशरजी मैत्रेयजी से बोले कि हे मैत्रेयजी ! वह ब्राह्मण की
स्त्री किंचित्‌काल में अपने स्वरूप में लीन होगई और तू कहता
है कि मेरा क्या रूपहै, इससे तेरा यही रूपहै कि तूहीहै, परमहंसों
का धन परमहंसों कोही प्राप्तहोताहै और जो अस्थि और त्वचा
में बँधेहैं उनको आश्चर्य होताहै ॥ इति ब्राह्मणका इतिहास
समाप्त । शिव ! शिव ! शिव !!!

श्रीगणेशाय नमः॥

हरिःॐतत्सद्ब्रह्मणेनमः॥

अब राजा मान्धाता का इतिहास प्रारम्भ करते हैं॥

पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी! पूर्वसमयमें मान्धाता नामी एक राजा हुआ वह एक दिन अर्धरात्रि को अपने शयनागार में सुखसेजपर सोते समय क्षुधासे व्याकुल होकर उठ बैठा और अपनी रानी से क्षुधा के निवारणार्थ कुछ भोजन मांगा तब उस की रानी ने उत्तर दिया कि तुम्हारा इतना रात्रि और दिन का समय भोजन और शयन मेंही व्यतीत हुआ परन्तु परमार्थ कुछभी हाथ न आया रानीसे इस वचन को सुनकर राजा बोल उठा कि हे रानी! वह कौन कर्महै जिससे परमार्थ प्राप्त होवे तब रानी ने उत्तर दिया कि हे राजन्! अब कामनाहीन सन्तजनों का सत्संग करो कि जिससे कुछ परमार्थ की प्राप्तिहोवे यह सुनकर राजा उसी शय्यापर बैठाहुआ मुखसे श्रीविष्णु२कहनेलगा और रानीसे बोला कि यदि इस समय श्रीविष्णुभगवान् कृपाकरके आजावें तो उनके सन्मुख क्या भेंट रक्खी जावेगी तब रानी ने कहा कि तन, मन, रसना उनके अर्पण कीजियेगा तब राजा ने कहा कि यह शरीर तो रुधिर, मज्जा, अस्थि और त्वचा से पूरितहै और रसना भी मांसका टुकड़ा है जोकि थूक से भरा है और मन संकल्प विकल्प का रूपही है इससे ये सम्पूर्ण क्या वस्तुहैं जो अर्पण करेंगे तब रानी ने कहा कि लाल और मोती इत्यादि रत्न अर्पण कीजियेगा तब राजा ने कहा कि हमारी तुम्हारी दृष्टिमें यह माणिक, मोती इत्यादि रत्नहैं परन्तु वास्तव में ये सब पत्थर के टुकड़े हैं यह भी उनके योग्य नहीं हैं तब रानी ने उत्तर दिया कि आप हँसी क्या करतेहैं सोचो तो ऋषि और मुनि व सन्तजन सहस्रोंबरस योग व समाधिद्वारा अनेक युक्तियोंसे विष्णुभगवान् का ध्यान करतेहैं परन्तु तबभी उनके दर्शन

दुर्लभहैं वे विष्णुभगवान् तुमको तत्कालही ध्यान करने से किस तरह प्राप्त होसक्ते हैं तब राजा ने कहा कि यह तुम्हारा कथन सत्यहै परन्तु सन्तलोग कहतेहैं कि जो पुरुष जिस समय कामना का त्याग करताहै उसको उसीसमय विष्णुभगवान् प्राप्तहोतेहैं और श्रीकृष्णमहाराजने भी भगवद्गीता में अर्जुन से ऐसाही कहा है यथाः—सर्व्वधर्म्मान्परित्यज्यमामेकंशरणंव्रज। अहंत्वांसर्व्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामिमाशुच॥ जब राजा ने इस प्रकार कथन किया और भगवत्प्रेम की अग्नि उसके हृदय में प्रज्वलित हुई तब रोदन करके प्रेमकी अधिकता में विह्वल होकर अचेत होगया फिर किञ्चित्काल में जब होशआया तब जिधर दृष्टि उठाकर देखता है उधर उसको विष्णुही दृष्टि पड़ते हैं तब पराशरने कहा कि हे मैत्रेयजी! देखो राजा शय्यापर सोताथा परन्तु जब उसने निश्चय और प्रेम से देखा तब उसीका संकल्प विष्णुरूप होकर उसको दर्शित हुआ तब राजाने कहा कि हे विष्णुभगवान्! आप मेरे गले में लगजाइये कि जिससे आपके निर्दोष शरीर में यह मेरी मलिनदेह स्पर्श होने से निर्म्मल होकर पाप, पुण्यसे शुद्ध होजावे यदि आप कहें कि तूने असंख्य जीव हतन किये हैं तो मैंने आपही की आज्ञानुसार राज्यकिया है और मैं अविद्या के वशीभूत होकर अपने को राजा मानतारहा यह अति मूर्खता थी मैं कहांहूं जहां हैं वहां आपही विराजमान हैं, तब विष्णुभगवान् प्रत्यक्ष दर्शन देकर राजा के सन्मुख खड़ेहुये कि जिनके रूप अनूप लावण्यनिधान, सच्चिदानन्दघनके दर्शन करते ही राजा अचेत होकर मौन होगया और वाक्यस्फूर्ति की सम्पूर्ण शक्ति दूरहोगई कुछ भी मुख से न बोल सका, परन्तु अत्यन्त हर्ष से पूरित होकर यह कहनेलगा कि मैं स्वयं विष्णु हूं॥ हे मैत्रेयजी! वह राजा आपे में न रहा अर्थात् ऐसा विह्वल हुआ कि उसके तनमन की सब सुधि जाती रही और सम्पूर्ण पदार्थ उसको विष्णुरूपही दिखाई देने लगे

तब विष्णुभगवान् बोले कि हे राजन्! जो तेरी इच्छा हो वह वरदान मांगले मैं तेरी इच्छा पूरी करूंगा तब राजाने प्रार्थना पूर्वक नम्रता से विनय किया कि हे महाराज! मेरी सम्पूर्ण कामनायें आपके दर्शन से पूरी होगई अब मुझको किसी वस्तु की चाह नहीं है क्योंकि जितने सांसारिक व पारलौकिक पदार्थ व सुख हैं वह सब आपही का स्वरूप हैं ऐसे दर्शन को पाकर अब कुछ बाकी नहीं रहा जिसकी कांक्षा मुझको अवशेष होवे—तब विष्णु भगवान् बोले कि अभी तू कहताथा कि जब विष्णु भगवान् आवेंगे तो मैं उनको क्या भेंट दूंगा इससे वह वस्तु जो भेंट देने की तेरी इच्छा हो लेआव परन्तु मैं सम्पूर्ण भेंटके पदार्थों से उत्तम भेंट तेरे अहंकार अर्थात् शरीराभिमान को उत्तम समझताहूं वही मुझको दे॥ तब राजा ने कहा कि हे महाराज! जब तक मुझ में अहंकार विद्यमान है तभी तक आप के चरण कमल मेरे हृदयमें हैं जब अहंकार नाश होजावेगा तब आपके चरणारविन्दोंको मैं कहां रक्खूंगा इससे आप दयापूर्वक इन अहंकार और ममता दोनोंको लीजिये और आपभी जाइये क्योंकि तुम तभीतक थे जबतक मुझ में अहंकार था और जब तक मुझमें अहङ्कार था तभी तक मुझ में सेवक व सेव्य भाव भी था जब अहंकार नाश होगया तब हम और तुम कहांहैं यह वचन कहकर राजा भगवत्स्वरूप में लीनहोगया और विष्णु भगवान् भी अन्तर्द्धान होगये—तात्पर्य यह है कि जैसे राजाने जब विष्णुजी का संकल्प किया तब विष्णुजी प्रकट हुये और जब एक स्वरूपहुआ तब विष्णुजी गुप्त होगये इससे कार्य और कारण केवल सङ्कल्प मात्र हैं यह संसार मनोमय है अर्थात् जब जिसने जाना कि संसार है तब सर्व पदार्थ सम्पूर्ण सांसारिक पदार्त्थ प्रकट होजाते हैं और जब जिसने मन से संसारको असार जान लिया तब सम्पूर्ण संसारका नाश उसको भासमान् होता है॥ तब पराशरजी ने मैत्रेयजी से कहा कि हे

मैत्रेयजी! जब राजाने संसारको नाशवान् समझ लिया तब उसीसमय आपको जानकर स्वरूप में लीन होगया। परन्तु मैंने तुमको इतने समय तक उपदेश किया लेकिन तुममें मेरा उपदेश किञ्चिन्मात्र भी प्रवेश न हुआ हे प्यारे! यह शरीर पुराना घड़ियाल है इसकी प्रीति को त्यागकर अपनेको आपही से जानो॥ मैत्रेयजीने कहा कि हे पराशरजी! यह जो सर्वतत्त्वज्ञान आपने कथन किया इसको मैंने पूर्ण रूपसे जाना इससे भासित होता है कि आत्मा से अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है परन्तु कृपापूर्वक इतना और भी समझाइये कि जब ब्रह्मासे लेकर पिपीलिका पर्यन्त सब जीव कालकी फांसी में बँधे हैं तो मैं इस दुस्तरकाल फांसस कैसे छूटूं तब पराशरजी ने कहा यही प्रश्न जो तुमने कियाहै एकसमय नकुलने भीमसेनसे किया था कि जिसप्रकारमैं यमपुरी को न जाऊं वह उपाय वर्णन कीजिये तब भीमसेनजी ने उनकी शंका निवृत्ति करने के हेतु नकुल से यह वर्णन किया था कि हे नकुल! एक समय यकन नाम ऋषीश्वर जो मेरे गृह में आये थे उनसे मैंने भी यही प्रश्न कियाथा इस विषय में जो कुछ उन्हों ने मुझको समझाया था मैं वह सब तुमसे कहता हूं—अब आगे यमकिंकर का इतिहास प्रारम्भ होगा, राजा मान्धाता का इतिहास समाप्त हुआ॥

अथ यम और यमकिङ्कर का इतिहास प्रारम्भ॥

एकसमय यमकिंकर ने धर्मराज से पूछा कि हे भगवन्! तुम्हारा भय प्राणियों के चित्तसे जिसप्रकार निवृत्त होवे वह दया करके मुझ से वर्णन कीजिये तब धर्मराजजी ने उत्तरदिया कि यह हमारा भय प्राणियों की अज्ञानता से उत्पन्न होता है और जब ज्ञान के द्वारा उनको आत्मस्वरूप का भास होजाता है कि आत्माही सर्वत्र है तब उनको हमारा भय किञ्चिन्मात्र भी नहीं रहता सो इस सम्पूर्ण भयके निवृत्तकर्त्ता श्रीविष्णु

भगवान् ही हैं जे पुरुष श्रीविष्णुभगवान् की शरण में प्राप्त होते हैं वे हमारे पास कदापि नहीं आते और यह जो रूपका अभिमान है सो रज्जु में सर्प के समान भ्रममात्रहै और यही अभिमान जन्म मरणरूप बन्धनका हेतु है जो पुरुष नामरूप से दृष्टि को निवृत्त करता है वह ही निर्यतन मुक्त होता है और जो पुरुष विष्णुभगवान् को जानता है वही वैष्णव है, स्नानकरने व छापा तिलक लगाने और नग्न रहने से कोई पुरुष वैष्णव नहीं होता है विष्णुका जानना क्या है कि विष्णु हमहीहैं जैसे स्वर्ण के भूषण स्वर्ण से भिन्न नहीं हैं तैसे ही यह सम्पूर्ण चराचर संसार मनुष्य देवतादि तिर्यग्योनि यह सब केवल एक विष्णु गोविन्दजी ही के रूपहैं, हे किंकर! तुमने जो यह प्रश्नकिया कि प्राणी के चित्तसे तुम्हारा भय किसप्रकार निवृत्तहोवे इसके उत्तर में यह समझना चाहिये कि जो पुरुष इस सांसारिक दृष्टि को उठाकर अपने धर्म और भगवद्भजनमें स्थित रहकर ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त सबमें एक आत्माही को पूर्ण जानताहै वह हमारे भयसे रहित होजाता है और जो शत्रु व मित्र में एक आत्माही को देखता है उसी को अभेद मुक्ति प्राप्त होती है और सम्पूर्ण चराचर जड़ व चैतन्य में श्रीविष्णुभगवान् को एक रस व्याप्त जानके दूसरी वस्तु का अध्यारोपण करता है इसी को अभेद मुक्ति कहते हैं हे किंकर! मनरूपी शीशा को द्वैतरूपी मल से रहित करके स्फटिकमणि की नाईं स्वच्छकरो जैसे स्फटिकमणि स्वयंरूप रहित होकर सब रूपों में मिलजाती है इसीप्रकार स्वच्छ मनभी शत्रु मित्रसे रहित होकर सब प्राणियोंमें एक सर्वात्मा को व्याप्त देखताहै हे किंकर! यह निश्चय करके मानो कि श्रीवासुदेव भगवान् से भिन्न किञ्चिन्मात्र भी कोई पदार्थ नहीं है और यह सम्पूर्ण माया जाल का जो प्रपञ्च है इसको उन्हीं भगवत्का प्रकाश समझो यदि तुमको मुक्तिकी इच्छा होवे तो इस पंचभौतिक शरीर के विषयोंको विषकीनाईं

त्याग करके यह दृढ़ निश्चय जानों कि जो कुछ देखने सुनने कथन करने में आता है वह सब श्रीविष्णुभगवान् ही हैं तब यमकिंकरने उत्तर दिया कि हे भगवन ! जब हमलोग किसी प्राणी के जीवको बांधकर यहां ले आते हैं तब यह नहीं जानते यह स्वरूप उसका क्या है और पाप व पुण्यका लेखा किससे पूछते और पाप व पुण्यका फल किसको देते हैं तब धर्मराजने कहा कि यह तुम्हारा प्रश्न अकथनीय है इसके विवरण से तुम्हारा क्या प्रयोजन है तब किंकरने कहा कि बड़े आश्चर्य की बात है कि जिसके ऊपर हम और आप आज्ञा करते हैं और उसी का चित्त में चिन्तवन रखते हैं वह नेत्रों से दिखलाई नहीं देता, निश्चयहोता है कि स्वर्ग नरक, प्रश्न उत्तर और जो आप आज्ञा करते हैं कि इसको पाप के फल से नरकमें डालो और हम आपकी आज्ञा मानकर उसको नरक में डालते हैं यद्यपि उसके रोदन करने और दुःख के शब्द को सुनते हैं परन्तु कुछ भी विचार नहीं करते वास्तव में उसके स्वरूप में कुछ हानि व वृद्धि नहीं है, वह दुःख सुखमें एकरस रहता है और शास्त्रद्वाराभी निश्चित है कि यह जीव दुःख व सुख, पाप व पुण्य सम्पूर्ण शारीरिक धर्मों से रहित है इसको काल फांस से भी कुछ प्रयोजन नहीं यह व्यवहार आपका केवल भ्रम और सङ्कल्पमात्र है तथापि आप जो मेरे इस सन्देहको निवृत्त न करेंगे तो हमकिसी को दण्ड व किसी शरीरसे कुछ प्रयोजन न रक्खेंगे तब धर्मराज ने उत्तर दिया कि जीव कर्म के बन्धन में फँसा है तब यमकिंकर ने कहा कि अब मैंने यह समझ लिया कि यह जीवहै परन्तु कृपाकरिके यह बतलाइये कि इसका रूप शुक्ल व श्याम किस प्रकार का है तब धर्मराज ने कहा कि कर्त्ता ईश्वरको कहते हैं हम नहीं जानते कि वह क्या करता है तब यमकिंकर ने कहा कि यदि आप कर्त्ता के कर्मको नहीं जानतेहो तब आपको पाप, पुण्य व शुभ, अशुभ का कैसे निश्चय होताहै तब धर्मराज ने

कहा कि यदि यह गुप्तज्ञान हम तुमसे प्रकटरूप से वर्णनकरें तो हमारी यमपुरी का सम्पूर्ण व्यवहार नाश होजायगा इससे चुप रहो किञ्चिन्मात्र भी इसकी वार्त्ता न करो तब यमकिंकर ने उत्तर दिया कि हमको धिक्है और हमारे इस दण्ड व फांसी धारण करने को भी धिक्है कि हम यही नहीं जानते हैं कि यह जीव क्या है और अपने को यमकिंकर मानरक्खा है तब धर्म्मराजने कहा कि हे मूर्ख! तुमको इससे क्या प्रयोजनहै अपनाकाम करो और सदा गोविन्दजी का भजन करो जिससे सम्पूर्ण उपद्रवोंसे रहित होगे और जब तुम्हारे भजन करनेसे गोविन्दजी प्रसन्नहोंगे तब सम्पूर्ण कामनारूपी मल तुम्हारे मनके वे नाश करके तुम्हारे चित्तको निर्मल करदेंगे और जब चित्त शुद्ध होजावेगा तवतुम ज्ञानद्वारा अपने वास्तव स्वरूपको स्वयं प्रत्यक्ष देखोगे तब यमकिंकर ने कहा कि जब अपने को न जाने और गोविन्द का भजन करे तो उस भजन से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा तब धर्मराजने कहा कि ऐसा तो कभी नहीं हुआ है कि पहिले आपको जाने तब गोविन्द का भजन करे तब यमकिंकर ने कहा कि हम आपको नहीं जानते हैं और हमको भजन से कुछ काम है अब आप यह बतलाइये कि हमारा स्वरूप क्या है तब धर्मराजने कहा कि इस वार्त्ताको हमसे न पूछो वशिष्ठजी इसका उत्तर देंगे तब यमकिंकर ने कहा कि मुझको वशिष्ठजीसे क्या प्रयोजनहै हमारे तो ईश्वर आपही हैं हमको दूसरे से क्या प्रयोजनहै यदि आप हमारे इस प्रश्नका उत्तर यथार्थ न समझावेंगे तो हम अपना शरीर त्यागदेंगे तब धर्मराजने उत्तरदिया कि अभी तुम्हारा अन्तःकरणशुद्ध नहीं विना अन्तःकरणकी शुद्धता के उपदेश करनादोषहै इससे तुमको उचितहै कि बदरिकाश्रम में जावो और सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर के तपकरो तब स्वयं तुम्हाराचित्त शुद्ध होजावेगा और चित्तके शुद्ध होने से अपने स्वरूपको आपही-से जानजाओगे तब यमकिंकर ने पूछा कि हे

प्रभो! मन क्या वस्तु है जो शुद्धहोवे तब धर्मराजने उत्तर दिया कि मन एक मणिरूप है जोकि राग, द्वेष, शोकरूपी मलसे मलिन होकर अहङ्काररूपी बन्धन में बँधा है जो कि आपको शरीर मानके काम, क्रोधरूपी शत्रु के वशमें होरहा है क्योंकि जब यह मनस्थूल शरीर के साथ अध्यास करता है तब शारीरिकधर्म जरा, मृत्यु अपने में आरोपित करता है और जब प्राणोंके साथ अध्यास करता है तब क्षुधा पिपासा जो प्राणके धर्म हैं वह अपने मन में आरोपित करता है और जब मनके साथ अध्यास करता है तब हर्ष, शोकादिक मनके धर्म अपने में आरोपितकरता है और जब ऐसा अभिमान होता है कि हम शरीरहैं अथवा यह शरीर मेरा है तब सर्व धर्म आकर प्राप्त होते हैं इससे हम तुमको एक इतिहास इस विषय में सुनाते हैं उस को श्रवणकरो कि जिसका मन शुद्ध होता है उसकी ऐसी व्यवस्था होती है ॥

राजा शिखण्डध्वज का इतिहास ॥

शिखण्डध्वजनाम एक राजा सूर्यवंश में हुआ था जोकि एक चक्रराज्य करके प्रजापालन और न्याय करने में शास्त्र के अनुसार सम्पूर्ण वर्त्तावकरता था एक दिन वह राजा अपने स्वभाव के अनुकूल किसी वनमें शिकार खेलने को गया और सम्पूर्णदिन वन में घूमता फिरा परन्तु कोई मृग उसके हाथ न आया निदान निराश होकर खाली हाथ अपने घरको फिराआताथा कि रास्ते में एक सियार दृष्टिपड़ा राजा ने चाहा कि इस को बाणमारकर शिकार करें तब वह सियार राजा और बाणको देखकर हँसने लगा इस सियार के अन्त समय की ऐसी हँसी को देखकर राजा ने बाणछोड़कर उससे पूछा कि हे सियार! इस समय ऐसे कष्टसे ग्रसित होने पर तुम्हारे हँसने का क्या कारण है तब सियार ने उत्तर दिया कि हे राजन्! मेरे हँसने

का निमित्त यह है कि जब तुम्हारे बाण से हमारे प्राण त्याग करेंगे तब तीनोंलोक का नाश होजावेगा तब राजा सियार के इस आश्चर्य जनक वचन को सुनकर चकित होके सियार से बोला कि हे सियार! मैंने तुम्हारे सदृश अनगिनत मृगों का शिकार किया परन्तु संसारका किञ्चित्रोम का विनाश न हुआ अब तुम्हारे मारने से इस संसार का कैसे नाश होजावेगा तब सियार ने उत्तर दिया कि हे राजन्! जबतक हम हैं तभीतक तीनों लोकहैं और जब हम न रहेंगे तब यह संसार कहांहै इस कारण से जीवमात्र के वध करने से तीनोंलोक के वधका अपराध होताहै तब राजा इस उत्तर को सुनकर व अपने मनमें लज्जित होकर विचार करनेलगा कि यह सत्य कहता है तब उस को छोड़कर और अपने राजसिंहासन पर आकर व अन्तःकरणसे सम्पूर्ण भोगोंकी कामना को त्यागकर दिया उस समय गन्धर्व जो प्रतिदिन गान करने आतेथे आये उनको देखकर राजाने कहा कि देखो मनुष्य का जीवन केवल श्वासमात्र से है इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि इसको भोगों की इच्छासे व्यर्थ न निकालें, हमको इस मिथ्या व्यवहार की कुछ भी रुचि नहींहै इस प्रकार गन्धर्वों से कहकर उनको गान से मना किया और रानी को बुलाकर बोला कि हे रानीजी! अब मुझको वैराग्य प्राप्तहुआ है इससे हम अतीत होजावेंगे तब रानीने कहा कि हे स्वामिन्! इससे और उत्तम क्या वस्तु है परन्तु एक हमारी इस विनय को श्रवण करके फिर जो आपकी इच्छाहोवे वह कीजियेगा, अर्थात् यदि आप अतीत होवेंगे तब भी अभिमानरूपी फांसी से मुक्त न होंगे और वही शरीराभिमान इस समय गृहस्थाश्रम में रहनेसे विद्यमान है और जब आप गृहस्थाश्रम का त्याग करेंगे तब तुम्हारे अन्तःकरण अर्थात् हृदयमें इस अभिमान की और भी वृद्धिहोगी कि हमने राज्यका त्यागकर दिया ईश्वर हमारे ऊपर अनुग्रह करेगा तब

राजाने कहा कि हे प्रिये ! यह तुम्हारा कथन सत्यहै परन्तु त्याग करने से इतना सुख होताहै कि चित्त अनेक प्रकारके विक्षेपसे रहित होकर शान्त होजाताहै, गोविन्दजी के भजनके विना मन संकल्प विकल्प से रहित नहीं होता है जो और अज्ञानी हैं वे लोग विचारपूर्वक त्याग करके फिरभी अहङ्कार में फँसते हैं कि अब मैं सब कुछ करके सर्वकर्मों से रहित हुआहूं अब तुम जो कहो वह करें तब रानीने कहा कि पहिले अपने को राज्य में मिलाहुआ सिद्धकरो फिर पीछेसे जो तुम्हारी इच्छा होवे उसके अनुसार वर्त्ताव करना तब राजाने कहा कि अब हम क्या यत्न करें और किसकी शरण में जावें कि वह हमको उपदेश करे तब रानीने कहा कि अब आप दृढ़ सन्धानकरके इस उपदेशको सुनिये जोकि मैं आपसे कथन करतीहूं—कि आपके हृदयमें जो यह स्मृति जिससे यह भासित होताहै कि यह स्त्री है यह मेरी रानी है इसको अपने मनसे दूरकीजिये—तब राजाने कहा कि हमारे हृदय में वैराग की अग्नि ऐसी प्रज्वलित हुई है कि स्त्री और पुरुष हमारी दृष्टिसे भस्महुईहै जो पुरुष परमात्मा के सन्मुख नहीं है वह इस अनित्य शरीर पर जोकि मल व मूत्रसे पूरित है दृष्टि स्थित करते हैं और जो परमात्माके सन्मुखहै वह इन्द्रकी अप्सरा के देखने की इच्छा नहीं करता है और तुम्हारा संकल्प क्या करेगा तब रानी ने कहा कि हे राजन् ! देखो कि यह तुम और तुम्हारा क्या है यह सर्व संसार नेत्र खोलने से भासता है जब नेत्र हुये तब न तुम हो न कोई तुम्हारा है और जब तुमही नहीं हो तब किस पदार्थ का ग्रहण और त्याग करतेहो तब राजा रानी के कथन को सुनकर और अपने मनसे सर्व कर्मोंको त्याग कर शान्त चित्तहुआ और अपने भृत्यों अर्थात् दरवानोंसे कहा कि यदि कोई पूछे कि राजा कहाँ है तब तुम उत्तर देना कि राजा मरगया इस प्रकार कहकर राजा अपने मण्डल के भीतर एकान्त स्थानमें स्थितहुआ उसकी रानी दश हजार वरस

तक नित्य नवीन शृङ्गार करके उसकी सेवा शुश्रूषामें जिसतरह सदा तत्पर रहती थी रहनेलगी परन्तु राजा के हृदय में विषय की प्रीति नहीं रही क्योंकि वह सर्वदृश्य मिथ्या जानता था और कहता था कि यह अस्थि व मांसकी मूर्त्ति यहां क्यों आई है यदि हम नहीं हैं तब तुमसे हमको क्या प्रयोजनहै तब सबको निश्चय हुआ कि हमारा राजा बावला होगयाहै तब रानीने कहा कि कोई पुरुष कदापि चिन्ता न करे राजा प्रसन्नहोके आनन्द संयुक्तहैं जब अर्धरात्रि व्यतीत हुई तब राजा उठकर प्रेम से ऐसा रुदन करनेलगा कि जिसके नेत्रके जल के प्रवाह से हम अर्थात् अभिमानरूपी मलधोगया और निर्मल होकर राजा फिर बोले कि यदि मैं कहूं कि हस्ती मेराहै यह सर्व मिथ्या है यदि कहूं कि घोड़ा और सेना मेरीहै तो यह भी मिथ्याहै और यदि यह कहूं कि स्त्री और पुत्र मेरे हैं तब केवल भ्रममात्र है जब इस प्रकार सब सांसारिक पदार्थ भ्रममात्र दर्शित होतेहैं तो मैं किसकी शरण में जाऊं जो इनसे मेरी रक्षाकरे जब कि यह शरीर कि जिसके पालन के लिये अनेक प्रकार के यत्न व पाप, पुण्य किया वह भी सत्य नहीं है तब यह हमारा अभिमान जिससे सम्पूर्ण वस्तुयें अपनी दिखलाई देती हैं मिथ्या हैं हे विधाता! मैं नहीं जानताहूं कि मेरा स्वरूप क्याहै और मैं इस पिंजड़ेरूपी शरीरमें पक्षीकी नाईं क्यों फँसाहूं और यह मनुष्य का शरीर जो स्वच्छ चिन्तामणिके सदृशहै इसको मैंने कीचड़में क्यों फँसा रक्खाहै काहेते कि मैंने अपने स्वरूपको नहीं जाना हे रानी! हमारी व्यवस्था अब इसप्रकार जानो जैसे एक साधु नदी के तीरपर बैठाहुआ नदीके जलमें बुद्बुदों को उठतेहुये देखकर उन बुद्बुदों से बोला कि हे बुद्बुदो! तुम हमसे मित्रता करलो कि जिससे हम और तुम दोनों जने एकसे होकर रहें साधु के इस वचन को सुनकर बुद्बुदने ऐसा उत्तर दिया कि जिससे साधु के नेत्रोंसे जलप्रवाह बहनेलगा कि इसी समयान्तर में एक पर-

महंसजी भी आ पहुंचे और साधु को रुदन करते देखकर बोले कि हे साधो ! तुम क्यों रोतेहो तब साधु ने उत्तर दिया कि हे महात्माजी ! मैंने जल बुद्‌बुद से मित्रता की थी वह मेरा मित्र नाश होगया इससे मैं इस असह्य मित्र वियोगसे दुःखित होकर रोताहूं तब परमहंसजी ने उपदेश दिया कि हे मूर्ख ! तुम इस जलबुद्‌बुद के नाश होजाने से क्यों रोतेहो अपने विषे ध्यान करके देखो तब तुम्हारा यह रोदन करना उचित है देखो यह जो तुम्हारा शरीर पंचभौतिक पदार्थों से बनाहै यह स्वयं नाशवान्‌है और इसमें जलबुद्‌बुद की तरह जो तुम्हारी जीवनाधार श्वासका आनाजाना है यह विलीयमान है इसका तुमको शोच सदा करना चाहिये हे रानी ! जब परमहंसजी के इस उपदेश से मुझको ज्ञानहुआ कि मेरे तनकी साक्षात् जलबुद्‌बुदाकार दशाहै तब मैं अपने शरीर को मिथ्या, असार व नाशवान् समझकर पश्चात्ताप करनेलगा कि हाय ! मैं इस निर्मल जीवात्माको नाहक इस मिथ्या व नाशवान् शरीरके स्नेहरूपी फन्देमें फँसाकर इस दशाको प्राप्तहुआ मैंने अपने स्वरूपको आजतक नहीं पहिंचाना हा ! अतिखेद है मेरे ऐसे पश्चात्ताप से युक्त इस असह्यक्लेशको देखकर रानीने कहा यदि आप इस शरीरको नाशवान् व मिथ्या समझते हो तो इससे मित्रता करना बड़ीही भूलहै इस से कदापि स्नेह न करना चाहिये तब राजाने उत्तर दिया कि परवश होकर इस पिशाचरूपी कामनासे जो मुझमें विद्यमान है इससे मुक्त होनेका कोई यत्न नहीं देखता हूं और न कोई ऐसा साहसी पुरुषही दृष्टि पड़ता है जो इस से छुटाकर मेरी रक्षा करे तब रानीने कहा कि कामना तो आप करतेहो और रक्षा दूसरे से चाहतेहो भला इसदशा में दूसरा पुरुष तुम्हारी रक्षा किस प्रकार कर सक्ता है आशा है कि यदि आप इसश्वास रूपी कामना से रहित होंगे तो स्वयं इसके बंधन से छूट जावेंगे तब राजा ने कहा कि यदि इस समय श्रीगोविंद

नारायणजी आकर प्राप्त होवें तो वह क्याकरें तब रानीने उत्तर दिया कि तुमतो कामनारूपी बन्धन में फँसे हो जब तक मनुष्य इससे मुक्तनहीं होता तबतक उसको गोविन्दजीका दर्शन कदापि नहीं होसक्ता फिर तुमको उनका दर्शन कैसे प्राप्त होसक्ता है। तब राजा ने उत्तर दिया कि मैं किससमय अपने राज्यसिंहासन पर बैठा कि अकस्मात् एक संत ने आकर मुझको दर्शन देकर सनाथ किया और यह उपदेश किया कि जो कोई पुरुष कामना के बंधन में फँसा हुआ कामना को त्याग करके यह दृढ़ निश्चय जाने कि यह संसार भ्रममात्र है मनोराज से अधिक नहीं है तब तत्क्षण इससे छूटजाता है और जबतक इस कामनारूपी आवरण (पर्दा) का जोकि जीव और ब्रह्मके बीचमें पड़ा है नाश नहीं होता तबतक गोविंदजीका दर्शन मिलना अति दुष्कर है और जब इस कामनारूपी पर्दे का नाश होजाता है तब यावत् दृश्यमान पदार्थ हैं सब गोविन्दरूपही दर्शित होते हैं हे रानी! मेरा मन इससमय कामनासे मुक्त हुआहै यदि मुझको श्रीगोविंद जीका दर्शन प्राप्त होजावे तो कुछ आश्चर्य नहींहै और श्रीगोविंद भगवान् का स्वयं वाक्य भी है कि यदि कोई जीव कामना से रहित होकर मेरी शरण में प्राप्त होता है तब मुझ में और उस प्राणी में कुछ अन्तर नहीं रहता हे रानी! इस समय मुझको दर्शित होताहै कि न मैं हूं न कोई मेरा है और मेरी यह सम्पूर्ण इन्द्रियां जो नेत्र,श्रवण और नासिका आदि हैं सब नाशवान् और असत्य हैं अन्तकाल में यह सब हमको त्याग देवैंगी इससे इस समय यदि कोई मुझको स्वर्गलोक या पितृलोक देवे तो उनलोकों के प्राप्तिकी मुझको किञ्चित् भी इच्छा नहीं है यदि इससमय श्रीगोविन्दजीका दर्शन मुझको प्राप्त होवे तो मैं उनको क्याभेंट दूंगा तब रानी ने कहा कि सम्पूर्ण अंश गोविन्दजीकी भेंटकरदी-जियेगा तब राजाने उत्तरदिया कि हेरानी! मैंने तो गोविंदजीकी भेंट के निमित्त अपने सम्पूर्ण शरीर को निश्चय कररक्खा है कि

यदि यह शरीर जो मेरा विषय वासना व मायिक पदार्थों में मिल-कर मलिन होरहा है उनकी भेंट करदूंगा तो यह निर्मल होकर स्वच्छ होजावेगा तब रानी ने उत्तर दिया कि आपके इस शरीर की भेंट देनेसे गोविंदजी को क्या मिलेगा क्योंकि इसके ऊपर चर्म और भीतर अस्थि व रुधिरादिक विकार भरेहुये हैं फिर गोविंदजीही इसको भेंट स्वीकार करके क्या करेंगे तब राजाने कहा कि यह तुम्हारा कथन सत्यहै परन्तु हे रानी! मैं उन किरीट मुकुटधारी गोविन्दजी के दर्शन पाकर कब सनाथ हूंगा इतना कहकर राजा प्रेम में मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा कि इस प्रेम विह्वलता में उसका वचन बंद होगया और कुछभी कथन-मात्र की शक्ति न रही जब रानीने देखा कि राजा अचेत होकर पृथ्वीपर गिरगया और ऐसा भासित हुआ कि मृत्यु को प्राप्त हुआहै तब उनका शिर उठाकर हे राजन्! हे राजन्!! करके कईबार उच्चस्वर से पुकारी, जब दोघड़ी के उपरान्त राजा की मूर्च्छा जगी तो रानी को उत्तर देने लगा कि तुम यह क्या वृथा कथन करके राजा शब्द से पुकारती हो न कहीं राजा है न रानी है केवल एक अद्वितीय विष्णुभगवान् गोविंदजीही सब स्थानों में पूर्णरूप से विद्यमान हैं जब रानीने इसप्रकार राजा के कथन को सुनकर अपने हृदय में अनुसंधान किया कि राजाके इस कथनानुसार ज्ञात होता है कि अब इनकी अविद्या का निर्मूल हुआ तब राजाको पृथ्वीने उठाकर बोली कि हे महाराज! श्री विष्णुभगवान् आये हैं उठके उनके दर्शन कीजिये तब राजा ने उत्तर दिया कि हे रानी! न कहीं विष्णु हैं न मैं उनसे भिन्नहूं केवल एक अद्वितीय अविनाशी सर्वव्यापी अलख अगोचर सब सांसारिक पदार्थ जड़ व चैतन्य सबमें स्वयंरूप से पूरित होकर पूर्ण रूपसे टिकाहै तब रानी ने कहा कि तुम अतीत होजाओ तब राजा ने उत्तर दिया कि अतीत होना शरीर का धर्म है सो मैं शरीरी नहीं हूं जो अतीत होजाऊं इसप्रकार रानी से वार्ता-

लाप करके राजा फिर अवाक् होकर मौन होरहा जब एकपहर रात्रि अवशेष रही तब राजा ने अपने दोनों हाथ ऊपर को उठाकर अंगिड़ाईली और विष्णुभगवान् उसीसमय राजा के हृदय में आकर विद्यमान हुये कि जिनके शुभागमन से व उनके चरणों के चमत्कारिक प्रकाश से राजाका सम्पूर्ण गृह प्रकाशवान् होगया जब राजाने देखा कि विष्णुभगवान् हमारे हृदय में हैं और सम्पूर्ण मंदिर प्रकाशित हैं तब अपने को धन्यमाना—इस वार्तान्तर में धर्मराजने यमकिंकर से कहा कि जब राजा का मन द्वैतरूपी मल से शुद्ध होगया तब अद्वैत ज्ञानको पाकर इस व्यवस्था को प्राप्त हुआ यह सुनकर यम किंकरने कहा कि हे महाराज! अब दूसरी वार्ता न चलाइये कृपापूर्वक राजाकी कथा और भी वर्णन कीजिये तब धर्मराजने कहा कि तुमको इस इतिहासके सुनने से क्या लाभ है तुमतो स्वयं उस राजा के सदृश होकर परमानन्दको प्राप्त हो—तब यमकिंकरने पूछा कि हे भगवन्! जब राजाको विष्णुभगवान् का दर्शन प्राप्त हुआ तब उसने उन विष्णुभगवान् से क्या पूछा इसविषय में जो कुछ वार्तालाप हुआ होवे वह कृपा पूर्वक यथार्थ मुझसे वर्णन कीजिये किञ्चिन्मात्र भी गुप्त न रखिये—मैं तो गोविंद के सिवाय और जितने पदार्थ हैं सबको मिथ्या व अनित्य जानताहूं क्योंकि जब प्राणीको मृत्युलोक से लेकर आता हूं और रास्ते में उससे पूछता हूं, कि इससमय तुम्हारे माता, पिता व पुत्र, भ्रातृ इत्यादिक सहायक व स्नेही और तुम्हारा पराक्रम मालधन सुवर्णादि और तुम्हारा तेज कहां है जो इस समय तुम्हारी कुछ सहायता करे तब वह प्राणी कहता है कि इन पूर्वोक्त में से इससमय मेरा सहायक नहीं है—हे धर्मराज! सिवाय एक अद्वैत के और कोई दूसरा नहीं है वही सब स्थानों में आता और जाताहै, इसमें किञ्चित् भेद नहीं है और यह जीव अपने विचार से आपही मुक्त होजाता है इस अमृततुल्य इतिहास को आप दया करके निर्णय

के साथ मुझे सुनाइये इसप्रकार यमकिंकर के सविनय वचन सुनकर धर्मराज ने उत्तरदिया कि जब राजा ने श्रीगोविन्द भगवान् को अपनी भुजा के भीतर लिया तब अपने अहंकार व शरीराभिमान से रहित होगया तब श्रीविष्णुभगवान् ने कहा कि हे राजन्! वह भेंट जो तुमने मेरेलिये विचारीहै वह मुझेदो श्री विष्णुभगवान् के यह वचन सुनकर राजा मौन होगया तब फिर विष्णुभगवान् ने पूछा कि हे आत्मरूप! तुम क्यों नहीं बोलते तब राजा ने उत्तर दिया हे महाराज! मैंने अपना अहंकार आपकी भेंट किया हे प्रभो! जो कुछ हो तुम्हीं हो मैं कुछ भी नहीं हूं तब श्रीविष्णुभगवान् बोले कि हे राजन्! यदि तुमने अहंकार हमको देदिया तब तुम असत्य हुये क्योंकि इसी अहंकार से सर्व संसार प्रकाशित होता है और जब मैं और तू का नाश होगया तब संसार कैसे रह सक्ता है तब राजा ने उत्तर दिया कि अहंकार आप से भिन्न है मैं जानता हूं कि आप से भिन्न किञ्चित् नहीं है तब विष्णुभगवान् बोले कि यदि मुझ से अतिरिक्त नहींहै तो अहंकार कहां है इस वचनको सुनकर राजा विष्णु में लीन होगया तब विष्णुभगवान् ने फिर भी पूंछा परंतु राजा उनके वचन का उत्तर न देसका जिसतरह कि जलमें जलडालदेने से एकरूप होकर जुदा रूप नहीं भासता इसीप्रकार राजा विष्णुभगवान् के रूप में अपने को अभेद जानकर जल के संमेलन के सदृश लीन होगया तब रानी श्रीविष्णुभगवान् से बोली हे महाराज! तुमने मेरे पतिको मारडाला तब विष्णु भगवान् ने रानी को समझाया कि हे मेरे रूप! राजा मोक्षहै क्या जन्म मरण से रहित हुआ है, तब रानी ने उत्तर दिया कि जिस तरह आपने मेरे पतिका नाश किया है उसीप्रकार से मेरा भी विनाश कीजिये क्योंकि पतिके विना स्त्री का जीवन निरर्थक व दोषयुक्त है तब विष्णुभगवान् ने कहा कि तुम स्त्री कहां हो जो कोई तुमको स्त्री कहता है वह बड़ा मूर्ख है इसलिये कि तुम

ने तो मुझको अद्वितीय और अभेद निश्चित कियाहै तब रानी ने पूछा कि हे विष्णुभगवन्! आपका स्वरूप क्या है, तब विष्णु भगवान् ने उत्तर दिया कि मैं सत्, चित्, आनंदस्वरूप होकर अद्वितीय व पूर्ण ब्रह्म हूं तब रानी ने पूछा कि हे महाराज! इस उपरोक्त अपने रूपके शब्दों का अर्थ मुझको समझाइये कि जिस से मुझे भी भासित होवे तब विष्णुभगवान् ने उत्तर दिया कि सत् उसको कहते हैं जो भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल में एक सा रहकर कभी नाशको न प्राप्तहोवे, और चित् उसको कहते हैं जो आप स्वयं प्रकाशवान् होकर सम्पूर्ण जीवधारियों को भी प्रकाशित करे, और आनंद उसे कहते हैं जो कि निरु-पाधि, निरतिशय, आनन्दस्वरूप होवे और जिसमें दुःख का लेशमात्र भी न होवे, और अद्वितीय उसको कहते हैं जो सजा-तीय, विजातीय, स्वगति भेद और द्वैतकी गंध से रहित होवे तब रानी ने कहा कि यह मैं पहिले से ही जानती थी कि आप नि-र्विकार हैं परन्तु अब आपके मुखसे श्रवण करने से यह और निश्चय हुआ कि सम्पूर्ण वैकारिक पदार्थोंका रूप भी आपही हैं क्योंकि यह जो रूप आपने वर्णन किया सो द्वैत सापेक्ष्यक है असत् के लिये सत् और जड़के लिये चैतन्य व दुःख के लिये आनंद है तब श्रीविष्णुभगवान् हँसकर बोले कि हे मेरे रूप! हमीं को ब्रह्म कहते हैं और सर्वरूप मेराही है तब रानी ने कहा कि हे भगवन्! आपका उपदेश अमृत है मैं आपसे भिन्न किञ्चित् पदार्थ नहीं जानती हूं तब विष्णुभगवान् ने कहा कि तुम मिथ्या भाषण करतीहो यदि केवल महींहों तब मुझको कौन जानताहै और मुझसे परे कौन है तबरानी ने उत्तर दिया कि यदि जानना आप में नहीं है तब न जानना भी आप में नहीं है अर्थात् केवल एक आपही हैं तब विष्णुजीने कहा कि यदि संसार का आदि अंत, मध्य मैंही हूं और सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों के उत्पत्ति, पालन और नाशका कारण भी मैं ही हूं और मुझसे अतिरिक्त

किंचित् पदार्थ नहीं है तब तुम क्या हो तब रानी ने कहा कि आपमें भी तो पूर्णदृष्टि नहीं है यदि आपमें पूर्णदृष्टि होती तो आप द्वैतभाव कदापि सिद्ध न करते अब आप जो अपने को सर्वरूप वर्णन करते हैं वह सर्वरूप क्या है कृपापूर्वक सविस्तर वर्णन करके मेरे संदेह को निवृत्त कीजिये तब विष्णुभगवान् ने कहा कि अब इससे आगे वचन नहीं है तब रानी ने कहा कि इसी बुद्धि से हमारे पतिका विनाश किया है अब हमारे प्रश्न का उत्तर देकर मेरी संदेह निवृत्त कीजिये तब विष्णुभगवान् ने रानी को समझाया कि तुम्हारा वचन हँसने के योग्य है पहिले तो तुम कहती थीं कि मुझ में वचन की शक्ति नहीं है और अब कहती हो कि हमारे प्रश्न का उत्तर दीजिये तब रानी ने कहा कि मैं अपने रूपको नहीं जानती हूं कि मेरा रूप क्या है तब श्री विष्णुजीने कहा कि तुम्हारे इस वार्तालापसे निश्चय होता है कि तुम मुझसे परेहो तब रानी ने कहा कि पर और अपर मुझ में कुछ नहीं है मैं केवल एक आत्मस्वरूप हूं तब विष्णुभगवान् ने उत्तर दिया कि हे मेरे स्वरूप! इतना वचन मत कहो जिसको आत्मस्वरूप प्राप्त होता है वह आप नहीं रहता और वह अहंकार से रहित होजाता है जैसे लोक में यदि किसी के पास कुछ पदार्थ रहता है तब उससे कोई पूछे कि तुम्हारे पास किञ्चित् पदार्थ है तब वह कहता है कि मेरे पास किञ्चित् भी नहीं है इसी तरह छिपाता है परन्तु तुमको जो हमारा रूप प्राप्त हुआ उसको तुम वारंवार अपने मुखसे उच्चारण करती हो यह बड़े आश्चर्य की बात है। इस वचन को अपने हृदय में विश्वास करके निश्चय मानो कि यदि मैं हूं तब तुम नहीं हो और यदि तुम नहीं हो तो चित्तको भ्रम में फंसाती हो चुपरहो इससे अधिक बोलने की अब कुछ आवश्यकता नहीं है आत्मज्ञान से तृप्त होवो कि विचार के विना और कोई वस्तु सुखदायक नहीं है जब इतनी वार्ता होचुकी तब धर्मराजने यम किंकर से कहा

कि जो पुरुष कालके भयसे रहित होने की इच्छा करे वह श्री विष्णुजीको अभेद जाने और भ्रमरूपी अहंकारको त्याग देवे और जिसके हृदय में पूर्णरूपसे यह ज्ञान प्राप्त होगया है उसको यमराज के त्राससे किञ्चिन्मात्र भी भय नहीं प्राप्तहोता इस प्रकार राजा का इतिहास सुनकर विष्णुभगवान् रानी से बोले कि यह दृढ़ विश्वास करके समझो कि मैं सर्व व्यापी हूं मुझसे भिन्न कोई पदार्थ अथवा स्थान नहीं है तब यम किंकर ने कहा कि हे महाराज! इस इतिहासके सुनने से अभी मेरी प्रत्याशा पूर्ण नहीं हुई इससे कृपा पूर्वक इसको विधिपूर्वक समझाइये कि जिससे मेरी आशा पूर्ण होवे तब धर्मराजने कहाकि इसके सुनने से तुम्हारा क्या अभिप्राय है तुम आनंद पूर्वक भजन करो कि जिसके करने से चित्त शुद्ध होकर निर्मल होजाओ भजनके प्रताप से अन्तःकरण निर्मल होता है इसलिये कि इसके कथन करने से तीनों लोक नाश होते हैं अब तुमको स्वर्ग नरक की कुछ वार्ता पूछने की इच्छा होवे तो हम वह भी तुमको सुनावें तब यम किंकरने उत्तर दिया कि जैसे कोई पुरुष मछली को जलसे निकाल कर दूधकी नदी में डाल देवे तो वह दूधकी नदी उस मछली को किञ्चित् भी सुख देनेवाली न होगी बरन उस मछली को जलके बिछुरने से अत्यन्तक्लेश प्राप्तहोगा अर्थात् जिसको जिस वस्तु की चाह होतीहै वही उसको सुखदायक होतीहै और अनवाञ्छित पदार्थ यदि अमृत के तुल्य होवे तो भी उसकी दृष्टिमें हलाहल के तुल्यहै हे महाराज! मेरी तो इच्छाहै कि आत्मस्वरूपको प्राप्तहोऊं परन्तु कथन करतेहैं कि तुम स्वर्ग, नरक की कुछ वार्ता पूछो वह हम तुमको समझावें मेरी इच्छाके प्रतिकूल आपमुझसे वार्तालापकरतेहैं इससे मुझे निश्चयहोता है कि केवल मूर्खोंके ही मोहनेके लिये तुम धर्मराज और मैं किंकरहूं यह केवल भ्रममात्र मिथ्या से कल्पितहै कि हम भी कुछहैं तब धर्मराजने कहा कि तुमको हमसे डरना चाहिये मूर्खो (तो-

करों) को स्वामी के साथ बराबरी करना यहकर्म अति अनुचि-
तहै तब किंकर ने उत्तर दिया कि आप मेरे स्वामी और मैं आप
का दासहूं इससे यदि आप मेरे स्वामीहैं तो महाराजा का इति-
हास मुझे पूर्ण रीति से ज्ञानकराइये कि जिससे मेरे चित्तका
भ्रम निवृत्तहोवे मैंने कुछ सूक्ष्म रूपसे थोड़ा सा तुमको उपदेश
दिया कि जिसके श्रवण से तुमको यह निश्चय हुआ कि धर्म-
राज नहींहै यदि हम इसको विस्तारपूर्वक तुमसे कथन करेंगे
तब तुमको पूर्णरूप से यह प्रतीत होजायगा कि यह तीनों लोक
केवल कथनमात्रहैं और नीतिशास्त्रमें भी लेखहै कि राजाको
नोकरों के साथ विवाद करना उचित नहींहै हे किंकर ! चौरासी
लाख नरक और चौरासी लाख स्वर्ग ये सब मेरे आधीनहैं इसमें
से तुमको जिस स्थानकी इच्छा होवे वह मांगो हम तुमको तुम्हारी
इच्छानुसार देसक्ते हैं तब यम किंकर ने कहा कि हे प्रभो ! स्वर्ग
और नरक यह दोनों स्थान केवल अभिमान मात्र भ्रमरूप हैं प-
रन्तु श्री विष्णुभगवान् से अतिरिक्त कोई स्थान नरक स्वर्ग कहीं
नहीं है अब यदि आप मुझपर दया रखते हैं तो कृपापूर्वक उस
राजा का वृत्तान्त कथन कीजिये तब धर्मराज ने कहा कि अब
अपने काम में प्रवृत्त होवो और अपने कार्य के निमित्त जो कुछ
पूछो वह हम तुमको सुनावैं परन्तु जो तुम राजाका वृत्तान्त
पूछते हो यदि यह वार्ता हम तुमसे यथावत् वर्णन करेंगे तो
उसके सुनने से तुम्हारे हृदय में जो यह छोटे बड़े अर्थात् नीच,
ऊंचका अभिमान है वह बिलकुल नाश होजायेगा, हे किंकर !
वह राजा मुक्त होगया यदि तुम वैसे न हुये तो दोनों ओर से
जातेरहे इससे तुम श्रीगोविंदजी को शुद्धस्वरूप अभेद समझो
कि जिससे तुमभी शुद्धहोकर अपने इष्टस्वरूपको प्राप्त होजाओ
यदि तुम निर्मल नहीं हो तो मेरे कथन से तुमको कुछ भी लाभ
नहीं होसक्ता, यदि पुरुष विचार न करे तो ब्रह्मा व विष्णुके उप-
देश करनेसे भी कदापि मुक्त नहीं होसक्ता उनके उपदेश से उस

पुरुषको कुछ लाभही होसक्ताहै और जो पुरुष अहङ्कारको त्याग करके यह निश्चयकरताहै कि मैं और यह सम्पूर्ण जगत् आत्मा ही है आत्मा से भिन्न कुछभी नहीं है वही पूर्ण मुक्त है और यदि गोविन्द और उस सन्तकी समता करे तो मिथ्या है यह केवल भ्रममात्र है श्रीगोविन्दजी उत्पत्ति, स्थिति और लय इन स्वभावों से युक्त हैं और वह सन्त निर्विकार है तब किंकर ने फिर भी प्रार्थना की कि हे महाराज ! आप निर्मल और अशुद्ध इन दोनों वस्तुओं के झगड़े को छोड़कर उस राजाका इतिहास मुझको श्रवण कराइये इस के श्रवण करने की मुझको बड़ी अभिलाषा है कि जिससे गोविन्द के वचन को सुनके मैं मुक्त होजाऊं मैं शुद्ध और अशुद्ध इन दोनों से रहित होना चाहताहूं इस वार्ताको सुनके धर्मराज ने उत्तर दिया कि यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो ध्यान लगाकर श्रवण करो मैं तुमसे इस इतिहास को यथार्थ वर्णन करता हूं ॥

राजा शिखण्डध्वज की कथा प्रारम्भ ॥

उस राजाने कहा कि हे विष्णुभगवान् ! हम नहींहैं जो कुछ हो सो आपही हो अर्थात् आदि, मध्य और अन्त सब आपही हो तब श्रीविष्णुभगवान् ने कहा कि यदि सम्पूर्ण पदार्थों का आदि, अन्त और मध्य मैं ही हूं तब तुम क्या वस्तुहो और तुम से क्या प्रयोजनहै तब राजा ने कहा कि यह जो कहा है सो बुद्धिने कहा है और आप के दर्शन से हमारे " हं, मम " अभिमान का नाशहुआ यदि हम न रहा हो तब क्या कहूंगा जो कहते हो सो आपही कहते हो श्रीविष्णुजी ने कहा कि तुम जो कुछ चाहो वह वरदान मुझसे मांगलो मैं तुम को दूंगा तब राजा ने कहा कि तुम्हारे विना मैं तुमसे क्या मांगूं हमारे मन में तो आपही हैं आप से अतिरिक्त कोई पदार्थ किञ्चिन्मात्र भी नहीं है यदि आप मुझपर दयालु हैं तो यही वरदान दीजिये

कि मेरी बुद्धिमें आपसे अतिरिक्त कुछभी निश्चय न भासे और न मेरे नेत्रोंसे सिवाय आप के कोई वस्तु दर्शित होवे—तब श्री गोविन्दजी बोले कि जब समस्त कामनायें तुम्हारी नाशको प्राप्त होंगी तब तुम्हारी स्वयंअभेददृष्टि होजावेगी क्योंकि कामना ने ही बुद्धिको आवरण किया है जब कामना नाश होजावेगी तब स्वयं आत्मस्वरूप होजावोगे तब राजा से कहा कि हे महाराज! अब आप दयाकरके कामना से निवृत्त होनेका उपाय भी मुझ को सुनाइये तब श्रीविष्णुभगवान् बोले कि अपने को ईश्वर से भिन्न न समझना यह कामना से निवृत्त होने का सरल उपाय है और लोकमें भी प्रसिद्ध है कि जब कोई किसी के साथ प्रीति करता है और दूसरा कोई पुरुष उन प्रीतिमान् पुरुषों की प्रीति व सङ्गति के छुड़ाने का यत्न करता है तो वे स्नेही पुरुष उसके रोकने को कुछ भी नहीं मानते न प्रीतिका त्याग करते हैं तो बड़े ही आश्चर्य्य की बात है कि हमारे साथ या पूर्ण में प्रीति करके अपने को भिन्न जानना और कामना को करना कब योग्यहै,यदि कोई मतिमन्द कहै या अपमान करे तो शोक न करे यदि कोई स्तुति,व मानकरे तब हर्ष न करे दोनों से रहितहोवे जो पुरुष इस अस्थि और चर्म के पिण्ड शरीर में अहङ्कार करताहै या यहसमझताहै कि यह देहहै व निन्दासे शोक और स्तुतिसे हर्ष करताहै उसको आत्मनेष्ठी नहीं कहतेहैं हेराजन्! तुम मुझसे ऐसीप्रीति करो कि जिसमें हं, त्वं, उपास्य, उपासक और दास व ईश्वरका भेदभाव न होवै जैसे आत्मा आकाशकी नाईं भीतर व बाहर सब स्थानों में व्याप्तहै इसीप्रकार आकाशसे गुप्त व प्रकट मुझको सब प्रकार पूर्णजानो,नाम और रूपसब मैंहीं हूं और भूत वर्तमान, भविष्यत् में भी मैं ही विद्यमानहूं जैसे कि फेन, तरंग, बुद्बुद जलसे भिन्न नहीं हैं इसी तरह चर और अचर संसार भी मुझ से भिन्न नहीं है यदि तुम कहो कि यथावत् निश्चय नहीं होता और कैसे होवे उचित है कि इन्द्रियों को विषयों से

निग्रह करने में यत्न करिके विषयों की प्रीतिको विषकी नाईं त्याग करके मुक्त होवो जीवनकी इच्छाको करिके मुझ से क्या परमात्मा से विमुख हुआ है और कामना के वश है जीवना सोई है जो हमारे चिंतवन में होवे, और जो पुरुष जन्म से लेकर मरण पर्यन्त द्रव्य, धन, धान्य के संपादन में यत्न करता है वह व्यर्थ जीवता है द्रव्य आदिकों की प्रीति केवल दुःख रूप है क्योंकि यह द्रव्य आदिकों की प्रीति अनित्य और सदा दुःख का कारण रूप है क्योंकि जब मनुष्यकी जीवनावस्था में किसी प्रकार से द्रव्यका नाश होजाता है अर्थात् चोरके चुरा लेने या राजा के डांड़ लेने से अथवा द्रव्य को छोड़कर पुरुषके मरजाने से या जिसी किसी प्रकार से द्रव्य का वियोग होता है इसीसे दुःखरूप है इससे इसको अनित्य व दुःखका कारण समझकर इसकी प्रीति व संपूर्ण सांसारिक कामनाओंका स्नेह भी परित्यागकरके मुझमें लय हो जिससे अनायास मेरा स्वरूप होजावो यह लोकमें प्रसिद्धहै कि यह काष्ठ इतने तक है जबतक कि अग्निको नहीं प्राप्तहोता और जब अग्निसे मिलगया तब अपने स्वरूपको त्याग कर अग्निरूप होजाता है हे राजन्! जब तुम अपने को मुझसे भिन्न जानोगे तो जन्म मरण के बंधन में सदा फंसते रहोगे और जब इस दुबिधाका परित्याग करके यह समझोगे कि एक चैतन्यही पूर्ण है तब निस्संशय मेरा रूप होजावोगे हे राजन्! जो कोई पुरुष मरने के भय और जीवनेकी इच्छासे एक क्षण श्री विष्णुका वचन कहता अथवा सुनता है और कहता है कि मैंने इतने समय तक गोविन्दका भजन किया और संपूर्ण दिन रात विषय परायण रहता है परन्तु हम विषय परायण हैं ऐसा किञ्चित् नहीं कहता। तुमको उचित है कि ऐसा मतकहो और सम्पूर्ण कामनाओं का परित्याग करके मुझको आकाशकी नाईं सब स्थानों में भीतर, बाहर व मध्यमें पूर्ण जानकर विचाररूपी नेत्रों से देखो कि कार्य व कारणरूप एक मैं ही हूं तुम कहांहो

यदि तुम नहीं हो तब श्रम काहेको करतेहो तब राजा ने कहा कि हम और भीतर बाहर व आपसे अतिरिक्त ये कहां हैं तब विष्णुजी ने कहा कि सर्व मैं ही हूं अतिरिक्त कहां है, तब राजा ने कहा कि क्या चिन्ता है यदि कामना है तो तुम्हीं हो यदि हम नहीं हैं तब मुझको भ्रम कहां है, तब विष्णु भगवान् ने कहा कि एक क्षण कामनाको त्याग करके हमारी शरणमें प्राप्त होवो और मुझसे अतिरिक्त किसी वस्तुको किंचिन्मात्र भी न समझो और निश्चय करलो कि यह संपूर्ण संसार गोविंदके ही प्रकाश से प्रकाशित है जैसे जलका तरंग केवल जलही है तैसे ही यह सम्पूर्ण स्थावर, जंगम जो दृश्यमान् है सब विष्णुही रूप है अरु तुम व्यर्थ इस मिथ्या संकल्प में फंसकर कदाचित् किसी क्षण में भी आत्मपरायण नहीं होते हो और यह देखते व सुनतेहो कि अमुक मरा और अपने हाथ से जलाते हो और विचार नहीं करते हो कि एकदिन हमारीभी यही व्यवस्थाहोगी। जो विषयी पुरुषों के साथ मेलकर यही निश्चय करता है कि जो पुरुष द्रव्य धनादिको अधिक संपादन करता है वह उत्तम है और वही बड़ा बुद्धिमान् है। निश्चित जानो कि जो पुरुष आत्मस्वरूप को साक्षात्कार करता है वही उत्तम है और वही बड़ा बुद्धिमान् है हे राजन्! तुमको बाह्यवृत्ति पुरुषोंका सत्संग उचित नहीं है तेज और ऐश्वर्य अपना आत्मस्वरूप की प्राप्ति से जानो और यह भी निश्चय करो कि आत्मस्वरूप मैं ही हूं और श्रुति स्मृति भी यही कहती है कि आत्मा तुम्हीं हो उस पुरुष को जिसे आत्म निश्चय हुआ है वह सांसारिक उपद्रवोंसे रहित होता है सोई प्राण सुफल है जो कहै कि श्रीनारायण गोविंदही है क्योंकि यह प्राण चिंतामणि है। हे राजन्! व्यर्थ कामना की कीच में न फँसो और वास्तव स्वरूप को प्राप्तहोकर भक्ति करो तब राजा ने कहा कि यदि हम किञ्चित् होवें तो भक्तिकरें और यदि हम किञ्चित् स्वरूप से भिन्नही न होवें तो

भक्ति कौन करे तब श्रीविष्णुजी ने कहा तथापि भक्ति उत्तम है क्योंकि यह अपने से भिन्न न देखना अभेद भक्तिहै ॥ तब राजा ने कहा कि हे भगवन् ! आपके वचन से बड़ा आश्चर्य होताहै काहेते कि यदि आप होता है तब कर्म करता है और जो भगवत् से भिन्न नहीं है तो कर्म कौन करे तब श्रीविष्णुजीने कहा कि हे राजन् ! भक्ति तीन प्रकारकी है अर्थात् उत्तम, मध्यम और अधम. प्रतिमाका पूजना और एक व्यक्तिको ईश्वर मानना अधम भक्ति है और ईश्वरसे भिन्न अपने को उपासक जानकर भजन करना मध्यम भक्ति कहलाती है और परमेश्वर से अतिरिक्त कुछ भी न जानना और ज्ञानके बिना और कर्मकी इच्छा न करनी, व अद्वैत दृष्टि से रहित होना यही उत्तम भक्ति कहलाती है। ऐसी भक्ति न करे कि भक्ति को और आपको भिन्न जाने यह उत्तम भक्ति नहीं है इसको दम्भकहते हैं तब राजा ने कहा कि हे भगवन् ! जब सर्वमय तुम्हीं हो तो हम कहां हैं जो भक्ति करें, तब विष्णुभगवान् बोले कि हमही हैं भक्ति भी हमही करेंगे क्योंकि अब हमारी इच्छा संसार रचनेकी हुई है निश्चय करके जानो कि सर्व कर्म मुझी से उत्पन्न हुयेहैं द्वितीय वस्तु किञ्चित् नहींहै मैंही भक्तिहूं और मैं आपही भक्ति करूंगा क्योंकि कर्त्ता एक मैंही हूं। हे राजन् ! तुम भक्तिको करो यहही परमानन्दरूप है तब राजा ने कहा कि यदि तुम्हीं हो भक्ति न करूंगा तो क्या होगा, तब विष्णुजी ने कहा कि भक्तिके बिना सुख नहीं होता तब राजाने कहा यदि एक अद्वितीय आपही हो तब दुःख सुख कहां है। तब श्रीविष्णुभगवान् ने उत्तर दिया कि दुःख व सुख केवल भक्ति कराने के लियेहै यदि भक्ति न करोगे तो दुःखव सुख को प्राप्त होवोगे ! तुम कहां हो एक मैंहीं हूं तब राजानेकहा अब हमारा भ्रम नाश होगया क्योंकि मैं नहीं हूं आप हीहो तब श्रीविष्णुजी बोले कि यही भक्तिहै ? तब राजाने कहा कि बिना दास्यके भक्ति नहीं होती और मैं आपके बिना कुछभी

नहीं देखताहूं मैं बड़े आश्चर्य्य मेंहूं कि भक्ति कौनकरे तब श्रीभगवान्जी बोले कि विना दास्यके अभेदभक्ति है तब राजाने कहा कि आपका वचन अनन्त है जो मैं कहताहूं कि विना दास्य के भक्ति कौन करे। आप कहते हो कि अभेदभक्ति है यह आप का सिद्धान्त हमारी बुद्धि में नहीं आताहै, हे भगवन्! इस संसार रूपी बन्धनसे कैसे मुक्तहोवें वह उपाय कहिये और बड़ा आश्चर्य है कि यदि मैं नहींहूं तब क्या मुक्तहों और क्या मुक्तका उपाय करों तब विष्णुभगवान्जी ने कहा कि यदि मैंही हूं अर्थात् आपही आपको उपदेश करताहूं तो उसपुरुषको जिसको जीवन्मुक्ति प्राप्तहुई होवे ऐसा योग्य नहीं है कि भक्तिका त्यागकरे इतना कहके विष्णुभगवान् अन्तर्द्धान होगये जब राजा ने देखा कि विष्णुभगवान् अन्तर्द्धान होगये तब निश्चय किया कि मैं और यह जगत् अद्वितीय विष्णुरूप है इसमें किञ्चित् भेद नहीं है॥ राजा शिखण्डध्वज का इतिहास समाप्त हुआ॥

अथ यमकिंकर का इतिहास प्रारम्भ।

धर्मराज ने कहा कि हे यमकिंकर! यदि तुमको सिद्धान्त अद्वैतनिष्ठा इस इतिहास का ग्रहण हुआ है तो अपने स्वरूप को अनायास प्राप्त होगे तब यमकिंकरने कहा कि मनकी स्थिति स्वरूप के प्राप्त होनेके बिना दुस्तर है क्योंकि वाक्यसे श्रीवासुदेव नारायणका नाम उच्चारण करताहूं और मन पाप पुण्यमें विक्षिप्त है सो भजन नहीं है जो पुरुष कामना व कर्म और फल की इच्छा से रहित हुआ है वह आत्मस्वरूप को प्राप्त होय तो होय। हे राजन्! अब कहिये मैं क्या हूं और मेरा रूप क्या है तब धर्मराज ने उत्तर दिया कि अब हम तुमको फिर भी समझाते हैं कि यह प्रश्न हम से न करो श्रीगोविंद भगवान् की मुझको आज्ञा है कि न्याय करो यह आज्ञा नहीं है कि वेदान्त उपदेश करो यदि मैं इस आज्ञाका उल्लंघन करूंगा तो मुझको

अनिष्ट होगा इसी वार्त्तालापान्तर में वसिष्ठ मुनि भी आ पहुँचे जो कि तेज व प्रकाश में द्वितीय ब्रह्मा के समान दिखाई देते थे कि जिनके शिरादि सर्व अंग रोम रहित थे और जिनके नेत्रोंका प्रकाश सूर्य के समान रक्तवर्ण भासित होता था मृगचर्म कांधे-पर ओढ़े व दोनों हाथों में दण्ड कमण्डलु धारण किये हुये नारायण का नाम उच्चारण करतेहुये प्रातःकालके सूर्यके समान प्रकाशवान् रूपसे आपहुंचे कि जिनको देखकर यमपुरीकी सभा ने उठकर प्रणाम करके पूजाकी तब यमकिंकर ने धर्मराजसे पूंछा कि हे महाराज! आपने जो कथन किया कि अज्ञानी व अशुद्ध मनको स्वरूपकी प्राप्ति दुस्तर है और शुद्ध मनको सुगम है इससे मुझको यह संदेह हुआ कि शुद्धी और अशुद्धी क्या वस्तु है और वह किसमें है इसका भेदभी कृपा पूर्वक समझाकर इस मेरे सन्देह को भी निवृत्त कीजिये तब धर्मराजने उत्तर दिया कि इन शुद्धी और अशुद्धी दोनों वस्तुओं का अधिष्ठान आत्मा है इस वचनको सुनकर पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी! धर्म के इस वाक्यको सुनकर यमकिंकर को धैर्यहुआ परन्तु विलम्ब के पश्चात् उस किंकरने यह प्रश्न किया कि हे महाराज! आत्मा क्या वस्तु है पुरुष है अथवा स्त्री है तब वसिष्ठजी ने उत्तर दिया कि यह प्रश्न तुम्हारा सत्य है अर्थात् आपहै तब द्वितीय भी है यह मनवाणी का विषय नहीं है जब वचन अर्थात् शब्द होनेसे द्वैत प्राप्तहोता है यदि द्वितीय नहीं है तो आपही कहां है इस वचन के श्रवण करने से यमकिंकर के सम्पूर्ण संशय निवृत्तहुये और अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्तहुआ तब धर्मराज ने कहा कि यह सब पद आत्मासेही सिद्ध होतेहैं क्योंकि प्रकाशक आत्मासे भिन्न कोई दूसरा पदार्थ नहीं है और आत्मा हं, त्वं, एक, दो इन शब्दों की प्रवृत्ति से रहित है तब वसिष्ठजी ने कहा कि यदि आत्मा में शब्दकी प्रवृत्ति नहीं है तब आत्मा व परमात्मा कैसे कहेजाते हैं तब धर्मराज मौन होगये और

वसिष्ठ महर्षिजी ने यमकिंकर को उत्तर दिया कि जो तुम्हारा प्रयोजन होवे वह हमसे पूछो इसी वार्त्तान्तर में गौतम ऋषीश्वर और याज्ञवल्क्यजी दोनों आ पहुँचे तब गौतमजी ने पूछा कि हे वसिष्ठजी ! प्रथम तो आप यह बतलाइये कि मेरा स्वरूप श्वेत व श्याम दो रंगों में से किस प्रकार का है तब वसिष्ठजी ने उत्तर दिया कि मैं नहीं जानताहूं कोई श्रोता भी है, द्वैतकी मुझमें प्राप्ति नहीं इससे क्या कहूं और किससे कहूं तब गौतम ने कहा कि तुमको वक्ता और श्रोता कैसे दिखाई देताहै इस भेदको मैं नहीं जानताहूं क्योंकि यह आपही आप है तब वसिष्ठजी ने कहा कि यदि वक्ता व श्रोता नहीं है तब तुमने किस तरहसे सुना तब गौतमजी मौनहोरहे और याज्ञवल्क्यजी बोले कि सर्वोपरि सिद्धान्त एक वाक्य यह है कि एक अद्वितीय आत्मा है और आत्मा से अतिरिक्त जो पदार्थ दिखलाई देताहै वह भ्रममात्र है तब यमकिंकर ने कहा कि मैं अबतक सत्य असत्य नहीं जानताहूं कि यह क्या चीज़है इस से निर्णय करके मुझे समझाइये तब याज्ञवल्क्यजीने कहा कि जिससे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति, लयहोती है उसको सत्य जानो तब किंकर ने कहा कि तरङ्ग जल से उत्पन्न होताहै परन्तु बुद्धिमान्लोग उस को जलसे किञ्चित् भिन्न नहीं जानते तैसेही यह सम्पूर्ण संसार सत्य से उत्पन्न होताहै और सत्यरूपही है आप इसको असत्य कैसे कहते हैं तब याज्ञवल्क्यजी ने कहा कि तुम अज्ञानरूपी बन्धनमें फँसेहो अभीतक तुमको ज्ञान नहींहुआ, तब किंकरनेकहा कि न मैं ज्ञानी हूं न अज्ञानी यह सम्पूर्ण तुम्हीं हो याज्ञवल्क्यजी ने कहा कि यदि तुम हमको भिन्न नहीं जानतेहो तो मुझमें ज्ञान, अज्ञान काहेको सिद्ध करतेहो तब तो किंकर अवाक् होगया व उसी समय व्यासजी आ पहुंचे और बोले कि जो पुरुषसंसार से मुक्त होनाचाहे वह गोविन्द की भक्तिकरे तब याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि मुक्ति योगसे होती है तब व्यासजी ने कहा

कि जिसकी मुक्ति हुई है भक्ति सेही हुईहै भक्ति का त्यागनहीं होता है काहेसे कि भक्ति से कामना नाश होती है तब याज्ञवल्क्यजीने पूछा कि आत्मा एक है या दो तब व्यासजीने कहा अद्वितीय आत्मा एक है और कहां है जो दो होवें तब याज्ञवल्क्य जीने कहा कि मुझको एकबार कहने से निश्चय नहीं होती है क्योंकि यदि एकहै तो एक साधन से साक्षात्कार क्यों नहीं होता कोई योगमें प्रवृत्त है कोई जपमें कोई कर्ममें इससे हम किसप्रकार निश्चय करें यदि एक होता तो भिन्न २ साधनों में क्यों प्रवृत्त होता तब वसिष्ठजीने कहा कि हे याज्ञवल्क्य इसका विवरण मैं तुमको सुनाता हूं ध्यान से सुनो और निश्चय करो कि सम्पूर्ण कर्म एक क्रियासे और एक कर्त्तासे सिद्धहोतेहैं सो कर्त्ता आकाशवत् पूर्ण और शरीर मृदंगवत् नाना तैसेही जब योगकरता है तब आपही है और जब भोग करता है तबभी आपही है यह केवल द्वैत रूप उपाधिके भेदसे भिन्न भिन्न दर्शितहोताहै वास्तव में एकही है शरीर उपाधियों से युक्तहै इससे साधना भी भिन्न२ हैं, शरीर उपाधि से भिन्न होनेपर एकही उपासना से मुक्तहै जैसे जलका एकही स्वरूपहै वह मीठे और खट्टे वृक्षों में पहुंचकर मीठे और खट्टे स्वादु को प्राप्त होजाता है लेकिन अपने स्वरूप को कदापि नहीं बदलता तब याज्ञवल्क्यजीने कहा कि योगसे श्री गोविन्द में प्राप्त होताहै, तब वसिष्ठजीने कहा कि सत्य ऐसेही है परन्तु जब योग से उत्थान होता है तब मन अनेक प्रकार फैलता है और महा दुःख को प्राप्त होताहै और ज्ञान योग ऐसा योग है कि यह खाने, बैठने और चलने में सदा एकही तरहका बना रहता है क्योंकि यह तत्त्वाभिमान से रहित होता है तब याज्ञवल्क्यजी ने पूछा कि जो पुरुष शरीरका कर्म नाशकरताहै उसका शरीर यथावत् नहीं रहता है तब वसिष्ठजी ने कहा कि विद्वान् का शरीर केवल दर्शन मात्र है शरीर उसको नहीं देखता जैसे जली हुई रस्सी का स्वरूप देखने मात्र है यदि उससे कोई

काम कराना चाहे तो कुछभी नहीं होसक्ता तैसेही आत्म ज्ञानी का शरीर है तब याज्ञवल्क्य जीने कहा कि तुम्हारा नाम योग-वासिष्ठ है इससे तुमको उचित है कि योग को स्थित करो तब वसिष्ठजीने कहा कि हम क्याकरें जो पुत्रहमारे योगको नहीं मानते हैं तब याज्ञवल्क्यने कहा कि तुमको पुत्रों से क्या प्रयोजन है तुम आप मानो तब वसिष्ठजीने कहा जानता हूं मैं कि अभि-मान मात्र है और मिथ्याहै फिर हम असत्य को क्या मानें तब याज्ञवल्क्यजीने कहा कि तुम्हारे कहने से मुझको भ्रम उत्पन्न होता है इससे पहिले यह बतलाइये कि योग को हमने उत्पन्न किया है या सनातनहै तब वसिष्ठजीने कहा कि यह सत्य है कि इसको तुम्हीने कल्पित किया है विचारकरो तो जो योग कर्म होताहै उसे कर्त्ताही करताहै यदि कर्त्ता न करे तो कर्म किसतरह और कहां होसक्ताहै तब याज्ञवल्क्यजीने कहा कि तुम पक्षपात से योग को खण्डन करके ज्ञानको स्थापित करतेहो तब वसिष्ठ जीने पूछा कि अपना और अतिरिक्त मुझमें कहां है परन्तु इन दोनों में से जो सत्य हो उसीको हम मानते हैं यदि योग है तो भी शुभहै परन्तु ज्ञान तो स्वतः सिद्धहै और योग कर्त्ता के करने से सिद्ध होता है इससे अनित्यहै तब याज्ञवल्क्यजीने कहा कि इनदोनों में कौन पदार्थ सत्यहै तब वसिष्ठजीने कहा कि आत्मा सत्य है तब पराशरजीने कहा कि हे मैत्रेयजी! मैंने उस सभा में जाकर कहा कि यह सर्व नहीं है केवल एक मैंही हूं तब वसिष्ठ जीने कहा कि तुम ऐसा मत कहो, तब मैंने कहा कि मैं इसीलि कहताहूं कि एक अद्वितीय मैंहीहूं द्वैत मुझमें कुछभी नहीं है तब वसिष्ठजीने कहा कि किस महात्मा के सत्संग से तुम्हारी भेद दृष्टि नाश हुई है तब हमने कहा कि द्वितीय कहांहै जिससे कि मैं संगकरूं असङ्ग केवल एक मैंहीहूं तब याज्ञवल्क्यने कहा कि योग करनेवाला मुक्त है अभेद दृष्टि योगसे होती है तब मैंने कहा कि तुम्हारी भाग्य में योग होवे परन्तु मुझको योगकी इच्छा

नहीं है क्योंकि मैंने एक समय विष्णुभगवान् से कहाथा कि तुम योग करो जिसके करनेसे विष्णुपदसे भी अधिक उच्चपद तुमको प्राप्त होवे तब विष्णुभगवान् बोले कि मुझमें न्यूनाधिक्यकी प्राप्ति नहीं है और न सजातीय विजातीयका भेदहै और मैं सुगति भेद से रहित एक अद्वितीय हूं विष्णुजी के इसवाक्यको श्रवणकर के मेरी योग बुद्धि नाश होगई और यह ज्ञान भासित हुआ कि यदि ज्ञान सत्य होता तो स्वतः क्यों न होता यह तुम्हारा कर्म कर्ता से धीरे धीरे होता है हे याज्ञवल्क्यजी ! अब आप योग व भोग को त्यागकर यह बतलाइये कि तुम्हारा स्वरूप क्या है तब याज्ञवल्क्यजीने उत्तर दिया कि मैं प्राचीन योगी हूं तब मैंने कहा कि तुम प्राचीन योगी हो सो तो मैंने जाना परन्तु अब यह बतलाइये कि तुम्हारा स्वरूप क्या है तब याज्ञवल्क्य जीने कहा कि बड़े आश्चर्य की बात है कि मैं क्रिया पूर्वक पूरक, रेचक, और कुंभक करताहूं परंतु आपको नहीं जानता हूं कि मेरा स्वरूप क्या है तब मैंने कहा कि जो स्वरूप के प्राप्त होने की इच्छा होवे तो योग को त्याग और कुछ मत करो और जो हम कहते हैं उसको सत्य समझ के निश्चय करो तब तुमको स्वरूप का ज्ञान प्राप्तहोगा तब याज्ञवल्क्य ने कहा कि श्रवण, मनन, निदिध्यासन इनका भेद साक्षात्कार मुझको अच्छी तरह से समझाइये तब मैंने कहा कि गुरुशास्त्र द्वारे सत्य शास्त्र को श्रवण करना यही श्रवण है और श्रवण को वेदान्त युक्ति से और अपनी (उहापोः) अर्थात् शंका निवृत्तिकरके बारंबार विचारना मनन है विचार करके जो सिद्धान्त जीव ब्रह्म की एकान्तताका निश्चय हुआ है ब्रह्माकार वृत्ति चित्तको एकाग्र करके बारंबार करनी निदिध्यासनहै और निश्चय दृढ़ संशय, असंभावना वि-परीत भावना से रहित होता है तब साक्षात् कार होता है यथा-वत् स्वरूप को जानताहै जैसे प्रह्लाद को पिता ने अत्यंत कष्ट दिया और प्रह्लाद ने अपनी निश्चय का त्याग नहीं किया इसी

तरह जो पुरुष निश्चय करता है उसको ऐसा फल होता है और उसकी जिस तरफ दृष्टि पड़ती है उसके चित्त से स्त्री पुरुष के भेदका भान दूर होकर दशोंदिशा और दिनरात्रि सर्वमयी केवल गोविन्दही गोविन्द दृष्टि पड़ताहै हे याज्ञवल्क्यजी! यदि तुमको स्वरूप प्राप्त होने की इच्छा है तो योग को त्याग करो और गोविन्द में लय होजाओ, तब याज्ञवल्क्यने उत्तरदिया कि नाम रूपको प्राप्त हुये जो गोविन्द हैं उनको किस प्रकार देखूं तब हमने कहा कि किसी प्रकार भेद श्री गोविन्दजी में मत समझो जब मनुष्य व तिर्यगयोनि आदि भिन्न भिन्न रूपों में अभेद दृष्टि करोगे तब एक परमेश्वर ही लखाई पड़ेगा जैसे यद्यपि स्वर्ण के भूषण भिन्न भिन्न नामों से प्रकट हैं परन्तु वास्तव में एक स्वर्ण ही है जैसे अनेक वृक्षों के अनेक नाम रूप हैं परन्तु वास्तव में काष्ठ एकही है तैसेही यह सर्व द्वैत दृश्य है केवल एक गोविन्द ही अद्वितीय और आदि, मध्य और अंतमें एकही है तब याज्ञवल्क्यजी मौन होकर अवाक् रहगये जैसे नदी में पूरआने पर कूप गढ़ा व नाला क्योंकर बचसक्तेहैं अर्थात् सम्पूर्ण लयको प्राप्त होजाते हैं तब गौतमजी बोले कि मुक्त होने का एक यही उपाय है कि श्री नारायण, नारायण मुखसे सदा उच्चारण करके उन्हीं के भजनमें मग्न रहे अर्थात् वारवार नारायण, नारायण मुखसे कहाकरे इसीको मुख्य भजन समझो तब मैंने कहा कि नारायण नारायण तो सब कोई कहता है परन्तु सुख नहीं मिलता नारायण को भिन्न जानना अभेद भजन नहीं है, श्रीनारायण मुखसे न कहे अरु अभेद जाने इस शरीर का आसरा श्री नारायण ही हैं, परन्तु यह भी कहते नहीं बनता क्योंकि नारायण अद्वितीय हैं और जो वस्तु अद्वितीय है उसका आसरा क्योंकर करे, तब वसिष्ठजी ने कहा कि ऊर्ध्व, अधः और गुप्त, प्रकट सब स्थानों में नारायणही हैं मैं कहता हूं कि वेसदा स्वतः मुक्त हैं तब गौतमजीनें कहा कि मेरी इच्छा है कि मैं अब संन्यास को त्यागकरके

विरक्त होजाऊं फिर मैंने कहा कि विरक्त उसे कहते हैं कि जो किसी से प्रीति न करे, अरु तुमतो संन्यासको त्याग करके विरक्त होतेहो, तब तुम विरक्त नहीं हुये क्योंकि तुम एकको छोड़ते और द्वितीय को ग्रहण करते हो और विरक्त उसको कहते हैं जो संन्यास को त्यागकर किञ्चित् पदार्थ का ग्रहण न करे, तब गौतमजी ने कहा कि विरक्त लोग कमंडलु मृगछाला और मेखला आदिक रखते हैं उन्हीं की तरह मैं भी विरक्त होऊंगा तब मैंने कहा कि तुम्हारी बुद्धि हँसने के योग्य है, भला विरक्त को इन सम्पूर्ण वस्तुओं से क्या प्रयोजन है जो पुरुष अभिमान मात्र से रहित है उसी को विरक्त कहते हैं तब याज्ञवल्क्य जीने उत्तर दिया कि प्राणायाम करना योग है बिना योगके मुक्ति किसतरह होसक्ती है और यह सम्पूर्ण योगीन्द्र व मुनीन्द्र भी योगही मुक्त हुये हैं तब व्यासजी ने पूछा कि प्राणायाम कितने प्रकार से करना चाहिये, तब याज्ञवल्क्य ने कहा कि प्राणायाम पूरक १ कुम्भक २ रेचक ३ प्रकारका है जब यह सिद्ध होताहै तब अन्तष्करण सम्पूर्ण वासनाओं से रहित होकर शुद्ध होताहै तब व्यासजीने कहा कि अनेक योगी मरे और उनके शरीर में भी चर्म, मांस, अस्थि सम्पूर्ण शरीरों की नाईं दिखलाई देतेहैं फिर योगी किसप्रकार शुद्धि करते हैं हे याज्ञवल्क्यजी! भक्ति के बिना और किसीप्रकार से सुखनहीं मिलताहै, गोविन्दजीकी भक्ति करनेसे गोविन्दही का रूप होजाताहै जिसतरह नदी में किसी बहतेहुये पुरुष को देखकर नदी के तीर पर खड़ा रहनेवाला पुरुष उस बहतेहुये से कहताहै कि तुम अपना हाथ मुझे पकड़ा दो तो मैं तुमको नदीमेंसे निकाल लूं परन्तु वह नहीं मानताहै और जलप्रवाह में डूबताहै तैसेही गोविन्द भगवान्ने भी वेदान्तमें अपनी भक्ति उपदेश की है कि संसारमें हमारे बिना किञ्चित् पदार्थ नहीं है अर्थात् मैं सब में व सर्वत्र निरन्तरसबमें विद्यमान् रहताहूं इसीनिश्चयको भक्तिकहते

हैं और इसीभक्तिसे आत्मज्ञान को प्राप्त होकर चिन्ता से रहित होताहै इसी भक्ति उत्कृष्ट अर्थात् उत्तमहै योग से अशुद्धहोता है और श्रीगोविन्दकी भक्तिसे गोविन्द रूपहोजाताहै तब याज्ञवल्क्य जीने पूछा कि यदियोग न करे तो भीतरदृष्टि किसप्रकार फैलसक्ती है तब व्यासजीने उत्तरदिया कि जब तुम भक्ति करोगेतभी भीतर दृष्टि फैलकर प्रकाशित होगी योग के करनेसे हृदय में अन्धकार रहता है क्योंकि जब योग करताहै और बुद्धि से सम्पूर्ण अंडको देखताहै तब सिवाय चर्म, मांस, मज्जा के सिवाय और कुछ दृष्टि नहीं आता भीतर दृष्टि उसकी हुई है जिस मनसे गोविन्द के बिना किञ्चित् नहीं है इसीको दिव्यदृष्टि कहते हैं जो पुरुष विद्यमान् और भविष्यत के व्यवहार को देखे और कहै उसको कालदृष्टि कहते हैं दिव्यदृष्टि उसीकी है जो भगवान् को जाने हे याज्ञवल्क्यजी ! योग से भीतर नेत्र कैसे खुले हैं क्योंकि भगवान् से अतिरिक्त देखना यही तम है इससे जो पुरुष भीतर व बाहर एकरस होकर गोविंद का भजन करता है उसका द्वैत भ्रम नाशहोकर वह नारायण स्वरूप होजाता है इसीसे भक्ति उत्तम है इस वचन के सुनने से याज्ञवल्क्यजी मौनहोकर अवाक् होगये तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी ! व्यासके आगे कोई वचन उच्चारण करने को समर्थ नहीं कैसे होवे जो व्यास आप आनन्दरूप हैं एक याज्ञवल्क्य योगके बल किञ्चित् वचन कहता है और कुछ काम नहीं करसक्ता तब व्यासजी बोले कि हे सभाके लोगो ! सर्व गोविंद का भजन करो कि जिससे काल के भय से निवृत्त होजावो और यह भी निश्चय करो कि माता पिता, शत्रु मित्र सब गोविंदजीही हैं और अपने कर्मोंको त्याग करके और कर्मों में मनको मत लगाओ और सब इन्द्रियों के व्यवहार को करो परन्तु गोविंदजी के भजन को न भूलो जैसे चकोर नाम पक्षी चन्द्रमा से प्रीति करता और अग्नि को खाता है और हृदय प्रीति व ध्यान चन्द्रमाका रखता है इसीसे

अग्नि उसके जलाने को समर्थ नहीं होती, इसीतरह भजन करने से मुक्त होजावोगे, तब याज्ञवल्क्यजी बोले कि जबतक तुरीया में मनकी स्थिति नहीं होती तबतक किसीप्रकार का सुख प्राप्त नहीं होता इसीसे तुरीया अति उत्तम है तब व्यास जी ने कहा कि तुम तुरीया कहतेहो और मैं जाग्रत् को भी तुरीया समझता हूं इसलिये कि ये सब गोविंदजीही से उत्पन्न हुई हैं इसीसे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया ये सर्व अवस्था श्री गोविंदजीही हैं जिसको श्रीगोविंदसे प्रीति है वह और किसीसे कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता बरन वह गोविंदरूपही है ॥ इति श्रीयमकिंकर संवाद समाप्त हुआ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ ॐनमः ॥

॥ तृतीय अंश प्रारम्भ ॥

॥ ब्रह्मसूत्र का इतिहास ॥

मैत्रेयजी बोले कि हे भगवन्, पराशरजी ! अब कृपापूर्वक मुझको यह बतलाइये कि शरीर, श्रवण, पाद, रुधिर व मांस, चर्म, अस्थि, व मन बुद्धि, चित्त अहंकार इनमें से मैं कौन हूं तब पराशर जीने उत्तर दिया कि हे प्रिय मित्रवर ! ये उपरोक्त संपूर्ण वस्तुएं जड़रूप होकर सब तुम्हारेही प्रकाश से प्रकाशितहैं इसको तुम पूर्ण रूप से समझो और तुमको क्या समझाऊं परन्तु इस विषय में एक इतिहास मैं तुमको श्रवण करातहूं उसको मन व चित्तसे ध्यान देकर श्रवण करो अब ब्रह्मलोक का इतिहास प्रारंभ करते हैं। एक समय मुझको इस विषयकी इच्छा हुई कि मैं ब्रह्माजी के पास जाकर उनसे प्रश्न करूं कि जगत् स्रष्टा, महा

प्रभु विधातृजी! इस संसार समुद्र से किस तरह उत्तीर्ण होऊं फिर संकल्प विकल्प मेरे चित्तमें इस तरह के उत्पन्न हुये कि, यदि श्री ब्रह्माजी इस प्रश्न के उत्तर में मुझसे पूछेंगे कि जिस संसारार्णव से उत्तीर्ण होनेके लिये तुम्हारा प्रश्न है उस संसार समुद्र में पानी कहां है कि जिसमें तुम डूबते हो तब मैं निरुत्तर होजाऊंगा इसलिये संसार समुद्र का जल निश्चय करना मेरा प्रथम कर्तव्य है तत्पश्चात् ब्रह्मलोक में जाना उचितहै. हे मैत्रेय जी! अब आप कृपापूर्वक मुझे यह समझाइये कि इस संसार समुद्र में पानी क्या वस्तु है तब पराशर जीने उत्तर दिया कि यह वासना क्या वस्तु है तब मैत्रेय जी बोले कि आपही कृपापूर्वक इसका भेद मुझे समझाइये तब पराशर जी बोले कि मैंने यह निश्चय किया है कि यदि ब्रह्माजी पूछेंगे कि संसार समुद्र में पानी कहां है तब मैं उनको यह उत्तर दूंगा कि हे प्रभु! यह अहंकार जिससे जीव अपने शरीर में मग्न रहता है यही पानी है फिर बिचार किया कि यदि ब्रह्माजी पूछेंगे कि अहंकार है उससे तुम्हारा क्या प्रयोजन है तब मैं कहूंगा कि मेरी यह इच्छा है कि इस संसारार्णव से पार होऊं तब ब्रह्माजी यही उत्तर देंगे कि अहंकार तो तुम्हारा ही है और उसीसे तुम पार होना चाहते हो इसविषय में मुझसे क्या पूंछतेहो तब मैंने विचार किया कि मैं बिना किसी की सहायता के स्वयं भवसागर से पार होजाऊं तो अति उत्तम है इस विषय में ब्रह्माके पास जाने का कुछ प्रयोजन नहीं है, फिर मैंने अपने मनमें अनुमान किया कि संसार समुद्र से पार होने के लिये प्रथम तो दृढ़नौका चाहिये क्योंकि पुष्ट नौका के बिना पार उतरना अति दुस्तर है इसलिये ब्रह्माजी के पास प्रथम नौकाके अर्थ प्रश्न करना उचित है फिर विचार किया कि कोई नौका बनाय तो देहीगा नहीं, यही उत्तर देगा कि आपको और ईश्वर को भिन्न भिन्न जानना इस द्वैत को त्याग करो जब इन दोनों पदों का त्याग करोगे तब सुखी होगे

यह अभिप्राय बिचार कर फिर शोचने लगे कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि समुद्र तो एक अहंकार है और जीव व ईश्वर रूपी अभिमान ये दो नौका हुईं इसलिये एक नाव उत्पन्न करना उचितहै यह बिचार कर दृढ़ संधानकिया कि हम नहीं हैं और जीव अभिमान से रहित होना यदि हम नहीं हैं तब द्वैत ईश्वरही कहां रहा फिर बिचार किया कि यदि हमही नहीं हैं तब नाव और संसार समुद्रसे क्या प्रयोजनहै यह बिचारकर फिर भी मुझे किञ्चित् आश्चर्य प्राप्त हुआ कि हम सब सम्पूर्ण भ्रम संशय से रहितहुये हे मैत्रेयजी ! तुमने कभी एकक्षण मात्रभी कामना से रहित होकर श्रीगोविंदजी का भजन न किया और सदा यही निश्चय करते रहे कि कोई क्रिया करनी है और कुछत्याग करनाही योग है परन्तु कभी श्री गोविन्दजीकी भक्ति का उपाय न किया यदि किञ्चित् वाक्य तुमसे हमने कहा तब तुमने उस वाक्य को श्रवण भी न किया यदि धन, धान्य व ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपाय होता तो तुम प्रीतिपूर्वक एकान्त स्थित होकर अवश्य चित्त लगाकर श्रवण करते, और मन लगाकर उस धन. धान्यादि के सुख प्राप्तिके अर्थ शीघ्रही अधिक यत्न करते हो कि शीघ्र प्राप्तहोवे हे मैत्रेयजी ! विद्वानों का सत्सङ्ग करो और कहो कि तुम्हारा स्वरूप क्या है तब मैत्रेयजी ने उत्तर दिया कि मैं ब्रह्मरूपहूं तब पराशरजी ने पूछा कि वह ब्रह्म कहां है तुम नाम रूपमें विक्षिप्त हो और कहते हो कि मैं ब्रह्महूं तब मैत्रेयजी ने उत्तर दिया कि तुम सत्य कहतेहो यदि ब्रह्म,पूर्णको कहतेहैं तब भी तो वह नानारूपमें वही पूर्णरूपसे पूरितहै तब पराशरजीबोले कि मन्दभाग्य क्या तुमको कालसे भी कुछ भय नहीं है यह सम्पूर्ण राजर्षि और देवर्षि उस कालसे डरतेहैं तब मैत्रेयजीनेकहा कि भय तब होवे जब हम ब्रह्म से भिन्न किञ्चित् भी निश्चयकरें यदि आदि और अन्तमें ब्रह्महीहै तब कालरूप भी वही है जो कोई किसीको दुःख देताहै तो उसको अवश्य दुःख प्राप्तहोताहै इससे ब्रह्म सर्वत्र

विद्यमान है तव पराशरजी ने कहा कि अव हम तुमको ब्रह्मर्षि कहेंगे तव मैत्रेयजीने कहा कि जो कुछ वाक्यसे कहोगे वहसव नाम है और मैं नामरूप से रहितहूं तव क्या कहूं तव पराशर जी वोले कि यह मिथ्या भाषण क्यों करते हो तुम तो अहं, मम की फांसीके बीचमें फँसे होकर कहते हो कि नामरूप से भिन्न हूं इस विषयमें एक इतिहास तुमसे कथन करताहूं उसको ध्यान देकर श्रवणकरो–एक समय हम एक वनके विषे जाके प्राप्तहुये उस समय मुझको पराशर बुद्धि किञ्चित् न रही थी और मैं अद्वैत से स्वयं आपको भी न जानता था कि मैं क्या हूं यदि कोई मेरा नाम लेकर पुकारता तव मेरे भीतर से उत्तर और शब्दभी नहीं निकलता था क्योंकि हमारी बुद्धि तो नाम, रूपके अभिमान से रहित थी, और उस स्थानपर तपस्वी भी वहुत रहते थे जव उन्होंने जाना कि यह पराशर मृतक है, तव वे सव लोग एकत्र होकर मेरे जलाने के हेतु वहुतही लकड़ी लेआये और उनको इकट्ठा करके मुझको उस लकड़ियोंके ढेरमें रखकर अग्नि लगादी और वे सम्पूर्ण लकड़ियां जलकर भस्म होगईं परन्तु हमारे शरीर में किञ्चित् उष्णता भी न पहुंची, जो अभि-मान से रहितहोते हैं उनकी यही व्यवस्था होती है तुम तो देह और इन्द्रियों के पालन में फँसे हो और कहते हो कि हम नाम, रूपसे रहितहैं इसको हम किस प्रकारसे माने और कैसे माननीय होसक्ता है इस विषय में एक और इतिहास एक अवधूत का श्रवण करो कि एक समय अवधूत दत्तात्रेयजी वनमें विचरतेथे जोकि साक्षात् विष्णुभगवान्ही का रूपथे नहीं आपही आपथे. और उस वनमें जो झरने पानीके वहते थे उनसे शिव शिवका शब्द सुनाईदेता था उनकी यह दशा देखकर अवधूत ने उनसे पूछा कि जो शिवरूप आपही हैं तो तुमको शिव शिव कहने की क्या आवश्यकता है तव उस पानी से यह उत्तर आया कि शब्द भी शिवहैं यह सुनकर अवधूत उस स्थानसे आगे चले तो

उनके शिरकी जटा एक वृक्षमें अटकरही तब अवधूतने विचारा कि सम्पूर्ण चराचर स्थावर, जङ्गममें सदा शिवजीही पूर्णरूपसे व्याप्तहैं और जब शिवजी सर्वत्र व्याप्तहैं तो शिवजी ने शिवही को पकड़ा है कैसे चलें हमारे समीपही उस वनके एक नगर था श्रीभगवतीजी ने वहां के राजासे स्वप्न में कहा कि हमको नर बलि चाहिये वह शीघ्रही देवो तब प्रातःकाल राजाने अपने नगर में मुनादी पिटवादी कि कोई द्रव्यलेकर अपना शरीर मुझे देवे परन्तु किसीने इस बातको मंजूर न किया तब राजा अत्यन्त शोकसे पीड़ित होकर शिकार खेलने के लिये बनकी ओर चला और चलते चलते उस स्थानपर पहुंचा कि जहां अवधूत दत्तात्रेयजी विद्यमान थे राजा ने इनको अत्यन्त हृष्ट पुष्ट व अकेले देखकर इनसे पूंछा कि तुम कौन हो तब अवधूतने उत्तर दिया कि शिवोहं अर्थात् मैं शिव हूं इस वाक्यके सुनने से राजा को निश्चित हुआ कि बावला और मूर्ख है तब अपने भृत्य अर्थात् नौकरों को आज्ञादी कि इसको रस्सों से बांधलो और नौकरोंने तत्क्षण अपने स्वामी की आज्ञानुसार दत्तात्रेयजी को रस्सों में बांध लिया परन्तु इस बन्धन दशा में भी दत्तात्रेयजीके चित्त को कुछ शोक व सुख का आवरण न हुआ जिसतरह मुक्त दशा में दुःख व सुख से रहित थे वैसीही दशा उनकी बनी रही कुछभी अंतर न पड़ा इसका हेतु यह है कि वे अपने चित्त में यह समझते थे कि मैं तो कोई बस्तुही नहीं हूं जो मुझको क्लेश होवे यह मेरा सम्पूर्ण शरीर शिवरूप है और बांधनेवाले और बन्धन भी शिवरूपही हैं इससे उनको यह प्रतीत हुआ कि शिवने शिव को बांधा है, और राजा के नौकर लोग इसतरह से अवधूत को बांधकर देवीके मंदिरमें लेकरपहुँचे और देवीजीकी मूर्त्तिकेसन्मुख लेजाकर खड़ा करके अवधूत से पूछने लगे कि तुम्हारी माता और पिता कौन हैं तब अवधूत ने उत्तर दिया कि मेरे माता व पिता शिवही हैं फिर पूछा कि तुम्हारा वर्ण व आश्रम क्या है

तब भी अवधूत ने शिवही नाम बताया, इस वार्ता के सुनने से राजा अत्यन्त विस्मिय को प्राप्त होकर आश्चर्यित हुआ और बोला कि जो इसका वर्ण आश्रम नहीं है तो इसके बलिप्रदान करनेसे मुझको किञ्चित् दोष न होगा यह विचार के फिर राजा ने अवधूत से कहा कि हम देवीजीकी प्रसन्नता के हेतु तुम्हारा बलिदान करते हैं तबभी अवधूत ने उत्तर दिया कि शिव है तब राजाने अवधूत का शिर रस्सी से बांध और खड्ग लेके चाहा कि इसके धड़से जुदा करके देवीजी की भेंट करूं कि इसी अवसर में देवीकी प्रतिमा से शब्द होकर साक्षात् देवीजी प्रकट हुईं और राजा से बोलीं कि हे मूर्ख! तुमने ऐसे महात्मा पुरुष को दुःख दिया है कि जो अपनी इच्छा से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नाश करसक्ता है क्या तुमको इतना भी ज्ञान नहीं है कि मैं इसको मारनेके लिये ले आयाहूं और खड्ग लेकर उनका शिर काटनेपर उद्यत है परन्तु उन महात्माजी को किञ्चित् शोक नहीं है वरन अपने शिरपर खड्ग रखने से पहिले जिस दशाको प्राप्त थे उसमें कुछभी भेद न पड़ा और एकरस बनेरहे जब इस कथाको पराशर जी मैत्रेयऋषीश्वरको यहांतक सुना चुके तब मैत्रेयजीसे बोले कि हे पुत्र! यह परमहंसी का इतिहास मैंने तुमको श्रवण कराया इसका तात्पर्य यह है कि जो पुरुष नाम, रूप के अभिमान से रहित होतेहैं उनकी यही दशा होती है, तुमभी कहते हो कि मेरा नाम, रूप नहीं है परन्तु यदि कोई पुरुष तुम्हारे कान,नाक और कोई अंग काटे तो तुम उसीसमय कहोगे कि मैं ब्रह्म नहीं हूं अभी तुम्हारी दृष्टि सत्यत्व, बुद्धि और इन्द्रियों में विद्यमान है उससे भिन्न नहीं हुई है इससे गोविन्दजीका भजन करो कि जिससे निर्मल होकर स्वच्छ ज्ञान की प्राप्ति हो—जब राजा ने श्रीदेवीजीके ऐसे वाक्य और जड़भरत की यह दशा देखी तब अवधूत को उक्त बन्धन से छोड़कर अंजुली बांध नम्र भाव से विनय पूर्वक यह प्रार्थना की कि हे महाराज! मुझसे अनजान में

यह दोष हुआ है इससे आप कृपा करके क्षमा कीजिये तब अ-वधूतने कहा कि हे शिव ! तुमसे भिन्न कौन है जो इसको क्षमा करे तब राजाने पूछा कि हे अवधूत ! अब दया करके मुझको नाम, रूप के अभिमान से भिन्न होनेका उपाय बतलाइये कि मैं इनसे किसप्रकार रहित होऊं तब अवधूत ने विचार किया कि बड़े आश्चर्य की बात है कि केवल आपही है दूसरा कोई नहीं और त्यागने की इच्छा करताहै, यह सोचकर बोले कि हे राजन् ! वैरागकरके यह निश्चय करो कि श्रीगोविन्द के सिवाय और कुछ भी नहीं है और जब तुमको पूर्ण रूप से यह भासित होजावेगा तब नाम, रूपात्मक संसार भ्रम तुम्हारा स्वतः नाश को प्राप्त होजावेगा हे राजन् ! यह दृढ़ निश्चय करो कि न राजा है न प्रजाहै यह केवल एक अद्वितीय शिवही का रूप सर्वत्र विद्यमानहै तुमको केवल अभिमान वश जो तुम्हारे अन्तःकरण में स्थित है यह भासित होता है कि हम जीव होकर शिव से भिन्न हैं यही अभिमान सम्पूर्ण अनर्थों का हेतु है इसको त्याग करके शरीर से विचार करके देखो कि यह शरीर क्या वस्तु है कि जिसके ऊपर चर्म और भीतर मांस व नाड़ी और रुधिर व अस्थि से पूरित है तुम ऐसे वैकारिक शरीरको अपना रूप जानते हो और कहते हो कि यही हमहैं जब यह मृतक होताहै तब सम्बन्धी लोग कुटुंबी इत्यादि कहते हैं कि अब यह प्रेत होगया इसको शीघ्रही घरसे निकालो और जबतक इसको दग्ध न करें तबतक खाना पीना दोष है, और स्त्री जो सदा इसके साथ भोग व क्रीड़ा करती वहभी इस मृतक दशाको देख भयभीत होकररोती गिरती उठती इससे भागती है और मध्य रास्ते में जाकर कोरा घड़ा फोड़ते हैं और यह कहते हैं कि न तुम किसी के और न कोई तुम्हारा है अब तुमसे रिश्ता टूटगया तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी ! जो यह जानता है कि यह कुटुम्ब मेराहै वह ऐसा निर्णय हुआ, अब तुमको योग्यहै कि तुम अपने जीतेहीजीते यह रिश्तारूपी संपूर्ण

घट फोड़डालो अर्थात् सबलोगों से मुक्त होजाओ—और सुनो कि इस संसारिक देहके मृतक होने उपरान्त जब चिता में मृतक शरीर को धरते हैं तब उसके मुखमें घृत डालकर यह यत्न करते व कहते हैं कि यह मृतक शीघ्रही जलजावे और यहां तक उस से भयभीत होतेहैं कि संकल्प के समय उसका बेटा सबसे पीछे रहता और उस मृतक शरीर में प्रेतभाव कल्पित करता है यह संसार की परम्परा पृथा है इससे हे मैत्रेयजी ! तुम इस देहाभिमान को जो सदा में उक्त दशाको प्राप्तहै विलीयमान समझ कर इसका त्याग करके श्रीगोविन्दजीका भजन करो और उन्हीं गोविन्दजी को सर्वव्यापी समझकर उनके भजन में लीन होवो। हे प्यारे! यहवार्ता प्राणी मात्रके कारणसे है मैत्रेय तो जीवन्मुक्तहै, तब मैत्रेयजी बोले हे महाराज ! अब आप ब्रह्मलोक में जाने की इच्छा पूर्ण होनेका इतिहास वर्णन करके मेरे हृदय को आनन्दित कीजिये तब पराशरजीबोले कि मैं ब्रह्मलोक में गया और वहां जाकर देखा कि दक्षप्रजापति बैठे हैं वे हमको देखकर हँसे और फिर मुझसे पूछा कि हे पराशर! तुम यहां अर्थात् ब्रह्मलोक में किसलिये आये तब मैंने कहा कि हे महाराज ! मैं यहां अपने स्वरूपको प्राप्त होने के लिये आयाहूं, तब उससभा में जो योगीश्वर लोग बैठे थे उन्होंने मुझको देखकर कहा कि हे पराशर ! यदि तुमको अपने स्वरूप के देखने की इच्छाहै तो योगकरो तब मैंने कहा कि मैं आपके कथनानुसार योग अवश्य करूंगा परन्तु उसके करने की विधि मुझे मालूम नहीं है यदि आप कृपाकरके उसका यत्न मुझे उपदेश कीजिये तो उस उपायको समझकर अवश्य योग करूंगा यहसुनकर योगेश्वर मौनहोगये फिर मैं उनसे बिदा होकर आगे चला तो वहां देखा कि सनकादिक ऋषीश्वर बैठे हैं उन्होंने मुझको देखकर बड़े आश्चर्य से पूछा कि हे पराशर ! बड़े तअज्जुब की बात है कि तुम अपना स्वरूप जानने के लिये यहां आये हो कहिये ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय कहां हैं

तब मैंने उत्तर दिया कि यदि मैं ही हूं तो आपही आपको क्यों नहीं जानता हूं जैसे आप कहते हैं कि हाथ, पैर,नेत्र और कान हमारे हैं तैसे मैं भी यह हूं ऐसे स्वरूपको जानूं तब सनकादिक बोले कि जो दृश्य है वह मिथ्या केवल संकल्प मात्र है और जो दृश्यसे परेहै वह सत्य है यह दृश्यका देखना देखना नहीं है क्योंकि आदि अन्त जोहै वह ज्ञाता,ज्ञान और ज्ञेय जीव ईश्वर यह सत्य स्वरूप है यही सत्यस्वरूप तुम्हारा है, तब मैंने कहा कि यदि यह जीव सत्यस्वरूप ब्रह्महै और यह मुक्त स्वरूप मेराहै तब कामना करताहूं सो वह क्योंकर प्राप्त नहीं होता तब सन-कादि ऋपीश्वर बोले कि हे पराशरजी! कामना धर्मचित्त की है और तुमको अचित कहते हैं इससे जो तुम कामनाकी इच्छा करते हो वह तुमको कैसे प्राप्तहोवे क्योंकि यह वस्तु निरंजन कारण से उत्पन्नहोती है सो निरंजनहीहै क्योंकि यह कार्यकारण का अभेद है हे मैत्रेयजी! तुम भी अपने स्वरूप को जानो और श्रवण करो फिर हम सनकादि से आगे चले फिर हम ब्रह्मा के पास पहुंचे वहां जाकर देखा कि ब्रह्माजी अपने ध्यान में बैठे हैं तब हमने दंडकी नाईं गिरकर अपने मनमें यही धारणा करने लगे कि हमारा स्वरूप क्याहै तब ब्रह्माजीके मुखसे शिवकाशब्द निकला तब मैंने विचार किया कि शिव क्या वस्तु है तब फिर मुझको उत्तर मिला कि आपही आपहै तब मैंने बिचार किया कि यदि मुझको इच्छाथी कि आपको जानूं तब मैंने पूछा कि हे महाराज! हमारा स्वरूप क्याहै तब उन्होंने उत्तर दिया कि शिव, तब मैंने फिर उनसे प्रश्न किया कि हे महाराज! शिव क्या है तब उन्होंने फिर भी उत्तर दिया कि आपी है अब क्या पूछूं॥ तब मैंने विचार किया कि इस संवाद से क्या सिद्ध हुआ मेरे इसी विचारान्तर में ब्रह्माजी का ध्यान समाप्त हुआ और हम भृगु आदिक ऋषीश्वरोंसे पूंछने लगे कि ब्रह्मा कहां हैं तब एकने कहा कि दशवें द्वार में स्थित है दूसरे ने कहा कि ऐसा मत कहो

यदि आपही आप है तब स्थित किस विषे होगा आपही आप हैं तब ब्रह्माजीने हँसकर कहा कि हे पुत्रो ! एक अद्वितीय मैं ही हूं और पराशर कहते हैं कि हमारा स्वरूप क्या है किसी ने ऐसा नहीं कहा है कि बीजसे वृक्ष भिन्न है और संपूर्ण संसारका बीज मैं हूं और सब मुझीसे सिद्धहोते हैं और उत्पन्न भी मुझी से होते हैं हे पराशरजी ! तुम ऐसा मत कहो कि हमारा स्वरूप क्या है तब मैंने कहा कि तुम नहीं कहते हो कि हमारा स्वरूप हमी हैं तुम ब्रह्मा कहते हो और मैं पराशर कहता हूं तब ब्रह्माजी ने मौनहोगये और कुछ भी उत्तर न दिया कि इसी समयान्तर में वशिष्ठजी भी आपहुंचे कि जिनको देखकर संपूर्ण सभाके लोग उठखड़ेहुये और प्रणाम करके विधिपूर्वक पूजन किया फिर पूछा कि हे वशिष्ठजी ! तुम्हारा पुत्र कहता है कि मैं पिताका पुत्र नहीं हूं देखो यह ब्रह्माके साथ कैसे उत्तर और प्रश्न करता और बराबरी करता है तब वशिष्ठजी ने कहा कि मैंने इस पुत्र को बहुत समय तक उपदेश किया कि तुम योग करो परन्तु यह कहता है कि भ्रम मात्र है मुझे नहीं मालूम कि इसका क्या प्रयोजन है यह अभागा है हमारा कहना नहीं मानता है मैं इसको मराहुआ जानता हूं तुम भी इसको कुछ उपदेश करो कि जिससे यह सत्मार्गपर चले तब सब लोगों ने कहा कि जब अपने पिताका उपदेश नहीं मानता है तो और लोगोंका कहना कैसे मानेगा तब भृगुजीने कहा कि हे वशिष्ठजी ! पराशर भाग्यवान् है और तुम भाग्यहीनहो, इसलिये कि पराशर अपने स्वरूप को प्राप्त है और तुम कहते हो कि योग करके स्वरूपको प्राप्तहोवो तब वशिष्ठजीनेकहा कियह हमारापुत्र हमारे उपदेशको किसतरह माने जब इसकी संगति तुम ऐसे पुरुषोंकी है इससे मेरी समझ में यह मेरा लड़का मरगया, परन्तु मैं सबको इसीप्रकार देखताहूं कि स्वतन्त्र हैं क्या आपी आपहैं ? तब भृगुजीने कहा कि हे व-शिष्ठ ! तुम्हीं मरे हो हम सबलोग जिन्दा हैं क्योंकि यह संपूर्ण

कर्म योग अथवा सर्व शरीर से होतेहैं और शरीर नाशवान् और असत्य है और तुम सत्य मानते हो तब वसिष्ठजीने देखा कि पराशर तो ब्रह्माजीसे वार्ता करतेहैं तब ब्रह्माजीने कहा हे वसिष्ठ ! तुम पराशरजीको उपदेश क्यों नहीं करतेहो तब वसिष्ठजी बोले कि मैं क्या करूं यह मेरा उपदेश नहीं मानता है आप हमारे पितामह हैं आपही कुछ उपदेश कीजिये तब ब्रह्माजीने कहा कि तुम क्या उपदेश करतेहो तब वसिष्ठजीने कहा कि मैं इससे कहताहूं कि यह सम्पूर्ण वासना त्याग करके योग करे तब पराशर जीने उत्तर दिया कि मैं यथावत् कहता हूं परन्तु ये कहते हैं कि योग करो और मैं पूछता हूं कि मैं क्या हूं जबतक मैं आपको न जानूं योग किसप्रकार से करूं काहेसे कि स्वरूपही कारण है और योग से लेकर सर्व कर्म कार्यहै कारण के विना जाने कार्य की सिद्धि नहीं होतीहै तब वसिष्ठजीने कहा कि स्वरूपका देखना योगसे होताहै बातोंसे नहीं होता तब मैंने कहा कि हे ब्रह्मा जी ! इसीसे मैं वसिष्ठ का कहना नहीं मानताहूं कि वे मिथ्या कहते हैं यदि मैंही स्वरूपहूं तब किसको देखूं तब वसिष्ठजी ने कहा कि जो देखना नहीं है तो किस प्रयोजन से यहां आयेहो और पूछते हो कि हमारा स्वरूप क्या है तब मैंने कहा कि इसी वास्ते पूछते हो कि यह सबलोग क्या कहते हैं, परन्तु हमको निश्चय हुआ कि येसम्पूर्ण लोग दगाबाज हैं यथार्थ नहींकहते, हे ब्रह्माजी ! अब कहिये कि हमारा स्वरूप क्या है तब ब्रह्माजी ने कहा कि तुम्हारा स्वरूप मैंहीहूं तब मैंने कहा कि हे ब्रह्मन् ! तुम्हारा स्वरूप क्या है तब ब्रह्माजी ने कहा कि जब तुम वैराग करोगे तब इस भेदको जानोगे कि न हमहैं और न कोई हमारा है सब संसार मृगतृष्णा के जलकी नाईं मिथ्या और असत्य निश्चय करोगे और जब संसारको तुमने मिथ्या जाना तब तुम कहांहो, और यदि तुमहीं शेष रहेहो तब उपाय क्यों खोजते हो जैसे इन्द्रजाली पर से कबूतर प्रकट करता है यदि वह कबूतर

आंखोंसे दिखाई तो देताहै परन्तु असत्य है तैसेही यह संसार असत्य है कि अज्ञानी लोग इसी संसारमें पच पचकरकर मरतेहैं हे पराशरजी ! उससे प्रीति करना चाहिये जो सत्यस्वरूप होवे तुम निश्चय जानो कि मैं शरीर नहींहूं तब हमने पूछा कि हे ब्रह्माजी! यह जो बहुतसे पुरुष अतीत होकर वनमें क्लेशभोगते हैं इनकाभेद निश्चित नहीं होता कि ये लोग किसवस्तुका परित्याग करके अतीत हुये हैं यदि यह निश्चय करो कि गृहस्थी से अतीत हुयेहैं सो तो अनायास होजाते हैं कभी पहिले पुरुष मरजाता और स्त्री शेष रहती है और कभी पहिले स्त्री मरजाती और पुरुष शेष रहता है सो ये सब लोगही गृहस्थी को त्यागकर अतीतहुये हैं तब ब्रह्माजी ने कहा कि हे पराशरजी ! अतीतत्त्व का जानना बहुत कठिन है और यह तो सबही लोग कहते हैं कि गृहस्थी को त्यागकर वनमें जाना इसी को अतीत होना कहते हैं परन्तु ऐसे अतीत हो कि शरीर नहीं हूं और न यह शरीर मेरा है जिस पुरुष ने अपने शरीर का अभिमान त्याग दिया वही अतीत है और सर्वका त्याग यही है कि मैं पराशर नहींहूं और यदि तुम पराशर नहींहो तो सर्वपद जो तुम कहते तो यह कहां है पुण्य व पाप तब होता है जब कि यह कहे कि मैं हूं और जब मैंही नहीं हूं तब पुण्य व पाप कौन कहसक्ता है तब मैंने कहा कि हे ब्रह्माजी ! पराशर नहीं है तुमहीं हो और यदि तुमहीं हो तो कैसे कहते हो कि मैं पराशरजी हूं तब ब्रह्माजीबोले कि यदि मैं ब्रह्महूं तो जीव कौनकहै जीव और ब्रह्म मैंही कहता हूं तब मैंने कहा कि यदि तुमहीं हो तब कर्म क्यों कहतेहो इसी वार्तालाप के होते समय में मीमांसाभी आकर प्राप्तहुये और बोले कि जो मनुष्य जिस कर्मको करताहै वह उसीके फलको प्राप्त होताहै अर्थात् जिसतरह से कर्म करता है उसी तरह से उसके फलको भोगता है कर्मही प्रधान है इस प्रकार से कथन करके व ब्रह्माजी को नमस्कार करके फिर बोले कि हे महाराज

ब्रह्माजी! अब कृपापूर्वक बतलाइये कि यह हमारा कथन सत्य है अथवा असत्यहै तब ब्रह्माजी बोले कि यदि सर्व पदार्थों व सांसारिक विषयों में मैंहीहूं तब यह कथन भी मेराही समझना चाहिये इस तरह का प्रत्युत्तर ब्रह्माजी से सुनकर मीमांसाजी चुप होरहे कुछ भी मुख से न बोलसके तब वैशेषिक ने आकर उत्तर दिया कि सभी मिथ्या कहते हैं और मैं ब्रह्महूं यह प्रत्यक्षही है कि ज्ञान और अज्ञान दो कालहैं और जितने चराचर स्थावर जङ्गमादि सांसारिक पदार्थ देखने व सुनने में आतेहैं सबही कालके आधीन हैं और उसीकाल के आश्रयीभूत होरहे हैं हे ब्रह्माजी! अब आप कहिये कि यह हमारा सिद्धान्त सत्य है अथवा मिथ्या तब ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि यह तुम्हारा कथन सत्यहै, तब मैंने कहा कि हे ब्रह्माजी! जब तुमहीं हो तब काल क्या है और इसके आधीन कौन वस्तुहै तब ब्रह्माजी बोले कि यदि हमने कालको सिद्ध किया है तब कथनमात्र से क्या संशय है यह तो सब तरह से एकही सिद्ध है तब वैशेषिक भी अवाक् होकर चुप रहगया तब न्याय ने आकर कहा कि देखो संपूर्ण संसार ईश्वर केही आधीन है इसलिये कि ये कर्मशरीर से होते हैं परन्तु काल कर्म की उत्पत्ति नहीं करता है यदि ईश्वर इच्छा करे तो कालका भी नाश होसक्ता है वही ईश्वर सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म व लौकिक पारलौकिक सम्पूर्ण व्यवहारों में सर्वत्र व्याप्त है, तब मैंने कहा कि ईश्वर क्या वस्तुहै तब न्यायने उत्तर दिया कि जिससे तुम उत्पन्न हुयेहो उसीको ईश्वर कहते हैं तब मैंने कहा कि मेरा उत्पादक कोई नहींहै मैं स्वतःसिद्धहूं तब न्याय ने कहा कि तुम स्वतः सिद्ध कदापि नहीं होसक्ते कहीं सूर्यके प्रतिबिम्ब का उत्पन्नकर्ता त्रसरेणु (परमाणु, जर्रा) होसक्ता है तब मैंने कहा कि यह तुम्हारा कथन सत्य है परन्तु यह तो सोचो कि वह परमाणु जिसके सकाशसे मुझमें व्याप्तहै वही उस परमाणु का उत्पादक मेरे हृदयमें विद्यमान है और

हमभी उससे किञ्चित् भिन्न नहीं हैं फिर वह हमको किसप्रकार त्याग सक्ता है परन्तु तुम्हारे कथनानुसार यह सिद्ध होताहै कि एक मैं हूं और एक कोई अन्यभी मुझमें विद्यमान है और वेद में इसप्रकार लिखाहै कि नारायण अद्वितीय है इससे इन दोनों तुम्हारे और वेदके वाक्यों से भ्रम उत्पन्न होकर एकका दूसरा खण्डनकर्ता मालूम होता है यह परस्पर का विरोध अज्ञानता का है तब न्याय ने कहा ईश्वर तो संपूर्ण संसार को नाश कर-सक्ताहै तब मैंने पूछा कि संसार क्या वस्तुहै तब न्यायने उत्तर दिया संसार ईश्वर के कर्तव्य (काम) को कहतेहैं तब मैंने फिर पूछा कि कर्त्तव्य (कार्य) क्या वस्तु है तब न्याय ने उत्तर दिया कि जैसे बुद्‍बुदे और जलतरङ्ग होतेहैं इसी प्रकार सब जगत् ईश्वर मेंही समझो तब मैंने कहा कि यदि इसमें कुछ अन्तर हो तो मुझको सुनाइये तब न्यायने उत्तर दिया कि जब सर्वत्र सारवस्तु जलही है तब अन्तर कैसे होसक्ता है तब मैंने फिर पूछा कि अन्तर अर्थात् भेद कहां है तब न्यायने उत्तर दिया कि यह जीव पराधीन है और ईश्वर स्वतन्त्र है यह दोनों कदापि एक नहीं होसक्ते इसी द्वैतबुद्धि को भेद समझो तब मैंने कहा कि जब जीव ईश्वर सेही उत्पन्नहुआ है तब भिन्न किस प्रकार कहाजावे तब न्यायने उत्तर दिया कि जीव अल्पज्ञ है और परमेश्वर सर्वज्ञ है एक यही भेद जीव और ईश्वर में विद्यमान है तब मैंने कहा कि यह आपका कथन निस्संदेह ठीक है परन्तु यह तो बतला-इये कि जब यह जीव ईश्वरही से उत्पन्न हुआ अर्थात् उसी पर-मेश्वर का अंश है तब भिन्न क्योंकर समझा जावे हां अल्पज्ञ तो अवश्यहै परन्तु भिन्न कदापि नहीं होसक्ता यदि कहो कि जब यह जीव शरीरको त्यागजाता और शरीर पड़ारहताहै तब वास्तव में इन दोनोंकी भिन्नता दर्शित होतीहै या नहीं, देखो इसी उप-रोक्त कथानुसार साबितहै कि यह शरीर कदापि जीव नहीं होसक्ता अब यह बतलाइये कि जीवकास्वरूप कैसाहै तब न्यायने उत्तरदिया

कि जीव कर्त्ताका अंशहै तब मैंने कहा कि ईश्वरही का अंशहै या किसी और का तब न्यायने कहा कि मैं अभी तुम्हारा शिर काटूंगा क्योंकि तुम एक परमाणुको जो किसीप्रकार सूर्यकी समानता नहीं करसक्ता सूर्य बतलातेहो इसीसे तुम्हाराबध करना उचित है कहीं इस जीवका ईश्वर से सम्बन्ध होसक्ताहै, तब मैंने कहा कि मैं तो स्वयं विना शिरका हूं तुम क्या कहोगे तब न्यायने ब्रह्माकी ओर देखकर पूछा कि हे ब्रह्माजी! यह हमारा सिद्धान्त सही है या कि इसमें कुछ भेद है तब ब्रह्माजीने उत्तर दिया कि यह तुम्हारा कथन सत्य है तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी! तुम जानते हो कि ब्रह्माजी सत्य किसलिये कहते हैं वह अपने में सब कर्मोंकी स्थिति करते हैं इसीलिये किसीका खण्डन और मण्डन नहीं करते तब मैंने कहा कि जब न्याय कर्मों के अनुसार होता है तब कौन कर्म है कि जिसका न्याय करेगा तब ब्रह्माजी ने कहा कि हम स्वयं न्याय करते हैं तुम चुप रहो तब पातंजलि शास्त्र बोला कि वेदका कथनहै कि जो पुरुष प्रणव अर्थात् ॐ को लेकर योग करता है वह जीवन्मुक्त है तब मैंने कहा कि प्रणव स्वयं सिद्धहै उसको कौन योग करे परन्तु तुम कहो कि प्रणव क्या होता है तब याज्ञवल्क्यजी बोले कि प्रणव मुझसे परे है हम उसके भेद को वर्णन करनेमें असमर्थ हैं तब मैंने कहा कि जो वस्तु सर्वकाल और सनातन है उसको कौन कहसक्ताहै तब याज्ञवल्क्यजी बोले कि इस क्रिया को योगी करते हैं तब मैंने कहा कि योगी कैसे होता है यह जो शरीर में भस्म मलता है इसीको योगी कहतेहैं अथवा कोई और है तब याज्ञवल्क्यजीने कहा कि योगी उसको कहतेहैं जो अहं, मम को जलाकर उस की भस्म अपने शरीर में मलकर अपने स्वरूप के साथ योग करताहै तब मैंने पूछा कि भस्म को योगी किसके साथ मलता है तब याज्ञवल्क्यजीने कहा कि यह कथनमात्र से तुमको मा- लूम नहीं होसक्ता इस विषयको जब तुम योग करोगे तब जानोगे

तब मैंने कहा कि आपका कथन सत्य है परन्तु यह तो बतला- इये कि जब योग नहीं करता है तब क्या है तब याज्ञवल्क्यजीने कहा कि मैं नहीं जानता हूं तब मैंने कहा कि यदि आप नहीं जानते हैं तो किसके वास्ते योग करते हैं तब याज्ञवल्क्य ने कहा कि योग बिना मुक्ति का प्राप्त होना अति दुस्तरहै तब मैंने कहा कि अब कृपा करके योग के करनेका उपाय वर्णन कीजिये कि जिसको समझकर मैं योग करूं तब याज्ञवल्क्य जी बोले कि यदि तुम हमारे शिष्य होजावो तो हम तुमको योग उपदेश करें और जो हम कहैं वह अंगीकारकरो और यदि तुमको योग करने की इच्छाहै तो सूक्ष्म भोजन और अल्प शयन व कम बोलनेकी साधना करो कि जिससे सम्पूर्ण इन्द्रियां तुम्हारे वशमें होजावें तब मैंने पूछा कि इस तुम्हारे उपदेश से क्या लाभ हुआ सम्पूर्ण तो स्वयं असक्त होसके हैं जब कि दो तीन दिन कुछ न खावे अथवा अल्प भोजन करे तब सबही इन्द्रियां सुस्त और असक्त होजावेंगी और इन्द्रियों के असक्त होनेसे अंग स्वयं असक्त हो- कर सुस्त और मिथ्या होजावेंगे और सम्पूर्ण संसारिक व्यवहारों से रहित होजावेंगे और जब अंग शिथिल होजाते हैं तब क्रोध और तामस अधिक बढ़ताहै तब याज्ञवल्क्यजी बोले कि इसीलिये मैं तुमको उपदेश नहीं करताहूं और जानताहूं कि तुम बिना गुरुके हो हे मूर्ख ! यह नहीं समझता कि योगसे आत्मा शुद्धहोतीहै तब मैंने कहा कि हे महाराज ! मैं इस विषय से अज्ञातहूं अब आप दया करके मुझे यह समझाइये कि योग करने से मन किसतरह से शुद्ध होताहै तब याज्ञवल्क्यजीने कहा कि शरीर के भीतर पांच प्राण अर्थात् प्राण १ अपान २ व्यान ३ समान ४ उदान ५ ये बसते हैं और उनके कार्य भिन्न भिन्न हैं यथा प्राणवायु ह- मेशा बाहर को निकलता है और अपान भीतर को जानेवाली वायु को कहते हैं जब प्राण वायु को बल करके अपान वायु के साथ भीतर को खींचते हैं तब वही प्राण वायु अपान होजातीहै

तब मैंने कहा कि हे याज्ञवल्क्यजी! योग करने से और क्या सिद्ध होता है तब याज्ञवल्क्यजीने उत्तर दिया कि योगीजन जिह्वा को लम्बी करके अर्थात् जीभ को बढ़ा करके और भीतर से नासिकाके छिद्रको बन्द करके सदा अमृत पान करते हैं तब मैंने कहा कि यह आपका कथन निश्चय करके सत्य है अर्थात् योगीजन जब प्राण को भीतर करतेहैं तब शरीर में अग्नि नीचे जाने को मार्ग न पाकर ऊपर को प्रवेश करतीहै और जब अग्नि ऊपर को बढ़ती है तब उसकी उष्णता से मज्जा शीश में से पिघलकर जिह्वापर आती है और योगीजन उसको अमृत समझ कर पान करते हैं हे याज्ञवल्क्यजी! मैं तुम्हारा शिष्यहूं अब कृपाकरके मुझे उपदेश कीजिये तब याज्ञवल्क्यजी बोले कि तुम परमेश्वर से विमुख हो जो परमेश्वर से विमुख होवे वह तुमको उपदेश करे मैं तुमको उपदेश नहीं करसक्ता ब्रह्माजी आकर तुम को उपदेश करेंगे तब मैंने प्रार्थना की कि हे महाराज! ऐसा कहीं नहीं होता है कि गुरु शिष्य को त्याग देवे अच्छा फिर भी आप दया करके मुझे समझाइये कि योगीजन किसके साथ योग करते हैं तब याज्ञवल्क्यजी बोले कि योगी योग करके दशवें द्वार को कि जहां कोटि सूर्यका प्रकाश है और वही दशवें द्वार का स्थान ईश्वरकी स्थिति का स्थान है उसको प्राप्त करते हैं इससे तुमभी योग करो कि जिससे उस स्थान को पहुंचो तब मैंने कहा कि झूठ न बोलिये वहां प्रकाश किसतरह से विद्यमान है जब यह वहां जाताहै तब प्रकाश होताहै, जब यह शरीर मृत्यु को प्राप्त होता है और जलाया जाता है तब भी मैंने किसी के शिर से प्रकाशको निकलते नहीं देखा तुम किसप्रकार से शिर के भीतर प्रकाश बतलाते और देखते हो और जो कहते हो कि ईश्वर में जाकर मिल जाता है यह क्या बातहै तब याज्ञवल्क्य जीने कहा कि हे योगी! इसकी चिन्ता न करो योग सनातनहै तब मैंने कहा यह बिलकुल झूठ है तब ब्रह्माजी बोले कि तुम्हीं

एक योग नहीं करते हो और सब लोग भी योग करते हैं क्योंकि योग सनातन है तब मैंने कहा कि यदि योग सनातन है तब तुम अद्वितीय किसप्रकार से होसक्ते हो तब ब्रह्माजी बोले कि यदि सर्व मैंहीहूं तब योग भी मैंही हूं तब मैं मौन होगया और एक घड़ी के व्यतीत होने पर फिर भी मैंने प्रश्न किया कि मैं क्याहूं तब ब्रह्माजी बोले कि हे पराशर! तुम नित्य और अनित्य का विचार करो इसी वार्त्तान्तर में कपिलजी भी आकर प्राप्त हुये और बोले कि तुम इसीसे अपने प्रयोजन को नहीं प्राप्त होते क्योंकि तुम नित्य और अनित्यका बिचार तो करतेही नहींहो देखो जो पुरुष अपने स्वरूपको प्राप्त हुआहै वह सांख्य से प्राप्त हुआहै तब मैंने पूछा कि हे कापिलजी! नित्य और अनित्य किसको कहते हैं तब कपिलजी बोले कि यह शरीर अनित्य है क्योंकि यह तीन गुणों से उत्पन्न हुआहै और इन तीनों गुणों की उत्पत्ति अहंकार से है तब सम्पूर्ण अनित्य है और इन तीनों का प्रकाशक नित्य और सार है तुम उस नित्य को प्राप्त होकर मुक्त होओ तब मैंने कहा कि अब एक सत्य और दूसरा असत्य हुआ और ब्रह्माजी कहते हैं कि एक हमीं हैं तो हम दोनों को किसप्रकार से निश्चित करें तब कपिल मुनि बोले कि जब सांख्य प्राप्त होताहै तब अनायास स्वरूप को प्राप्त होजाता है तब मैंने कहा कि मेरा स्वरूप क्या है तब ब्रह्माजीने कहा कि तुम्हारा स्वरूप तुम्हीं हो तब व्यासजी कैसे? व्यास जो आपस्वरूपही हैं उन्होंने आकर ब्रह्माजी को प्रणाम किया और कहा कि एक अद्वितीय नारायण है उससे अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं तब मैंने कहा कि सत्य२कहिये कि नारायणही है अथवा कोई दूसराभी है तब व्यासजीने कहा कि नारायण से अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है वह आपही आपहैं तब मैंने कहा कि यदि द्वितीय नहीं है तब एक कैसे कहते हो तब व्यासजी ने कहा कि यदि एक न कहैं तब शब्दकी प्रवृत्ति का अभाव होगा वाक् इन्द्रिय के व्यवहार से

रहित करके मुखको बन्दकरो हे पराशरजी! तुम्हारे कथन से यह निश्चय होताहै कि मौनरहना योग्यहै तब मैंने कहा कि हे व्यासजी! विद्वानों की स्थितिको वेदभी नहीं जानसक्ता क्योंकि वेद त्रिगुण स्वरूप हैं और सन्त लोग त्रिगुण से रहित अर्थात् निर्गुणरूप हैं अब और कुछ आप के कहने व सुनने की आवश्यकता नहीं इतने कथन से निश्चय होगया आपका उपदेश ऐसाहै, पराशरजी इस वाक्यको सुनकरअवाक् होगये और कुछ न कहसके हे मैत्रेय जी! जब व्यासजी मौन होगये तब ब्रह्माजी बोले कि हे पराशरजी! तुमने अपने को बहुत श्रेष्ठ और उत्तम समझते हो यह नहीं समझते कि इस शरीरको जो चर्म, मांस, रुधिर और अस्थि का समूह होकर कालके गालमें जोकि तीनोंलोकका राजा है सदा विद्यमान् रहता है इसपर अभिमान करना वृथाहै देखो मैं सम्पूर्ण संसारके उत्पन्न और प्रलय करने की शक्ति रखकरभी कभी इन बातों अर्थात् अपने कार्यपर अभिमान करना कदापि स्वप्न में नहीं रखता इसलिये कि मुझको भलीप्रकार यह ज्ञान है कि यह शरीर अन्त में एक दिन अपने धर्मोंके सहित अवश्य कालका ग्रास होगा इस लिये इन नाशवान् शरीर पर तुमभी अभिमान न करो मैं पराशरहूं कहिये तुम्हारा स्वरूप क्या है तब मैंने कहा कि हे ब्रह्माजी! मुझमें स्वात्मक्रिया है मुझमें पराशर के अंशका किञ्चिन्मात्रभी लेश नहीं है मैं स्वयं अन्तर्यामीहूं तुम स्वयं समझ सक्ते हो कि मुझमें कोई अंश पराशर का किसीप्रकार से भी नहीं है, तब मैं अपनेको स्वयं श्रेष्ठ व उत्कृष्ट किसप्रकारसे जानसक्ताहूं मुझमें तो छोटे और बड़ेके विभेदका भी ज्ञान नहीं है मैं एक पूर्ण ब्रह्मकोही सर्वत्र पूरित जानताहूं तब ब्रह्माजी बोले कि यह तुम बहुत अच्छा कहतेहो परन्तु यह तो कहिये कि ब्रह्मका रूप कैसाहै तब मैंने कहा कि यह नाम व रूप जो सर्वदृश्य है इसी को ब्रह्म कहते हैं तब श्री ब्रह्माजी ने कहा कि यह जो दृश्यहै यह

तो मिथ्या है तुम इसको कैसे ब्रह्म निश्चय करते हो तब मैंने कहा कि नाश क्या है और मिथ्या किसको कहते हैं केवल एक सत्यरूपही सर्वत्र विद्यमानहै तब ब्रह्माजीने कहा कि तुमने उस को देखा है तब मैंने कहा कि वह दृश्य व दर्शन नहीं है वह स्वयं आपही आपहै तब ब्रह्माजी बोले कि भजन करो तब मैंने पूछा कि भजन क्या चीज़है तब ब्रह्माजीने कहा कि तुम कामना के बन्धन में फँसेहो और मुझसे भजनकी रीति पूछतेहो जबतक तुमको परम निर्वाण प्राप्त न होगा तबतक भजनका आनन्दकिसी प्रकार से भासित नहीं होसक्ता तुमतो आश्रम में निमग्नहोकर पुण्य और पापकर्मोंमें फँसेहो तुमको गोविन्दके भजनकाआनन्द कैसे दिखलाई देवे—गोविन्दके भजनकाआनन्द यही है कि अपने को गोविन्दसे भिन्न न समझो क्योंकि गोविन्द सुख निराश की आशहै हे पराशरजी ! जिस समय तुम सम्पूर्ण काम और कामों के फलकी आशाको त्यागकर निष्कामहोके आत्मस्वरूपके सन्मुख होजाओगे उसीसमय सब देवता कांपैंगे अर्थात् प्रथम अवस्था में काल काँपता है फिर दूसरी अवस्था में मैंभी उससे भय करता हूं इसलिये कि वह हमारी आज्ञा से रहित होता है तीसरी अवस्था में सम्पूर्ण देवते उससे डरने लगतेहैं और चौथी अवस्था में श्रीभगवान् स्वयं उसके सन्मुख आकर प्राप्त होते हैं हे मैत्रेय जी ! ब्रह्माजीके इस कथन को सुनकर मुझको अति हर्ष प्राप्त हुआ और उन्हीं ब्रह्माजीके सत्सङ्ग से अतिलाभ और दुर्लभ दोनों के भेदको समझा तब ब्रह्माजीने कहा कि जिस समय यह पुरुष सम्पूर्ण सांसारिक धारणाओं को त्याग आत्म परायण होकर जिज्ञासा करता है तब प्रथम मुझको भय प्राप्त होताहै कि अब हमारा नाशहोजावेगा इसलिये कि गोविन्दजी स्थिति अन्तष्करण के मध्य में है और जब अभेदज्ञान की निष्ठाहोतीहै तब मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार भी अपने द्वैत व्यवहार से रहित होजाते हैं हे पराशरजी ! तुमभी इस मार्ग में प्रवृत्त होकर निश्चय करो कि

मैं आपही आप हूं और स्वरूप भी मैंहीहूं तब मैंने कहा कि मैं निश्चय करताहूं कि सम्पूर्ण ब्रह्मही है तब ब्रह्माजी बोले कि यदि सम्पूर्ण पदार्थ ब्रह्मही का स्वरूप है तब तुम्हारा प्रयोजन सिद्धहुआ तब मैंने कहा कि प्रथम चित्त कहाजाता था और कामना करताथा परन्तु अब निश्चय हुआ कि जितने चराचर स्थावर जङ्गम व दृश्य अदृश्य पदार्थहैं सब में गोविन्दजीही का स्वरूप वर्त्तमान है इस बिचार से चित्तको शान्ति प्राप्तहुई तब ब्रह्माजी बोले कि अब तुम अहङ्कार को त्यागकरके गोविन्दजी का भजन करो तब फिर मैंने पूछा प्रथम मुझको यह उपदेश कीजिये कि भजन क्या वस्तु है तब ब्रह्माजी बोले कि गोविन्द का भजन इसको कहते हैं कि गोविन्दही को देखना, व गोविंद जीही को सुनाना व उन्हीं गोविन्दजी का नाम उच्चारण करना और श्री गोविन्दजी को सर्वव्यापी जानना व उनसे अतिरिक्त किसी वस्तुको न जानना न देखना न श्रवण करना अर्थात् सर्व्व-मयी गोविन्दजीही जानना उनसे अतिरिक्त सांसारिक पदार्थ किञ्चिन्मात्र भी अलग न जानना हे मूर्ख! यह मनुष्य शरीर चिन्तामणि है कि जिसको गोविन्दजी ने आत्मज्ञान प्राप्त होने के लिये दियाहै और जब आत्मज्ञान प्राप्त होताहै तब वह पुरुष स्वयं भगवत में लीन होजाताहै इस वास्ते नहीं दिया कि अपने को अभिमानरूपी समुद्र में बहाकर स्वरूप से अप्राप्तरहो तुम से पाखण्डियों से कंस हज़ार गुन धन्यहै कि वह श्रीकृष्णचन्द्र से बैरभाव रखकर भी भोजन के समय गोविन्दही का नाम लेकर कहता था कि हे गोविंद! तुम्हीं हो इसीप्रकार बैठने, उठने व बिहार आदि सम्पूर्ण सांसारिक कार्योंमें गोविन्दजीही का चिन्तवन किया करता था और श्रीकृष्णचन्द्रही निशिदिन मनमें ध्यान रखता था यदि तुम कंसकी तरह बैरभावसेही उन की भक्तिकरो तब भी भक्तिमान् होजावोगे इसलिये तुमको योग्य है कि गोविन्दजी से अतिरिक्त और किसी दूसरेको न प्राप्तहोवो

कंस यद्यपि देखने में कृष्णसे वैरभाव रखता था परन्तु अन्तष्क-रणसे मित्रता और प्रीति रखताथा देखो कंसने अपना प्राणतक देदिया लेकिन आग्रहको नहीं छोड़ा अर्थात् यहसमझता रहा कि मैं कुछ चीज नहींहूं जो कुछ है वह कृष्ण ही हैं यदि तुम ऐसी प्रीतिभी गोविन्दजी से करोगे तो गोविन्दजी तुमको कदापि परित्याग न करेंगे तब मैंने कहा कि हे ब्रह्माजी! तुम्हारे इस कथन से मेरी बुद्धि जातीरही और मैंने निश्चय किया है कि सम्पूर्ण सांसारिक व पारलौकिक जितने पदार्थ दृष्टि, श्रवण और कथन द्वारा निश्चित होतेहैं सब गोविन्दजीहीका स्वरूपहैं तब ब्रह्माजी बोले कि हे मित्र! गोविन्द आपही आप हैं मैं और तुम कोई चीज नहीं हैं तब मैंने कहा कि श्रीगोविन्दही हैं मैं उनसे कदापि भिन्न नहीं हूं तब ब्रह्माजी ने कहा कि जब तुमहीं नहीं हो तब तुमको भजनसे क्या प्रयोजनहै तब मैंने कहा कि मैं अपने कोही नहीं जानताहूं कि मैं क्याहूं परन्तु श्रवणमात्रसे जानताहूं कि मैं जीवहूं लेकिन मुझे यह भी ज्ञान नहीं है कि जीव क्या वस्तुहै तब ब्रह्माजी ने कहा कि जब तुम अपने कोही नहीं जानते हो तब जीव और ईश्वरका किसतरह से निरूपण करतेहो देखो जो तुमहो वही भगवान् है तब मैंने कहा कि यदि मैं भगवान्हूं तो तुमको क्यों नहीं जानता कि तुम कौन हो तब ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि तुम ब्रह्मको किसप्रकार जानसको अभी तुममें उसके जाननेकी शक्ति भी तो नहीं है अर्थात् तुमने ज्ञानके मार्ग को किंचिन्मात्र भी जानाहै और यदि तुम्हीं हो तो किसको जान तेहो और तुमको कौन जानताहै तब अद्वैतमें जानना नहीं बनता अब तुम यह निश्चय करके जानो कि मैंही हूं मुझसे अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है और जब तुमको यह निश्चय होजावेगा तब तुम जन्म, मरण व आवागमन से रहित होकर मोक्ष होजा-वोगे हे पराशरजी! तुम सम्पूर्ण कार्य्य करो और उन में गो-विन्द जी को जानकर उनके फलकी आश कभी न करो गोवि-

न्दजी कथनहै कि जितना नेत्र मूँदने में देरहोती है यदि उतनी ही देर पुरुष कामना से रहित होकर मेरे सन्मुख होवे अर्थात् पलमात्र भी निष्काम होकर मुझमें चित्त लगावे तो अनायास मेरारूप होजावे तब पराशरजी बोले कि अब कुछ और प्रश्न करो तब मैंने कहा कि मेरी यह इच्छा है कि श्रीगोविन्दजीके मुखारविन्द से उच्चरित कुछ वाक्य श्रवणकरूं तब ब्रह्माजी बोले कि श्रीगोविन्दजीके दर्शन करें तो यह दृढ़ निश्चय करो कि सम्पूर्ण पदार्थों में व मुझमें श्रीगोविन्दजीही का बासहै मैं कुछ भी नहीं हूं इसी समयान्तरमें विष्णुभगवान् भी गरुड़ पर सवार होकर आपहुंचे कि जिनका स्वरूप देखकर सम्पूर्णसभा उठखड़ी हुई और दण्डवत् प्रणामकिया परन्तु उनको देखकर अपने स्थान से किञ्चिन्मात्र भी न हिला, इसलिये कि मैं उस समाजमें न था इसलिये कि मैं अहङ्कार से भिन्न होकर उससमय विष्णुमें लय था और विष्णुभगवान् ब्रह्माजीके पास आकर स्थित हुये तब सम्पूर्ण देवताओं ने उनकी स्तुतिकी तब ब्रह्माजी बोले कि तुम तो शिवरूप हो मैं तुम से क्या कहूं तुमसे भिन्न अब कोई पदार्थ नहीं है तब विष्णुभगवान् बोले कि हे मेरेरूप! पराशर को यह भ्रमहुआ है कि मेरारूप क्या है इस वाक्य के सुनने से मुझको आश्चर्य उत्पन्न हुआ और निश्चय जाना कि विष्णुजीही हैं तब ब्रह्माजी बोले कि हे नारायण! तुम पराशरका वृथा नाम रखतेहो तुम स्वयंरूपहोकर अपने मुखारविन्दसे उच्चारण करतेहो कि यह मेरा स्वरूप क्याहै और पराशर कहांहै तब नारायणजी हँसकर बोले कि हे ब्रह्माजी! यदि मैं पूर्णहूं तो पराशर भी मैंही हूं जो तुम मुझमें और पराशर में भेद देखतेहो इस से निश्चित होता है कि तुम्हारी भेददृष्टि अभी निवृत्त नहीं हुई तब ब्रह्माजी बोले कि संसारका कारण आपही हैं और जो वस्तु संसारमें उत्पन्न हुई उस सबका कारण तुम्हीं हुये और जब सबका कारण तुमहुये तब भेददृष्टि भी तुम्हींसे उत्पन्नहुई तुम्हारे सिवाय

और कौन पदार्थहै कि जिससे भेददृष्टि उत्पन्न होगी, इस कथन से तुमको लज्जाभी नहीं आती तब विष्णुभगवान् बोले कि लज्जा तब करूं कि जब कोई दूसरा मध्यमें होवे और जब मैंही सर्वत्र व्यापहूं तो लज्जा किससे करूं इसतरह से विष्णु भगवान् के बचन सुनकर ब्रह्माजी अवाक् होकर मौन होगये जब यह वार्त्तालाप यहांतक पहुंचा तब पराशरजी मैत्रेयजी से बोले कि हे मैत्रेयजी! तुमभी संतहो कुछ कथनकरो तब मैत्रेयजीने उत्तर दिया कि हे पराशरजी! यह तुम्हारा कथन ब्रह्माकी सभा में उचित है क्योंकि उस सभा में ब्रह्मा और विष्णु इस विषय को पूर्णरूप से समझते व सुनते हैं और मैं इस विषय से अनभिज्ञहूं इससे क्या कहूं तब पराशरजीने उत्तर दिया कि तुम मुझीको विष्णु स्वरूप जानो तब मैत्रेयजीने कहा कि अभी विष्णुजीने कहा था कि मुझमें द्वैत नहीं है मैं लज्जा किससे करूं फिर ब्रह्माजीसे क्यों कहा कि तुम्हारे में भेद है तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी! तुमबड़े बुद्धिमान्हो तुम्हारी वाक्य सुनकर ब्रह्माजीको कुछ भी उत्तर न आया और तुम विष्णु भगवान् के कथन में भी दोष निकालतेहो परन्तु विचार करके देखो कि जब विष्णुजीने ब्रह्माजीसे कहाथा तब ब्रह्मा व विष्णुही थे अथवा और भी कोई दूसरा विद्यमान था, तब मैंने कहा कि जब ब्रह्मा विष्णुरूप थे तब ब्रह्मा को विष्णु ने किसप्रकार जाना तब पराशरजी बोले कि अब आप ज्ञात, ज्ञान, ज्ञेय और त्रिपुटीरूप संसार का भेद वर्णन कीजिये कि यह क्या वस्तु है तब मैत्रेयजीने उत्तर दिया कि जिससे तुमको संपूर्ण सांसारिक व पारलौकिक पदार्थों का भेद भासित होता है उसको ज्ञान और चित्स्वरूप को ज्ञाता और आत्मा को ज्ञेय समझो तब पराशरजीने पूछा कि हे महाराज! मैंने आपके कथनानुसार इस भेदको तो जाना परन्तु अब कृपा करके यह भी बतलाइये कि इस त्रिपुटी का प्रकाशक कौन है तब मैत्रेय जीने उत्तर दिया कि सर्व कर्मों का कर्त्ता एकही है

इसी से निश्चित होता है कि प्रकाश का कारण भी एकही है तब पराशरजी बोले कि जब सर्व कार्यों का कर्त्ता एक विष्णुजी ही हैं तब संसारको क्यों कहतेहो तुम्हारे इस कथन से तो मूर्खता दर्शित होती है तब मैत्रेयजी बोले कि मैं तुम्हारे इस कथन में मैं क्या शंका करूं जो कोई कहता है वही सुनता भी है तब पराशर जी बोले कि यह तुम्हारा कथन किसीप्रकार से अनुचित नहीं है अर्थात् मैं आपही कहता और आपही सुनताहूं हे मैत्रेयजी! अब मैं तुमको ब्रह्मसूत्र सुनाताहूं उसको ध्यान से सुनो—जब ब्रह्मा जी मौन होगये तब मैंने कहा कि हे विष्णुजी! तुम कहतेहो कि पराशर रूप हमारा है इस कथन से तुमको लज्जा नहीं आती अब यथार्थ कहिये कि आपका क्या रूप है तब विष्णुजी बोले कि यही रूप हमारा है और हमभी शिवरूप हैं तब मैंने कहा कि यदि आप शिवरूप हैं तो पराशर कहां रहा तब विष्णु भगवान् ने उत्तर दिया कि पराशर भी मैं ही हूं तब मैंने फिर पूछा कि जब तुम कहते हो कि पराशर मैं ही हूं तो फिर यह बचन तुम्हारा कथन किसप्रकार से योग्य होसक्ता है कि मुझको भ्रम हुआ तब श्री विष्णु भगवान् बोले कि यह संपूर्ण कर्म मुझी से उत्पन्न होते हैं यदि मैंने यह कथन किया इसमें तुमको क्या संशय है, तुम अपनेको ईश्वर मानते हो इसमें तुमको लज्जा नहीं आती तब मैंने कहा कि अब कुछ न कहिये चुप रहिये मैं तुम्हारा उपासक नहीं हूं विष्णु का उपासक शिव है मैं तो अपने स्वरूप को जानता हूं मुझे तुमसे क्या प्रयोजन है मेरे स्वरूप में तो अहं त्वं की प्राप्तिही नहीं है जो पुरुष स्वरूप से भ्रष्टहैं वे तुमको जानते हैं तब विष्णुजीने कहा कि हे पराशर! ऐसा मत कहो तब मैंने कहा कि मुझको किसी से लज्जा अथवा भयनहीं है क्योंकि मैंही एक अद्वितीयहूं तब ब्रह्माजी हँसकर बोले कि हे विष्णुजी! आप निरंजन हो आपसे भिन्न कोई पदार्थ किञ्चिन्मात्र नहीं है इस कथन को सुनकर विष्णु भगवान् अवाक् होकर

मौन होगये कि इसी समयान्तर में शिवजी जो कि पद और अपद के भेद से रहित थे आकर प्राप्त हुये और बोले कि हे ब्रह्मा, और विष्णुजी! पराशर कहां है एक अद्वितीय मैंही हूं तब विष्णु भगवान् बोले कि यदि शिवही सर्बमय है तब विष्णु भी शिवहीरूपहैं तब शिवजीने उत्तर दिया कि अहं, मैं अद्वितीय हूं मुझमें विष्णु कहां हैं विष्णु तो विश्वरूप कहते हैं मुझमें विश्व कालेश मात्रभी नहीं है मैं स्वयं निर्मलरूपहूं तब विष्णुभगवान् बोले कि विष्णु शिवरूप हैं क्योंकि जो शिवको अभेद जानता है वही शिव है तब शिवजी बोले कि मैं ऐसा बिष खाये हुये हूं कि तुमको भी बिष में मिलाकर खागया और इसीकारण से मेरा शिव नाम हुआ तब विष्णुभी शिवमें कैसे होसक्ते हैं बिना शिवरूपके और किंचिन्मात्र भी नहीं है अर्थात् सर्वत्र एक शिवही है तब विष्णुजी बोले कि हे शिवजी! विष्णु शिव कदाचित् नहीं होसक्ते शिव आनंदको कहते हैं वह आनंद दुःख का सापेक्ष्य है और विष्णुमें सुख और दुःख दोनोंका बास नहीं है तब पराशर जी बोले कि हे मैत्रेय! तुमभी कुछकहो तब मैत्रेयजी बोले कि जो तुम कहतेहो वही मैं सुनता हूं तब पराशर जी बोले कि न विष्णु हैं न शिव हैं एक केवल मैंही हूं और यह तो प्रसिद्धही है कि सबके आदि ब्रह्मा और विष्णु व शिव हैं ये सब मुझी से सिद्धहोते हैं, तब शिवजी बोले कि ऐसा मत कहो ब्रह्मा पूर्ण ब्रह्मको कहते हैं सो मुझमें पूर्ण और अपूर्ण दोनों में से कुछ भी नहीं है इसलिये कि मैं भेद और अभेद दोनों से रहित हूं तब ब्रह्माजी बोले कि विष्णु और शिवसे जो अतीत है वह मैं हूं ये कार्य और कारण दोनों पदार्थ मुझही से सिद्ध होते हैं और जो मैंने यह कहा कि विष्णु और शिव मुझी से सिद्ध होते हैं वह अभी तक अशुद्धहै क्योंकि मैं आपही आपहूं तब शिवजी बोले कि हे विष्णु अब आप अपना स्वरूप वर्णन कीजिये तब विष्णु भगवान् बोले कि मैं अपना स्वरूप किससे वर्णन करूं परंत अब

तुम्हारे पूछने से मैं अवश्य तुमको समझाऊंगा देखो यह जो संपूर्ण दृश्यमात्र जगत् है सब मेराही स्वरूप है और सब लोग भी ऐसाही कथनकरते हैं कि जगत् ब्रह्म है परन्तु हे शिवजी! तुम्हारा क्या रूप है उसको तो बतलाइये तब शिवजीने उत्तर दिया कि रूप और अरूप मेरा कुछभी नहीं है तब ब्रह्माजी बोले कि तुम अपनेको अपनी सत्तासे भिन्न जानते हो परन्तु मैं यह समझताहूं कि रूप और अरूप मुक्त और अमुक्तमैंहीहूं और स्थूल व सूक्ष्म भी हमीं हैं तब ब्रह्मा और विष्णुजी दोनों देवते मिलकर हँसे और इनका हँसना देखकर शिवजी हाथ जोड़कर विष्णुजी से पूछने लगे, हे मैत्रेयजी! चित्तको समाधान करके इस प्रसङ्गको श्रवण करो तब मैत्रेयजी ने पूछा कि महाराज! मन कहां है कि जिसको समाधान करूं परन्तु कृपापूर्व्वक यह बतलाइये कि शिवजी ने क्या प्रश्न किया तब पराशर जी बोले कि चित चैतन्य से भिन्न हैं तब मैत्रेयजी ने कहा कि मनहै न चित्तहै अब आप ब्रह्मसूत्र कथन कीजिये तब पराशरजी बोले कि जब चित्तही नहीं है तब किसप्रकार से पूछते हो कि ब्रह्मसूत्र कथन कीजिये तब मैत्रेयजी ने उत्तर दिया कि मुझको इस,उस और समानता व नीचतासे कुछ प्रयोजन नहीं है अब आप ब्रह्मसूत्र कथन कीजिये कि सुननेकी मेरी अभिलाषा है तब पराशरजी बोले कि शिवजी ने कहा कि वचनही छैल है इससे मौनहोरहो तब विष्णुजी मौन होगये तब शिवजीबोले कि हमारे प्रश्नका उत्तर आप न देकर क्यों मौन होरहे हैं इतना कहकर शिवजीभी मौनहोगये इसप्रकार जब शिव और विष्णु दोनों मौन होगये तब ब्रह्माजी बोले कि हे शिवजी! तुमतो मौनको उत्तम समझके मष्टहोरहेहो परन्तु मौनमें इतना बोलनाहै कि जो कथन मात्र में न आसके मौनसे भ्रमका नाश नहीं होता जो पुरुष भ्रम से रहित हुआ है वही मौनहै तब श्रीशिवजी बोले कि तुम्हारा यह कथन तो निस्संदेह सत्यहै परन्तु जब बुद्धिहीनहीं है तब क्या

कहाजावै जो पुरुष शरीर से आनन्दित रहकर सुफल है उसी को वचन के उच्चारण करने की शक्तिभी है और जिस पुरुष के मनही वश में नहीं है वह इसप्रश्नका उत्तर नहीं देसक्ता इससे इससंवादसे क्या प्रयोजनहै जो स्वरूपहै वह कहनेमें नहीं आता और जो कहनेमें आताहै वह तुच्छहै तब विष्णुभगवान् बोले कि आपका कथन सत्यहै परन्तु यह आप नहीं जानते हैं कि मुमुक्षु को पहिली अवस्था में उचित है कि ज्ञानकरे या श्रवण मन्तव्य निदिध्यासन करे जब स्वरूप को जाना तब सफल हुआ परंतु विना विचार के ज्ञान प्राप्त नहीं होता तब कहना उचित समझ कर शिवजी बोले कि जब आपही है तब कथन से क्या प्रयोजन है और तुम्हारा कथन है कि स्वरूप को पाकर सुफल होता है यदि ज्ञानकी वृत्ति नहीं है तब स्वरूप का जानना भी नहीं है और जब स्वरूप काही ज्ञान नहीं तब तुम्हारा रूपही कहां है तब विष्णुजीने कहा कि स्वामी और सेवक आपही है तब शिव जी बोले कि जब आपही है तब क्या कथन करे तब विष्णुजी बोले कि यदि मौन रहना उचित समझो तो आपका यह विचार अनुचित है क्योंकि यह वाक्य इन्द्रिय का यही कथन विषयहै कि कर्म है यदि वाक्य उच्चारण से प्रयोजन न होता तो अनन्त शब्दोंकीही उत्पत्ति न होती,यह वाक्य केवलगोविन्दजीका भजन करने के लिये उत्पन्नहुई है परन्तु जो पुरुष विना किसी आश्रय के गोविन्दजी का भजन करता है उसीको परमानन्द की प्राप्ति होती है क्योंकि कामना के नाश के विना मुक्ति नहीं होती और यह ग्रहण और त्याग दोनों केवल दुःखही का रूपहैं इसलिये हे शिवजी ! अहङ्कार का त्याग करके गोविन्द का भजन करो कि जिस से आवागमन से रहित होकर मुक्त होजावो क्योंकि हमारे भजन के प्रभाव से अपने को क्या अहङ्कार को भी न देखोगे और जब आपको न देखोगे तब ग्रहण और त्याग स्वयं निवृत्त होकर आवागमन से रहित होजाउगे देखो जिस वाक्य

से ॐनमो वासुदेवनारायण उच्चारण नहीं होता वह जिह्वा कथनमात्र को जिह्वा है परन्तु असल में मांसका टुकड़ा व चर्म समझना चाहिये कि वह निष्प्रयोजन मुख में लगाहै इसलिये हे मित्रो! कामना का त्यागकरके भजन करो क्योंकि शरीर स्वप्नवत् क्षणभंगुरहै अर्थात् एकक्षणमात्रमें इसका नाश होजाता है इसलिये नारायणके भजन का त्याग न करो यदि तुम भजन करोगे तो तुमको संसाररूपी सर्प कभी न डसेगा गोविन्दजी का भजनही इससंसाररूपी समुद्र में नौका है जब तुमको यह निश्चित होजावेगा कि विष्णुही सर्वव्यापी व अन्तर्यामी है तब संसारसमुद्र का तुमको भान भी न होगा न नौकाकी आवश्यकताही होगी और अहङ्कार को त्यागकर अपने को कुछ भी न समझना यही गोविन्दजी का भजन है तब शिवजी बोले कि विष्णुसे विष्णुरूपी फांसीमें फँसता है यदि शिवजी का भजन करे तो मुक्त होजावे क्योंकि शिव किसी एक स्थानपर स्थित नहीं रहते अर्थात् सर्वत्र सर्वस्थानों व पदार्थ चराचर जङ्गम में विविध स्वरूपधार के व्यासहै तब विष्णुजी बोले कि यदि शिव जीका स्थान नहीं है तब शिव कहांहैं हे महाराज! शिवजी तुम्हारा भी स्थान है तब शिवजी बोले कि आपही स्थान बतलाइये तब विष्णुजी बोले कि शिवका अर्थ आनन्दहै और इसीको स्थान कहतेहैं इसलिये कि वह स्वयंआनन्द स्वरूप है तब शिव जी बोले कि मैं प्राचीन अतीतहूं और गृहस्थ हो इसलिये कि तुम बड़ेभाई हो तब विष्णु जी बोले कि गृह इसी को कहते हैं कि सब हमीहैं तब शिवजी बोले कि तुम्हारा स्वरूप चतुर्भुजी है अथवा और भी किसीप्रकार का है तब विष्णुभगवान् बोले कि यदि एक मैंहीहूं तब चार किसतरह से होसके हैं और भुजा कहां हैं हे मेरेरूप! तुम श्रवण करो कि यदि तुम न होते तब तुमहीं तुमहो ऐसा न कहते तब शिवजी बोले कि यदि हम नहीं हैं तब तुम कहांहो तब विष्णुजी ने उत्तर दिया कि हमारे

में तुम कहां हो केवल हमीं हैं इसतरह उत्तर देकर फिर बोले कि हे शिवजी ! तुम श्रीविष्णुजी का भजन करो तब शिवजीने कहा कि जब मुझको किसीप्रकारका कष्ट प्राप्तहोवे तब मैं भजन श्रीगोविन्दजीका करूं सो मैं दुःख सुख व कष्ट क्लेश सबसे न्याराहूं अर्थात् ये सब मुझको किसीप्रकार बाधित नहीं करसके हे विष्णुभगवान् ! तुम्हारी भक्तितो उत्तमहै परन्तु यह भी तो बतलाइये कि जब आपकी भक्ति उत्तमहै तो अधम कौनवस्तुहै तब विष्णुजीने उत्तरदिया कि जो कोई मुझसे अतिरिक्त समझताहै उसी को अधम समझना चाहिये तब शिवजीबोले कि अतिरिक्त क्या चीजहै तब विष्णुजी बोले कि अतिरिक्तइसीका नाम है कि मैं विष्णु विद्यमानहूं परन्तु तुम कहतेहो कि तुम विष्णु नहींहो तब फिर शिवजीबोले कि यह तो तुम स्वयंअपने मुखारविंदसे कहते हो कि मैं विष्णु नहीं हूं कोई दूसरा तो नहीं कहता तब विष्णुभगवान् बोले कि हे पराशरजी ! अब आप बतलाइये कि आपका निश्चय क्या है तब मैंने उत्तर दिया कि प्रथम आप यह बतलाइये कि मैं कौन हूं इस तुम्हारे कथनको हम पूर्णरूप से निश्चयकरलेंगे तब विष्णुभगवान् बोले कि तू बड़ा निर्लज्जहै तब मैंनेकहा कि मैं दिगंबर हूं इसी से आप मुझको निर्लज्ज कहते हैं बतलाइये कि मैं किससे लज्जाकरूं हे विष्णु जी ! तुम्हारा क्या रूप है तब विष्णु भगवान् बोले कि हमारा शिवरूप है तब मैंने कहा कि हे शिवजी ! तुम्हारा क्या रूप है तब शिव जी बोले कि हमारारूप विष्णु है तब मैंने कहा कि शिव है न विष्णु है एक शिवरूप मैं ही हूं हे मैत्रेयजी ! उस सभाके संवाद से यह निश्चित हुआ कि आत्मा से अतिरिक्त कोई वस्तु किंचिन्मात्रभी नहीं है अब कहिये कि आपको भी इस विषय में निश्चित हुआ या नहीं तुमतो भ्रमसे रहित होकर सदा एकरस रहते हो इसलिये कि भगवान् ने वामनरूप धारण किया है क्या माया मोह धारण किया है ऐसा न होवे, यदि तुम निस्संशय एक रस

अभेद वर्णन किये जाते हो तो हम तुमको मारें तब मैत्रेयजी ने कहा कि मैं नहीं हूं तुम कहो कि तुम क्या वस्तुहो और एकरस किसको कहते हैं तब पराशरजी बोले कि एकरस उसको कहते हैं कि जो शुद्ध व सबके संग से रहित होकर स्थूल व सूक्ष्म से भी रहित होवे तब मैत्रेयजीने कि मुझको तुमसे बड़े दर्शित होतेहो कि मानो दूसरे ब्रह्मा का रूपहो तब पराशरजीने उत्तर दिया कि मुझमें एक और दोकी प्राप्ति नहीं है मैं स्वयं अकेला हूं ब्रह्मा और विष्णुको मैंने ही उपजाया है परन्तु यदि तुम अतीत हो जावोगे तब तुम्हारी संपूर्ण कामना नाश होकर तुमको बड़ा सुख व परमानन्द प्राप्तहोगा तब मैत्रेयजीने पूछा कि मैं और उपाय नहीं जानता हूं परन्तु वैराग्य करूंगा इससे आप दयालु होकर मुझको वैराग्यकी प्रक्रियाबतला दीजिये तब पराशर जी बोले कि तुम धन्यहो कि यदि तुमको वैराग्य की इच्छा हुई है तो अतिशीघ्र वैराग्यवान् होजावो अर्थात् वस्त्रादि शरीर पर से उतार के पृथ्वीपर डालदो औरशिखा व सूत्र से भी शीघ्रही मुक्त होजावो सब लोग कहेंगे कि पराशर ने मैत्रेय को ऐसा उपदेश दिया कि वह अतीत होगया और तुम्हारी दया से मेरी भी कीर्त्ति और यश होजावेगा परन्तु यदि कोई तुमसे पूछे कि आपने किस अवस्था से वैराग्य किया है और किसके साथ राग किया है तुम कहना कि गृहस्थी से त्यागी होकर श्री विष्णु भगवान् में राग किया है और अगर कोई पूछे कि भगवान् के प्राप्त होने का कौनसा मार्ग है तब तुम कहना कि भक्ति का करना योग्य है और अगर कोई पूछे कि भक्ति क्या वस्तु है तब तुम उसको उत्तर देना कि राम राम भजन करना योग्य है और हे मैत्रेयजी! तुम संसार को त्याग करके रामभजन करो और यह प्रार्थना करो कि भगवान्! मैंने तुम्हारे नामका बहुत भजन कियाहै इससे संपूर्ण संसार के मनुष्यमुझको परमसिद्ध कहें और हमारी पूजा बहुत होवे और शरीर के त्याग करने पर वैकुण्ठ में वास करूं

और अप्सरों के साथ वहां जाकर क्रीड़ा करूं हे मैत्रेयजी ! सम्पूर्ण अतीत तुम्हारे देखते हुये इसीप्रकार से हुये हैं इससे तुमको भी उचितहै कि इसी पूर्वोक्त क्रियासे अतीत होजावो और यह मंत्र और धर्म वैराग्यके एक वेद है और दूसरा शास्त्र है ऐसे हम कहेंगे तब तुम कहतेहो कि बहुत अच्छा है और सत्य है और यदि मैं तुमसे कहूं कि आत्मतत्त्व को प्राप्त होकर आपको जानो कि मेरा स्वरूप क्या है तब तुम गूंगे की तरह चुपचाप खड़े रहतेहो और आश्चर्य को प्राप्तहोते हो हे मूर्ख ! जो यह दृश्य है संपूर्ण प्रकर और दंभ है अर्थात् बिलकुल व्यर्थ है इससे हे मैत्रेय ! मनसे वैराग्य करो कि मनके स्वभाव को त्याग दो जो कुछ ऋषिलोक और पितृलोक है तिन दोनों से परेहो और जो देखने में आताहै उसको लौकिक और शास्त्रीय सब जानलो कि स्वप्न है केवल सार वस्तु एक श्वासमात्र है तब मैत्रेय जीने पूछा कि हे महाराज ! काल का दंड बड़ा बली है उससे अपनी रक्षा के लिये मैं चाहता हूं कि अतीत के लक्षण और मार्गका दया-दृष्टि से आप मुझको उपदेश कीजिये तब पराशर जी बोले कि तुम अतीतहोजावो और कुछभी न करो क्योंकि तुम्हारी रक्षा इसीप्रकार है तब मैत्रेय जीने फिर पूछा कि मैं अहंकारके त्यागने को समर्थ नहीं हूं आप भगवान् की भक्ति उपदेश कीजिये कि जिससे हम उसमें प्रेम करके भगवान् को प्राप्तहोवें और ग्राह-रूपी संसार से छूटें तब पराशरजी बोले कि इसीको भक्ति कहते हैं कि अपनेको ही भगवान्का स्वरूप जानकर और यह जो नानाप्र-कारका दृश्य प्रपंचहै इसको एक गोविंदही निश्चयकरके अतीत्व का बोझा क्यों अपने शिरपर उठाते हो जैसा बोझा गृहस्थ का है वैसाही अतीत्वका भी है इनदोनों अर्थात् गृहस्थ और अतीत को मत देखो केवल एकआत्माको निश्चयकरके और संसारको त्यागकर जब इसप्रकार निश्चय होवे तब काल के भयसे रहित होजावेगा क्योंकि भ्रमका निश्चय सोही नाश होताहै और उस

आत्मज्ञान का सुख जितना प्राप्तहोताहै उसको जिह्वासे वर्णन नहीं होसक्ता क्योंकि यह अनन्त और निरतिशय है. और काल का भय ऐसा भयानकहै कि यदि कोई किसीसे कहे कि अमुक दिन तुम्हारा देहान्त होगा तो उस पुरुषको पहिलेहीसे शोक प्राप्तहो-जाता है और जिन्दगी उसको कठिन होजाती है और जिस पुरुषने इस मिथ्यासंसारको त्यागकर आत्मज्ञान को प्राप्त किया है उसके चित्तसे कालका भय सम्पूर्ण संशय सहित नाश को प्राप्त होजाता है और सोते समय गोविन्दही का नाम उच्चारण करता है और बोलने में भी विष्णुभगवान् काही कीर्त्तन करता है और चलने, फिरने, बैठने, उठने, खाने, पीने इत्यादि यावत् सांसारिक कार्यहैं सबमें श्रीगोविन्दजीहीका रूप देखताहै क्योंकि यह आनन्दरूप आत्माको प्राप्तहोकर जिसजगह बैठताहै बैठाही है जब चलताहै तब चलताहीहै और रोताहै तब रोताहीहै और सो-ताहै तब सोताहीहै जब हँसताहै तब हँसताहीहै क्योंकि सर्व व्य-वहारमें आनन्दरहताहै परन्तु यह अखण्डसुख उससमय प्राप्तहोता है जब कि निष्कपट होकर निश्चलबुद्धिसे जानताहै कि आत्माही सब में पूर्ण है और सुख से हर्ष व दुःख से शोक न करे और अपने को शरीरसे भिन्न जाने जब जीवके शरीरसे भिन्न जानता है तब शान्ति आतीहै और जब शारीरिक धर्मोंसे रहित होताहै वही मुक्तहोता है व हर्ष और शोक से मुक्तहोकर इन्द्रियों और तत्त्व और गुणको सत्य देखता है सो दृष्टिभेद करके देखो कि यह सम्पूर्ण तुम्हीं से सिद्ध होतेहैं नहीं तो कहाहैं आपही नाम रखकर आपही उसमें फँसाहै यह सम्पूर्ण भेद शुभ और अशुभ तुझको इसी निमित्त से होताहै कि तू आत्मज्ञान को नहीं जा-नता और अपनेको शरीर मानकर हर्ष, शोकके बन्धनमें फँसता है हे मूर्ख ! अच्छी तरहसे देख कि तुम्हारे बिन कौनहै और जब भ्रमका आवरण नाश होता है तब निस्संशय आपही आपहै हे मैत्रेयजी ! यह संपूर्ण मेरे उपदेश कि जिनपर तुम्हारा निश्चय

नहीं है तुम्हारे सन्मुख व्यर्थ हैं अर्थात् जब कोई उपदेश किसी की समझ में न आवे तब उसको उस उपदेश का करनाही व्यर्थ है और जो कर्म मैं तुमको उपदेश करता हूं तुम्हारे निकट सब व्यर्थ होता है इससे अब मैं तुमसे कुछ भी उपदेश न करूंगा हमारा वाक्य अद्वितीय है वह उसी पुरुष को लाभ दायक है कि जिसकी मति अद्वितीय होवे सांसारिक सुख मनुष्यों को ऐसे हानिदायक हैं जैसे कि कुत्ते के लिये सूखे हाड़—अर्थात् जैसे कुत्ता बेमांस की सूखी हड्डी को अपने मुख में लेकर दांतों से वारंवार दबाता है और हड्डी सूखी होने के कारण उसके तालू में छिदकर खून आने लगता है कि जिस खून को कुत्ता उस हड्डी से निकला हुआ जानकर और भी आनंद में आकर उस सूखी हड्डी को चबाकर आनंद मानता है परंतु यह नहीं जानता कि यह मेराही खून है इसीतरह जिन मनुष्यों को सांसारिक सुख क्लेश दायक हैं उनको मेरी वाक्य क्या सुख दायक होगी तब मैत्रेयजी बोले कि इतिहास वर्णन कीजिये तब पराशरजी बोले कि तुमको इतिहास से क्या प्रयोजन है मैं बाह्य दृष्टि नहा हूं तुम्हारे अन्तष्करण को जानता हूं तुम अहंकार में फँसे हो तुम्हारे पाखंद को अच्छीतरह से जानता हूं तुम्हारी कामना अनेकप्रकारके सकाम कर्मों में लगी है इसलिये मैं तुमको जब तक इन वासनाओं से निवृत्त हुआ न देखूं आत्मज्ञान किसतरह से उपदेश करूं परन्तु फिरभी तुमको समझाता हूं कि न मैं हूं न तुमहो न यह संसारही है केवल एक अद्वैत आत्माही सारहै यह तुम पूर्णरूप से निश्चय करो तब मैत्रेयजी बोले कि अभी आप कहते थे कि मैं तुमको उपदेश नहीं करूंगा परन्तु अब उपदेश करतेहो यह क्या बात है तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी! मैंने आजतक किसी को इसलिये उपदेश नहीं किया था कि मेरे उपदेश से किसी की कामना सिद्ध नहीं होती, और जब किसी पुरुषकी कामनाही सिद्ध नहीं होती तो कहना व न

कहना बराबरहै अपने चित्त से अनुमान करो कि जो पुरुष अपने प्रयोजन सिद्ध कर लेता है वह मौन हो जाताहै इसी को मौन कहते हैं और जब मैंने कहा और तुमको निश्चय न हुआ तो इस कथन से क्या प्रयोजन निकला सब लोग कहते हैं कि संत-लोग अपना मूल मंत्र अर्थात् असली उपदेश किसी को नहीं बतलाते हैं उनका यह कथन बिलकुल सत्य है, संतों का उपदेश इसी लिये होताहै कि उनके कथन को सुनकर उसपर निश्चय करे और जब सुनकर यथावत् निश्चय न किया और संतों के वाक्यको न माना इसी को छिपाना कहते हैं संतलोग और वेद पुकारकर कहते हैं कि संपूर्ण संसार व सांसारिक पदार्थ नाश-वान् हैं केवल एक विष्णुही नाशरहित व अद्वितीय है यदि इन संत और वेदों के कथनपर निश्चय न करे तो संतोंके कथन और वेद के वाक्यों में क्या दोष है उनपर विश्वास न करके उनको दोष लगाना मिथ्याहै जो वेद में लिखा है वह सब सत्यहै और संतोंके वाक्यभी किसीप्रकार से अनर्गल नहीं हैं इसलिये कि संतों के बचन और वेद के लेखसे यही साबित होताहै कि संपूर्ण सांसारिक पदार्थ नाशवान् हैं और आदि, अंत व मध्य सबपदार्थों में केवल ब्रह्महो का प्रकाशहै इस वेद वाक्य को मैंने तुमसे यथा-वत् वर्णन किया परन्तु तुमको विश्वास व निश्चय नहीं होता यही संतों से दुराभाव है हेमैत्रेयजी ! ब्रह्मा के सदृश कोई वि-द्वान् न होगा श्री विष्णुभगवान् का कथन है कि जब केवल मैंही हूं तब कोई प्राणी अंतर किसप्रकार से रखसक्ता है यदि मेरे इस कथन और ब्रह्मा के वाक्यपर सब लोगोंका विश्वास है कि ब्रह्माका कथन सत्यहै और विश्वास नहीं करतेहैं इसी से वेद और संतोंके सिद्धान्त का रहस्य छिपाहै और सर्व से छिपा-वना यही है कि स्वरूपचैतन्य है और बुद्धि को स्वरूपमें प्राप्ति नहीं है तो भगवान् का भजन करो और निश्चयकरो कि भग-वान् के विना किञ्चित् वस्तु नहीं है यह मनुष्यका शरीर चिन्ता

मणिहै सो तुमको प्राप्त हुआ है परन्तु तुम इसशरीर की महिमा और गुणों को नहीं जानते हो और संसारको त्यागते हो इससे तुमको लज्जा नहीं आती यह निश्चयकरो कि शरीर की स्थिति श्वास पर है जब श्वास निकलगई तब संपूर्ण पदार्थ जो तुमने अभिमान से कल्पित किये हैं वह स्वप्नके पदार्थ समान मिथ्या हो जावेंगे—हे मैत्रेयजी! जबतक तुम हौ तबतक खाने और पहिनने की चिंता न करो और प्रसन्न मनहोकर गोविंदका भजनकरो और यह निश्चयकरो कि सर्वत्र गोविंदही है और यदि कामना से तृप्त न हुआ जो चक्रवर्ती राजा मरजाता है और संपूर्ण पदार्थ व छत्र और राज्य व प्रजा सब सामग्री बनी रहतीहै और आपचला जाता है तब तुम अभिमान व अज्ञान की ग्रंथि जो तुम्हारे हृदयमें स्थितहै उसको त्याग करो तब सर्व कामना स्वयंनाश होजावेंगी व तुम निर्भय होकर गोविंद का भजन जो कल्याण करताहै सो करो जो तुम्हारी प्रारब्धि में वह किसी प्रकार से न्यूनाधिक्य और अन्यथा नहीं होसक्ता और यदि कामना करोगे तब भी वही है और तुमको यह मनुष्य का शरीर जो परमेश्वरने कृपा करके दियाहै वह स्वर्गलोक पितृ-लोक और परलोक परायण हो शरीर की स्थिति प्रारब्ध के आधीन है इससे तुमको क्या कामहै कि जो इसशरीर के निर्वा-ह की कामना और यत्न करते हो शरीर के निर्वाह के लिये प्रार-ब्धहै इसकी कभी चिन्ता न करना चाहिये तुम इसविषय में क्यों चिन्ता करते हो निर्भय होके गोविंदजी का भजनकरो क्यों कि जीना श्वाससे अधिक नहीं है श्वास जो बाहर जाती है उस की यह आश नहीं कि फिर भीतर आवे या न आवे फिर निश्चय रखते हो और कहते हो कि वैराग्य करूं हे मैत्रेयजी! तुम ऐसा वैराग्य करो कि गोविंद से अतिरिक्त और कुछ भी न देखो और न जानो तब मैत्रेयजी बोले कि मैं भजन गोविंद जी का किस तरहसे करूं मुझको मन, बुद्धि व चित्त, अहंकार ये भजन नहीं

जे

करनेदेते हैं तब पराशर जी ने कहा कि तुम मुझको केवल पाखंडी दिखाई देते हो कभी मन और बुद्धि ने तुमको मना किया और कहा है कि भजन न करो तुम जो मन और चित्त से भगवान् होते हो सो कहो कि मन बुद्धिका क्या रूपहै तब मैत्रेयजी बोले कि मेरी दृष्टि में मन और बुद्धि का स्वरूप नहीं भासित होताहै कि किस तरह का है तब पराशरजीने उत्तर दिया कि इसी से मैं तुम्हें पाखंडी कहताहूं जिसका स्वरूप ही लक्षित नहीं होता वह भजनको किसप्रकार से मना करेगा परन्तु यह तुम्हारे मनका संकल्प विकल्प है और उसी के ऊपर अहंकार करते हो इससे तुम संकल्प का त्याग करो और आपही आप गोविंद हो इससे अधिकतर परमार्थ नहीं है तुमको उचित है कि मन और बुद्धि की ओर कदापि दृष्टि न करो कि जिसमें संकल्प विकल्प कुछ भी नहीं है वही अनीति है वही गृहस्थ है काल का वचन है कि मेरी फांसी सम्पूर्ण संसारी जीवधारियों के गलेमें दृढ़ता से पड़ी है वह किसी के काटने से नहीं कटती परन्तु वह पुरुष उस फांसी से निर्मुक्त होताहै कि जिसके हृदय में यह दृढ़ निश्चयहै कि ब्रह्मा से लेकर पिपीलिका पर्यन्त सब जीवों में एक अद्वैत नारायणही का वास व प्रकाश है अर्थात् एकही आत्मा है उससे अतिरिक्त किञ्चिन्मात्र भी नहीं है तब मैत्रेयजी बोले कि मैंने तुमको अनेकप्रकार और अनेक युक्तियों से उपदेश किया अब तुम यदि न्याय करके व चित्तको एकाग्र करके न बिचारो तो मेरा क्या दोषहै इस विषयमें हम एक ब्राह्मण का इतिहास तुमसे वर्णन करते हैं उसको ध्यान देकर श्रवण करो—पूर्व काल में एक ब्राह्मण ने एकहजार वर्षतक विष्णु भगवान् की उपासनाकी तब विष्णु भगवान् उसकी उपासना देखकर प्रसन्न हुये और उस विप्र के सन्मुख आकर बोले कि हे विप्रजी! मुझमें और अपने में तुम किञ्चित् भेद न देखकर यह जानो कि जो कष्ट तुम करतेहो वह सब मुझीको प्राप्त होता

है इस लिये कि मैं तुम्हारे अन्तर्गत व वाहर सब स्थानों में प-
रिपूरित हूं तुम मुझको अपना रूप व अपने को मेरा स्वरूप
निश्चय करके जानो और प्रसन्न वदनहो विष्णु भगवान्के इस
कथन को सुनकर ब्राह्मण अपने मनमें विचार करने लगा कि
मैंने सुना है कि जब कोई पुरुष ईश्वरके भजन में प्रवृत्ति करता
है तब देवता उससे ईर्षा करके उसके भजन में बाधक होकर
उसका चित्त भजनसे हटा देते हैं यह विचार के विष्णुजी से
बोला कि हे असुर! मैं मूर्ख नहीं हूं कि जो तुम्हारी माया से
अपने निश्चय और कर्मको त्यागदूं तुम जहांसे आयेहो वहींको
पधारो नहीं तो मैं तुमको अपनी योग अनल से भस्म करदूंगा
तब विष्णु भगवान् ब्राह्मणके इस कथनको सुनकर प्रसन्न हुये
और बोले कि यदि कोई अपने आग्रह अर्थात् हठको न त्यागे
तो उससे हमारा उपदेश करना व्यर्थहै इतना कहकर उसविप्र
के सन्मुख से विष्णु भगवान् अन्तर्द्धान होगये हे मैत्रेय जी!
इससे तुम अपनेको आपहीजानो और मुक्तहोवो,हरिःॐतत्सत्॥

इति ब्रह्मसूत्रइतिहास समाप्तम्, शिव! शिव!!

श्रीगणेशाय नमः

हरिःॐतत्सद्ब्रह्मणे नमः

अथ कच और उसके पिता बृहस्पति ब्राह्मणका इतिहास प्रारम्भ॥

एक समय कच अपने पिता बृहस्पतिजी से बोला कि हे
तात! मैं सांसारिक और शास्त्रोक्त दोनों प्रकार के व्यवहारों को
तो भलेप्रकार से जानता हूं परन्तु अपने स्वरूपको नहीं जानता
हूं कि वह क्या और किस प्रकारका है इस विषय में मुझे बहुत

बड़ी सन्देहहै सो आप मुझको अपना प्रियपुत्र जानकर कृपादृष्टि से मेरे इस सन्देहको रूपका विवरण भलीप्रकार समझाकर निवृत्त कीजिये कि जिसके ज्ञात होने से मैं संशय रहित होकर सुखी रहूं जब बृहस्पतिजी ने अपने पुत्र के इसप्रकार से विनययुक्त वचन सुने तब उसकी सन्देहके छुड़ाने के लिये बोले कि तुम ध्यान धरकर अद्भुत व अपूर्वविष्णु क्याहै और तुम कौनहो इसभेदको श्रवणकरो देखो यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जो तुम्हारी दृष्टि में अनेक प्रकारके संकल्प विकल्प उत्पन्न करताहै केवल प्रकाशरूपहै परन्तु इसके प्रकाशक तुम्हीं चैतन्यरूप से आदि अन्त रहित विद्यमान हो व अतिलघु पिपीलिका से लेकर हस्ती तक सबमें तुम्हाराही प्रकाशहै और तुमको सबलोग उसका प्रकाशक कथन करते हैं इस विषय में ब्रह्माके मुखसे सुनेहुये सारस और उसकी स्त्री के वार्तालापको तुम्हारी सन्देह निवृत्त होनेके लिये तुम्हें सुनाताहूं तुम स्थिरचित्त होकर व ध्यान धरके श्रवणकरो मुझे आशा है कि इस इतिहासके श्रवण करने से यह तुम्हारा संदेह छूटजावेगा तब कच हाथ जोड़कर बोला कि हे पिताजी! आप उस इतिहास को सविस्तर मुझको अपना प्रियपुत्र जानकर पुत्रभाव से श्रवण कराइये मैं उसके सुननेके लिये सब कामोंको छोड़कर व सम्पूर्ण सांसारिक विषयों से अपने चित्तको खींचकर सावधानता से कान लगाकर श्रवण करनेपर उद्यतहूं तब बृहस्पतिजी बोले कि एक समय एक सारसपक्षी ने अपनी स्त्रीको समझाया कि हे प्रियाजी! अर्थात् हे मेरे रूप! यह जो संपूर्ण संसार अनेक प्रकारके रंगाविरंगे रूपों से दर्शित होता है यह बिलकुल अस्थिर व नाशवान् है इसको पूर्ण रूपसे असार समझकर मृगतृष्णा के जलकी नाईं केवल भ्रममात्रही समझकर वह जो अधिष्ठान ब्रह्म, मन, वाणी व सर्व इन्द्रियों का दृश्यनहीं है यह निश्चय जानो कि जो अधिष्ठानहै वही सत्है तब उसकी स्त्री अर्थात् सारसिन बोली कि जो मन, वाणी का दृश्य नहीं है

उसपर किसप्रकार से निश्चय होवै तब सारस ने कहा कि मेरे हेरूप! जब दृष्टि अधिष्ठान में जाती है तब निश्चय होता बिना अधिष्ठान के दर्शित हुये निश्चय कदापि नहींहोसक्ता तब सारसिन ने उत्तरदिया कि अधिष्ठान क्याहै और कौनहै तब सारस बोला कि जो कहता है कि अधिष्ठान क्या और कौनहै उसीको अधिष्ठान कहते हैं तब सारसिनने पूछा कि अधिष्ठान क्या वस्तु हैं तब सारस ने कहा कि वही है जो कहता है कि क्या है और कौन है तब उसकी स्त्री बोली कि वह जो कहता है कि मैं हूं परन्तु अपने स्वरूप को नहीं जानती हूं तब सारस बोला कि तेरा सत् चित् आनन्दस्वरूपहै तब सारस की स्त्री हँसकर बोली कि हे निर्बुद्धि! यह सम्पूर्ण लक्षण जो तूने अपनी अज्ञानता से मुझ में स्थित किये हैं सो तो द्वैत से युक्त हैं इसलिये कि बिना असत् के सत्का भान किसी प्रकार नहीं होता सत् और असत् इन दोनों का परस्पर व्यवहार ब्रह्माजी ने स्थापित किया है और इसी प्रकार चित् भी अर्थात् जड़ उचित के बिना कदापि नहीं रहसक्ता और जहां आनंद का वास होताहै वहांही दुःख भी रहताहै सो मैं इन सम्पूर्ण वैकारिक पदार्थों से रहित होकर शुद्ध रूपहूं परन्तु मुझको अपना स्वरूप निश्चित नहीं है इससे दया करके यह बतलाइये कि मेरा स्वरूप क्याहै इसीसमयान्तर में श्रीभगवान् विष्णु जी के वाहन गरुड़जी भी आ उपस्थित हुये और बोले कि संपूर्ण चराचर, स्थावर, जङ्गम आदि में सर्वत्र श्रीनारायण विष्णु भगवान् पूर्णरूप से पूरित हैं और उन में द्वैतकी गंध भी नहीं है तब सारस ने पूछा कि हे गरुड़जी! आप के मुखारविंद से ऐसा कथन अनुचित ज्ञानपड़ता है कि द्वैत निश्चय होताहै जब केवल विष्णुही हैं तब जगत् कैसे होसक्ता है आपके इसवचन को मेरी स्त्री कदापि प्रतीति न करेगी तब गरुड़जी बोले कि तुम्हारी स्त्री अज्ञान है देखो एक तब कहा जाताहै जब दूसरा भी होवे और जब केवल स्वरूपही है तब एक

और दो किसी प्रकार से कथन व श्रवण अथवा देखने में नहीं आसक्ता हे सारस! जो पुरुष अपने मुखसे विष्णुको कथन करता है वह विष्णु के रूपको कदापि नहीं जानता इसलिये विष्णु भगवान् मन व वाणी से अगोचर हैं यह स्वरूपका कथन केवल अज्ञान से होताहै श्रीविष्णु भगवान् एक अद्वितीय हैं,तब सारस ने कहा कि हे गरुड़जी! यदि सर्वत्र विष्णुको व्यापक मानके सब लोग स्वयंब्रह्म अर्थात् आपही आप कहते हैंतो कुछ चिन्ता की बात नहीं है हां यदि विष्णुभगवान् का नाम सब लोग अपने चित्त से भुलादेवैं तो पूर्णरूप से निश्चितहै कि वे लोग सम्पूर्ण क्लेशका भाजन होंगे इसकथन को सुनकर गरुड़जी बोले कि मेरा उपदेश अज्ञानी लोगों के लिये कदापि नहीं है इसको ज्ञानी पुरुषही समझ सक्ते हैं और उन्हींके लिये यहमेरा कथन उचितभी है तब सारस बोला कि अभीतक तुम्हारी दृष्टिद्वैत बुद्धिसे नहीं हटी, यह सम्पूर्ण दृश्यमात्र जो तुमको दर्शित होताहै यह सर्व जगद्व्यापी घटघट वासी अन्तर्यामी श्रीविष्णु भगवान्ही का रूप है और जब सर्व चराचर स्थावर जंगमादि के अन्तर व बाहर उन्हीं सच्चिदानंद विष्णुभगवान् का रूप विद्यमान है तब ज्ञानी और अज्ञानी का भेद किसी प्रकार से निश्चित नहीं होसक्ता अर्थात् अनालि सिद्ध होताहै बड़े आश्चर्य की बातहै कि तुमको अबतक स्वरूपका परिज्ञान न हुआ और सांसारिक पदार्थों की विलक्षण दशाओं के भ्रमणमें ग्रसितहो इसी वार्तान्तर्गत कागभुशुंडिजी भी आकर उपस्थित हुये और गरुड़जी व सारस के परस्पर उत्तर प्रतिउत्तर को सुनकर बोले कि तुमलोग अपने निश्चित व शुद्ध स्वरूपसे इस बातपर पूर्णरूप से विश्वासकरो व ध्यान देकर देख व समझभी लो कि ब्रह्मासे लेकर पिपीलिका पर्यन्तयावत् चराचर स्थावर, जंगम पदार्थहैं उनमें एक श्रीरामचन्द्रजी ही पूर्णरूपसे पूरितहैं दूसरे किसीपदार्थका किञ्चिन्मात्र भी लेश नहीं है तो फिर किसप्रकार उनके स्वरूप व अंश से

भिन्न हो सक्तेहो—तब काग भुशुंडिजी बोले कि मैं तो तनमन से उन्हीं का किंकरहूं तब गरुड़जी बोले कि इस कथन से तो राम-ही पूरतन ठहरा और यदि आदि, अंत व मध्यमें केवल रामही पूर्ण है तो तुमने अपनी दुर्बुद्धि और अज्ञान से अपने को दास मानता है यदि अन्तर व बाहर व मध्यमें सर्वत्र रामही पूरित हैं और उनके सिवाय दूसरा कोई नहीं है तब वृथा अहंकार करते हो कि मैं भी कुछ हूं तुम पूर्णस्वरूपके ज्ञानस रहितहो तब काग-भुशुंडिजी इस कथन को सुनकर विचार करनेलगे और अपने को रामसे भिन्न न जानकर निश्चयकर लिया कि यह जो मैंने अपने स्वरूपको राम रूपसे भिन्न जाना था यह बिलकुल मेरा देहाभिमान और मिथ्या संकल्प विकल्प हैं हे गरुड़जी! मैंही राम-रूपहूं इसलिये कि मैं अखंड अद्वितीय हूं मैंने केवल अज्ञान के वश होकर वृथा अभिमान किया था कि मैं कागभुशुंडि हूं तब गरुड़जी बोले कि मैं विष्णुजी के चरणों में जाकर कहूंगा कि कागभुशुंडिने भक्ति को त्याग दिया है इस लिये कि वह अपने को ही स्वयंविष्णु मानता है तब कागभुशुंडिजी बोले कि जो कुछ मेरा कथन है और जहां तक मेरी समझहै उसमें किञ्चि-न्मात्र भी भेद नहीं है वह बिलकुल सत्यहै परन्तु विष्णुजी के समीप कहना क्या योग्यहै उसीसमय मैं हंस जो कि ब्रह्माजी के वाहनहैं आकर प्राप्त हुये और बोले कि अहंब्रह्मास्मि तब काग-भुशुंडिजी ने कहा कि हे गरुड़जी! देखो हंसक्या कहता है कि मैं स्वयंब्रह्म हूं और यदि मैंने अपने को स्वयंब्रह्म कहा तो इसमें क्या संदेह है मैं निस्संदेह विष्णु रूपहूं तब गरुड़जी बोले जो तुम्हारे प्रभु के सन्मुख हंस कहे कि मैंने नहीं कहा और मैं साक्षी दूंगा तब तुम क्या करोगे तब कागभुशुंडिजी बोले कि मैं उत्तर दूंगा कि हे विष्णु जी! आप मुझसे प्रकट हुयेहैं उसी समय मोर कि जिसके पंखों से प्रणव अर्थात् ॐकार का शब्द प्रकट होता था आकर उपस्थित हुये और बोले कि यह संपूर्ण जगत् मेरेही

प्रकाश से प्रकाशित है और मैंही इसका प्रकाशकहूं तब कागभुशुंडजी बोले कि हे मयूर ! तुम अपने मुख से ऐसा मत कहो और यही कहो कि सम्पूर्ण रामरूपही है तब मयूर ने कहा कि हे कागभुशुंडि ! यह बतलाओ कि तुम्हारा राम किस जगह विद्यमानहै तब कागभुशुंडि जी बोले कि वह रामरूप मेरे रोम रोम में व्यापतहै और यह जो कुछ प्रकाशहै सब उसी रूप का प्रतिबिम्बहै तब मयूर ने पूछा कि तुम्हारे इस कथन से तो निश्चित होताहै कि रामरूप के द्रष्टा तुम्हींहो और रामसे परे उत्कृष्ट हुआ तब गरुड़जी बोले कि हे मयूर! रामरूप तो एकही है परन्तु तुम ने उसको त्रिपुटीरूप वर्णनकिया अद्वितीयमें त्रिपुटी का भान संभव नहीं होसक्ता तब मयूरने उत्तरदिया कि हे गरुड़जी ! तुमको अपने स्वरूपकी ही अप्राप्ति है और यदि सर्वत्र रामही है तो त्रिपुटी भी रामही है हे गरुड़जी ! जो आत्मा से उत्पन्न हुआ है वह केवल आत्मारूपही है जैसे मृत्तिका के अनेक घटादि पात्र बनायेजाते हैं परन्तु वास्तव में वह केवल मृत्तिकारूपीही हैं और जो पुरुषआत्मा से अतिरिक्त कुछ मानताहै उसको धिक्कार और उसके शीशपरक्षार है तब कागभुशुंडिजी बोले कि हे मयूर ! जैसे मनुष्यों में चांडाल नीचहै इसीतरह पक्षियों में तू भी नीचहै हे नष्टबुद्धे ! जब रामही सर्वत्र है तब एक और दो क्याकहूं तब मयूरने कहा कि अब तुमको उचित है कि तुम दोनों मेरे शिष्यहो जावो तब कड़ाकुल अथवा कुंज ने आकर उत्तरदिया कि हे मयूर ! जबतक प्रणव क्या तीनों गुणका त्यागनकरेगा तब सुखी नहीं होसक्ता क्योंकि प्रणवही से तीनों देवता अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु व महेश और दशइन्द्रियां व चतुःअन्तःकरण और चतुर्दशदेवता इन्द्रियों के रक्षक उत्पन्नहुये हैं और स्थूल व सूक्ष्म संपूर्ण जगत् का कारण प्रणव अर्थात् ओम् ही है जबतक इस कारणरूप प्रणवको कार्य के सहित बुद्धि से निवृत्त न करोगे या मृगतृष्णा के जलकी भाँति मिथ्या न

जानोगे तब तक आत्मानन्दकी प्राप्ति न होगी तब मयूरने उत्तर दिया कि जो लोग अज्ञानी हैं व स्वरूप से भ्रष्ट हैं वेही प्रणव के त्याग की इच्छा करते हैं जैसे कोई मृगतृष्णाको नदी जानकर पार उतरने के लिये कपड़े उतारता है तैसेही प्रणवका त्याग करना है काहेते कि प्रणवआत्मस्वरूप आत्मस्वरूप में त्याग व ग्रहण कदापि नहीं बनता और मांडूक्योपनिषद् में प्रणव और ब्रह्मकी एकता व अभेदता लिखी है और प्रत्यक्ष में भी देखो कि हमारे सम्पूर्णपंखों में प्रणव प्रकट है तब कुलंग ने उत्तर दिया कि प्रथम तो तुम ने यह कहा कि एक अद्वितीय हों और अब कहते हो कि मेरे सम्पूर्णपंखों में प्रणव प्रकट है तुम्हारे इस कथन से निश्चित होताहै कि अद्वितीय कुछ वस्तु नहीं है और इसी कथनानुसार यह भी सिद्ध होता है कि तुम भ्रममें पड़ेहो इस तुम्हारे वचनको कोई विद्वान् सन्त कदापि नहीं मानसक्ता तब मयूर ने उत्तर दिया कि तुम अज्ञानी हो कि जिससे इस कथन को मयूरका कहाहुआ मानतेहो यदि ज्ञान दृष्टि से देखो तो यह निस्संदेह दर्शित होगा कि जो कुछ कहताहै वह आपही कहता है तब सारस ने उत्तर दिया कि हे मयूर ! तुम आत्माकी प्राप्ति से रहित हो यदि आत्मा प्राप्ति से रहित न होते तो तुम को यह किसी प्रकार से भी भासित न होता कि यह कथन कुलंग का है तब कुलंग ने उत्तर दिया कि तुमको भी आत्मस्वरूप की प्राप्ति नहीं है तब मयूर ने कहा कि हे सारस ! तुमभी अज्ञानी हो क्योंकि कुलंग के कथनसे निश्चित होताहै कि तुम को भी आत्मस्वरूप की प्राप्ति नहीं है यदि तुम ज्ञानी होते तो इन सन्तों को कदापि आत्मभ्रष्ट न कहते जो पुरुष ज्ञानी होता है उसको आत्मा से अतिरिक्त किञ्चिन्मात्रभी कोई पदार्थ भासित नहीं होता तब सारस निरुत्तर होकर मौनहोगया तब गरुड़ बोले कि हे हंस ! तुम यह बतलाओ कि तुमने स्वरूप देखा है कि नहीं यदि देखा है तो वर्णन करो और यदि नहीं देखा है तो

निर्णय करो यद्यपि आत्मा मन, वाणीका बिषय नहीं है तथापि सत्य २ बतलाओ कि आत्माको तुमने देखाहै या नहीं तब हंस ने उत्तर दिया कि हे गरुड़ ! इस वार्तालाप से निश्चित होताहै कि तुमको भी आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं है देखना व न देखना केवल कथनमात्रही है कि मैंहूं मुझमें कौनवस्तुसत्यहै कि जिसको मैं देखूं अथवा न देखूं क्योंकि देखना त्रिपुटी के बिना नहीं होता और एक अद्वैत में त्रिपुटी का कहना अज्ञान और दुर्बुद्धि है तब गरुड़जी बोले मेरे वचनको श्रवणकरो तबहंसने कहा कि मेरे तो श्रवण इन्द्रीही नहीं है परन्तु कथनकीजिये तब गरुड़जीबोले कि मैं बिना वाक्इन्द्रिय के कहताहूं कि यदि मैंहीहूं तब त्रिपुटी भी मैंहीहूं तब हंसबोला कि यदि मैं अद्वितीयहूं तब त्रिपुटी कहां है काहेते मैं एक और दो से रहित पूर्णहूं इसमें श्रुति का प्रमाण है (एकोदेवो नारायणः इति) दो और एक कहना अज्ञान से है इसतरह आपसमें वार्तालाप करके दोनों मौनहोगये तब कुलंग बोला कि मैं तेरा शिष्यहोताहूं मुझे कुछ उपदेशकर कि अनादि एक रसतूही है आप और द्वितीय अबहोता है तब मयूरने उत्तर दिया कि हे कुलंग ! तू मेरे उपदेशको चित्तसे सुन मैं तुझे ऐसा उपदेश करूंगा कि तू न रहेगा तब कुलंगने कहा कि हे महाशय ! यदि मैंही न रहूंगा तब तीनोंलोक भी न रहेंगे आपनिर्वाण उपदेश कीजिये कि जिसके श्रवण करने से मैं बन्ध और मुक्त से रहितहोजाऊं तब मयूर ने उत्तरदिया कि हे सम्पूर्ण सन्त-मंडली के सन्तलोगो ! मेरे वाक्यको श्रवणकीजिये तब सम्पूर्ण पक्षियों ने उत्तर दिया कि हमलोगों में कहने व सुनने की शक्ति नहीं है परन्तु आप कथन कीजिये तब मयूरबोला कि यह बात निश्चितहै कि तुम लोगों में कहने और सुनने की शक्ति किञ्चिन्मात्र नहीं है परन्तु मैं तुम सबको निर्वाणका उपदेश करताहूं कि जिससे तुम संपूर्णकार्य व कारणों से रहितहोजावो तब संपूर्ण पक्षियों ने निवेदन कि महाराज यहां उपदेश और

उपदेष्टादो में से कोई भी नहीं है तब मयूरने उत्तरदिया कि हे कुलंग! मुझमें वाण और निर्वाणदो में से कोई पदार्थ नहीं है मैं आपही आपहूं मेरी नमस्कार मुझीको है यह तीनोंलोक मुझे नमस्कार करते हैं और संपूर्ण जगत् में मैंही संपूर्ण पदार्थों का भोक्ताहूं दिन, रात, मनुष्य और देवता मैंही हूं और सर्वदर्शन हमाराहै और ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु इनतीनों का भी प्रकाशक मैंहीहूं इसी समयान्तरमें चकई और चकवा का जोड़ा भी आकर उपस्थितहुआ और उनमें से चकवाबोला कि जो दृश्य है सो नाशहै इससे मेरी नमस्कार मुझीको है इस आचरण को देखकर सब बोलउठे कि चकवा नाशी है हमारी नमस्कार हमको है तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी! संतोंकी नमस्कार ऐसीही होती है इतनी वार्तासुनने के पश्चात् कचने अपने पिता से पूछा कि हे पिताजी! बृहस्पतिजी कैसे संतथे कि उन्हों ने ऐसा नमस्कार किया तब बृहस्पतिजी बोले कि हे पुत्र! वे संत सत्यवक्ता थे और जो चकवे ने यह कहा कि सब जगत् नाशवान् है मैंही एक अविनाशीहूं इसके अभिप्रायको श्रवणकीजिये यह जो पंचभौतिक आत्मा व पांचोतत्त्व और इन्द्रियां व अन्तःकरण व तीनोंगुण और सर्व जो सम्पूर्ण क्षेत्र कहाजाता है यह सम्पूर्ण नाशवान् है और जो चकवे ने यह कहा कि क्या मैं क्षेत्रज्ञहूं सो क्षेत्रज्ञ उस को कहते हैं जो संपूर्ण (क्षेत्र) जगत् को सत्ता, संस्फूर्ति देके आप क्षेत्र का जाननेवालाहोकर सब से भिन्नरहे और सबने कहा कि चकवा नहीं है हमीं हैं और हमलोग क्षेत्रको उठाकर अपने स्वरूपको प्राप्तहुये थे, इन सबका कथन अद्भुत और आश्चर्यरूप है इसको श्रवण करो कि चकवाने क्या कहा हे प्यारे! चकवी को मत देखो इसी को विकार कहते हैं और मैं निर्विकाररूपहूं यदि चकवी और मैं प्रकृतिपुरुषहूं उत्पत्ति व स्थिति इसी प्रकृति की योग्यता से है नहीं तो मैं निर्विकार पूर्ण ब्रह्महूं और यदि चकवी की प्रकृति को अपने में लयकरूं तो

सम्पूर्ण संसारका नाश होजावेगा, एक अद्वितीय स्वयंसिद्धि निर्विशेष सदास्थितहूं इसलिये कि मैं निराश्रय स्थितहूं और शास्त्रसे मेरानाश नहीं है, आत्मासत्स्वरूप है, अब आपलोग यह बतलाइये आप सबलोग प्रकृति से भिन्न हैं या उससे युक्त हैं तब पक्षियोंने कहा कि हे चकवा! जो तूहै तो प्रकृति नहीं है और जो मायाहै तो तू नहीं है इसलिये कि बुद्धिकी वृत्ति एक है उससे पुरुषको सिद्ध करो अथवा प्रकृतिको तब चकवे ने उत्तर दिया कि अद्वैतमें शब्दकी प्रवृत्ति नहीं है इसी वास्ते प्रकृति को साथ लियाहै इस वार्ता को सुनकर सबने उत्तर दिया कि अभी तुमको आत्मा की प्राप्ति नहीं है इसलिये कि तुम्हारी दृष्टि अभीतक माया में लीनहै तब चकवा ने उत्तर दिया कि आप लोगों का कथन सत्यहै मुझे बेशक आत्माकी अभी तक प्राप्ति नहीं है देखो आत्माकी प्राप्ति द्वैतहै परन्तु मुझमें तो प्राप्ति और अप्राप्ति कुछ भी नहीं है और आप सबलोग आत्मा को प्राप्त होचुके हैं निदान चकवे के इस वचन को सुनकर सब मौन होगये तब चकवेने देखा कि सब अवाक् होगये तब फिर बोला कि देखो तुम सब लोग मेरे शिष्यहो तब सब पक्षियों ने मिलकर उत्तर दिया कि जिस स्थानमें किसी की प्राप्तिही नहीं है वहां गुरु और शिष्य का होना असम्भवहै तब चकवाने फिर उन सम्पूर्ण पक्षियों को उत्तर दिया कि देखो जो कुछ कथनमात्र है वह सब मुझी से है फिर मैं उसके बन्धन में किसप्रकारसे आ-सक्ताहूं तब हंसने उत्तर दिया कि प्रथम मेरे एक वाक्य को सुनिये कि जिसमें वचन नहीं है, और जो वचनही नहीं तब मैं और तुम कहां, इससे उचित है कि पहिले तुम चकवा के शरीर को छोड़ो और मैं इस हंसके शरीरका परित्याग करूं तत्पश्चात् हमारा और आपका वार्तालाप होवे जब शरीर का परित्याग करोगे तभी आनन्द प्राप्त होगा तब चकवा ने उत्तर दिया कि जब तुम कहोगे कि मैं हंस नहीं हूं तब चकवेका आपसे आपही

परित्याग होजायेगा तब हंसने उत्तर दिया कि मैं तेरा द्रष्टा होकर तेरे सन्मुख उपस्थितहूं तुझको मेरे सम्मुख ऐसी बात चीत करते लाज नहीं आती देख यदि स्वरूपहै तब सर्व अर्थात् सांसारिक पदार्थों का होना किसप्रकार से सम्भव है और उन से क्या प्रयोजन है और अद्वैत में सर्वका कहना भी अनर्गलहै, इससे कहो कि मैं अद्वितीयहूं तब चकवे ने उत्तर दिया कि यदि केवल मैंहीहूं तो सर्व कहने में क्या हानिहै केवल कथनमात्र से वेधम कदापि नहीं हो सक्ता तब सारस ने उत्तर दिया कि तुम्हारे इस कथनसे निश्चित होताहै कि तुमको आत्मा की प्राप्ति नहीं है और अभी तक तुम्हारी बुद्धि बन्ध से नहीं उठी है क्योंकि तुम्हारा कथनहै कि केवल कहनेसे बंध नहीं होता तब चकवे ने उत्तर दिया कि मैं सादृश्यसे रहितहूं और तुमकहते हो कि तुझ में बंध मुक्तहै इससे निश्चित होता है कि तुम अज्ञानके भ्रममें फँसेहो और मैं सिवाय अपने द्वितीयको नहीं देखताहूं तब सारसने उत्तरदिया कि हे चकवा ! तू मेरा गुरू है और जो तूने कहा कि मैं अद्वितीयहूं सो सत्य है क्योंकि अद्वितीय में प्रश्न, उत्तर नहीं बनता तब मयूरने उत्तर दिया कि तुम दोनों मेरे शिष्य हो क्योंकि सर्वत्र मेराही प्रकाश है और तुम मुझमें हो अर्थात चकवा, मयूर और सारस तीनों नहीं है जो कुछ है सो मैंहीं हूं इससे इस वचनको सुनो और अपने हृदय में धारणकर के परमानन्दको प्राप्त होओ और मैं, तू से छूटकर निजस्वरूप में जामिलो तब सर्व ने कहा कि हे मयूर ! मुझमें दुःख और आनन्द दो पदार्थों में से कुछ भी नहीं है इसी को निर्वाण भी कहते हैं तब हंसने कहा कि हमारा निर्वाणउपदेश सुनकर मुक्त हो तब सर्व ने कहा कि मुझमें बन्धमुक्त दोनों नहीं हैं स्वमाहिम्न स्थितहूं अर्थात् मैं अपनी महिमा में स्वयंस्थितहूं इसप्रकार आपसमें वार्तालाप करके सर्व मौनहोगये कुछ भी शक्ति वचन उच्चारण करने की न रही कि कुछ भी बोलें इसी मौनदशा में

उनको पांचसहस्त्रबर्ष व्यतीतहोगई परन्तु अवाक् व चित्त संभ्रमितहोने के कारण यह भी निश्चित न हुआ कि एक घड़ी व्यतीतहुई अथवा नहीं इसी समयान्तर में कोकिला पक्षी आकर उपस्थितहुआ और बोला कि मैं आत्म अज्ञानियों की सभाके बीच में आयाहूं यह सभ्रमहै मुझको कोई नहीं देखता कि मैं कौनहूं और सब जानते हैं यह मौन रहना अतिउत्तमहै परन्तु यह लोग नहीं समझते कि बोलना और मौनरहना दोनों अहंकार का साक्षात्रूप हैं अर्थात् स्वयं अहंकारही हैं तब कुलंग ने उत्तरदिया कि हे कोकिला ! मैं तुझसे कुछ वार्तालाप करना चाहताहूं परन्तु तूने जो अपने को कोकिला मानरक्खाहै तू इस अभिमानको त्यागकर और मैंने जो अपने को कुलंगमानाहै मैं इसे त्यागकरूं तब मेरी तेरी परस्पर दशाहोने से हम तुम दोनों मिलकर संवादकरें तब कोकिला ने कहा कि मुझमें तो त्याग और ग्रहणकी शक्तिही नहीं है न मुझमें अतिरिक्त कोई वस्तु है कि जिसका मैं परित्याग और ग्रहणकरूं और यदि तुम्हारा मन कर्मों के बन्धनमें फंसाहै तो तुमको आत्मानन्दकी प्राप्तिअति कठिनहै तुम्हारे इस कथनसे निश्चितहोताहै कि तुमको आत्मा की प्राप्ति कुछ भी नहीं है तब कुलङ्गने उत्तर दिया कि जब तक आत्माकीप्राप्ति न होवै तबतक स्वरूप कैसे प्राप्तहोसक्ता है अब यह बतलाओ कि हे कोकिला ! तुमकौनहो ? तब कोकिलाने उत्तर दिया कि मैं वही हूं कि जिसे तुम कहते हो कि तुम कौनहो सर्व दर्शन मेरा है और मुझमें दर्शन नहीं है तब मयूरने उत्तर दिया कि मैं तो इन दोनों सहितहूं और यदि मैंहूं तो दर्शन, अदर्शन कहां है वह कौनसी वस्तु है कि जिसमें यह और वह का विकल्प नहीं है तब कोकिलाने उत्तरदिया कि जो पुरुष विचाररूपी नेत्रोंसे हीनहै वह आत्माको कदापि नहीं देखता कोकिला के इस कथन को सुनकर सब ने कहा कि हे कोकिला ! अब आप कृपा करके किञ्चिन्मात्र आत्मनिर्णय कीजिये तब कोकिलाने उत्तर दिया

कि यदि आप लोगों ने उसे देखा होवे तो मैं उसका निर्णय करूं मैं उसके कथनसे बिलकुल अशक्तहूं यदि तुम लोग प्रत्यक्ष देखो तो तुमको निश्चय होजावे कि आत्मा में किस प्रकार का सुख कोकिला के इस वचनको सुनकर सब लोग मौन होगये परन्तु उन सब मौनावस्था देखकर फिर भी कोकिला ने उनको समझाया कि "ब्रह्माहं अस्मि" अर्थात् ब्रह्म मैंहूं और मैंही सब का गुरूहूं तब हंसने उत्तर दिया कि हे कोकिला ! तुम में गुरू और शिष्य कैसे प्रतीत होताहै तब कोकिला ने उत्तर दिया कि यदि मैं ब्रह्महीहूं तो गुरू और शिष्य ये दोनों पद मुझी में कल्पित हैं तब मयूरने कहा कि मैं तुम्हारा शिष्य होताहूं परन्तु प्रथमावस्था में मैं तुम्हारा नाश करूंगा तब कोकिला ने उत्तर दिया कि यह सम्पूर्ण मेरीही लीला है तब हंस बोला कि यह आप क्या कहते हैं कि मैं विना वाक् के बोलताहूं और विना कानों के सुनताहूं और विना चित्त के चिन्ता करताहूं व विना बुद्धिके निश्चय करताहूं इससे क्या कहूं कि इसमें कहना और सुनना दोनों नहीं हैं अर्थात् मैंही कहता और मैंही सुनताहूं यह संपूर्ण दृश्य मिथ्या होकर केवल दृष्टिआत्मा सत्यहै तब कोकिला ने उत्तर कि प्राण सप्रकाश है यदि कुछ प्राणसे भिन्न होय वह कहिये तब गरुड़जी बोले कि वेद कहते हैं कि प्राण जड़है तब कोकिला बोला कि मेरा वचन सत्य हुआ कि वेद पुराण को प्राणही सिद्ध करता है और दूसरा कोई नहीं और प्राण स्वयं सिद्धहै यह सुनकर सब लोग आश्चर्यितहुये और कहने लगे कि हम लोग आत्मसुख में मग्न थे यह कोकिला प्राणवादी कहांसे आया कि जिसने सबको शङ्का में डालदिया तब सबने कहा हम तुम्हारा सिद्धान्त नहीं मानते इस वाक्य को सुनकर कोकिला बोला कि मैं अद्वितीयहूं मेरे विना कौन है जो मेरे सिद्धान्तको माने जो तुमभी शब्द ब्रह्ममें निश्चय रखते हो बड़े आश्चर्यकी बातहै जो आश्चर्यितहोतेहो प्राण स्वयं प्रकाशितहै प्राणके विना

और जो निश्चय कियाहै उसको त्याग करो तब आनंद की प्राप्ति प्राण की तुमको प्राप्तहो तब मयूरने हँसकर व प्रसन्नता से पंख फैलाकर व झाड़कर उत्तर दिया कि हे कोकिला! सुषुप्ति में प्राण कहां है तब कोकिला बोला कि प्राणके बिना सुषुप्ति के अज्ञान और सुख और सोने की व्यवस्था कौन कहताहै तब मयूरने पूछा कि तुरीया जो सर्वका अधिष्ठानहै उसमें प्राण कहां है तब कोकिलाने उत्तरदिया कि तुरीया शब्द को भी प्राणही सिद्धकरताहै तब हंसने कहा कि ब्रह्माजी का कथनहै कि प्राण मुझसे उत्पन्न हुआहै इसका वेद साक्षी है जो प्राण सर्वइन्द्रियों सहित ईश्वर से उत्पन्न हुये हैं और ईश्वर यही आत्माहै इससे सर्व आत्मा है तब कोकिलाने उत्तरदिया कि यह आपने बहुत अच्छा कहा कि प्राण नारायणसे उत्पन्न हुआ है और नारायण भी प्राणहै इस वचनको सुनकर सर्व क्रोधित होके बोले कि शब्द दूर क्या मन वाणी के अगोचर को वाणी से योग्य, अयोग्य कहना अज्ञानहै तब कोकिला ने उत्तरदिया कि शब्द योग्य, अयोग्य प्राण से है मैं प्राणरूप स्वतन्त्रहूं तब मयूरने कहा सत् कभी असत् नहीं होसक्ता तब कोकिला ने कहा कि मैं सत्हूं और असत् अनन्तशक्ति रखताहूं यदि मैं चाहूं तो मिथ्या का सत्करूं, कहो हम सब प्राणहैं तब मयूरने कहा कि जो वस्तु कथन मात्र है उसकी स्थिति कभी नहीं होती तब कोकिला ने उत्तर दिया कि प्राणहै तब मयूरने कहा कि मौन क्या है कोकिला ने उत्तर दिया कि प्राणहै तब हंसने कहा कि प्राण भ्रममात्र है ब्रह्माजी बोले कि प्राण पर प्रकाशहै इसलिये कि प्राण कार्य है और मैं उसका कारणहूं तब कोकिला ने कहा कि ब्रह्मा भी प्राणहैं तब हंसने पूछा कि जड़ व चैतन्य में क्या सम्बन्धहै तब कोकिलाने उत्तर दिया कि जड़ और चैतन्य दोनोंका प्रकाशक एक प्राणही है तब सारस बोला कि हे सारसिन! उचितहै कि तुम आत्मा की प्राप्ति में ऐसी दृढ़ हो जैसे कि कोकिला प्राणवाद में दृढ़है

निश्चय करो कि वेद और शास्त्र कहते हैं कि प्राण जड़ और तुच्छ है वन्ध्या के पुत्रकी नाईं तब भी कोकिला अपने प्रण से नहीं टरती तब सारासेन ने उत्तर दिया कि मुझमें तो बुद्धिही नहीं है मैं निश्चय कैसे करूं तब कोकिला बोली कैसे कहतीहो कि वेद और शास्त्र कहता है यही शब्दको त्याग करो जो कहता है सो प्राणही कहताहै इससे वेद और शास्त्र सब प्राणही है, प्राण स्वयं प्रकाशवान् अद्वितीय है इसी संवाद में थे कि जल कुक्कुट आपहुँचा और बोला कि जिस समय ईश्वर सर्व जगत्को लय करताहै तब प्राण कहां है तब कोकिला ने उत्तर दिया कि प्राणही ईश्वरहै वह अपने को आपही में लय करलेता है तब जल कुक्कुट ने कहा कि ईश्वर से सब चराचर जगत् उत्पन्न हुआ और सबका कारण वही है इससे प्राणभी उसी से उत्पन्न हुआ है पुरुषसे प्रकृति और महत्तत्त्व अहङ्कार त्रिगुणात्मक होकर क्या ब्रह्मा, विष्णु होकर सम्पूर्ण जगत् बनाया यदि जिस स्थान व अधिष्ठान में महत्तत्त्व, अहङ्कार नहीं है तहां प्राण कहां है तब कोकिला ने उत्तर दिया कि अहङ्कारादि सबको प्राणही सिद्ध करताहै तब जलकुक्कुट ने कहा कि प्रकृति में प्राण कहां है तब कोकिलाने उत्तर दिया कि प्रकृति के विना प्राण कौन कहे मेरे निश्चय में पुरुष भी प्राणही है और ब्रह्म भी प्राणहै इस बात के सुनने से सब आश्चर्यित हुये तब गरुड़जी बोले कि ब्रह्मविषे प्राण कहां है तब कोकिला ने उत्तर दिया कि ब्रह्मअरूप है और प्राणभी अरूपहै तब कुलङ्गने कहा कि जीव में प्राण है, ईश्वर में प्राण नहीं है तब कोकिला हँसकर बोली कि प्राण ईश्वर को सिद्ध करताहै, सर्व जगत् मुझसे उत्पन्न हुआ है और मुझी में लीन होजायगा, हे मित्रो ! इसमें कुछभी संशय न करो यदि सर्व प्राणही है तो क्या भयहै कोकिला की इस वार्ता को सुन सब मौन होगये तब गरुड़जी ने काकभुशुण्डि से कहा कि हे काक-भुशुण्डि ! तुम कहते हो कि हमने सहस्रवर्ष भक्तिकी है इस से

अब कोकिलाके प्रश्नका उत्तर दीजिये तब काकभुशुण्डिजी बोले कि मैं सन्तों की सभामें आयाहूं मुझमें बुद्धि नहीं रही और बिना बुद्धिके कहा नहीं जाता इससे क्या कहूं जब इतने सन्त उत्तर देनेको समर्थ नहीं हैं तब मेरी क्या शक्तिहै जो उत्तर देसकूं तब कोकिलाने कहा कि पहिले मेरे प्रश्नका उत्तर दीजिये नहीं तो कर्मत्यागकरके योग करो मैं योगीहूं तब हंसने कहा कि तू पक्ष लेकर कहताहै, आश्चर्य की बातहै कि निष्पक्षियों में स्थितहूं और चाहताहूं इसलिये कि पक्ष शरीरही तकहै वह अब नाशहुआ तो पक्ष कहां रहा जब मैं योग करताहूं तब योग होताहै नहीं तो योग नहीं होता क्योंकि योग स्वयंसिद्ध नहीं है तब कोकिलाने पूछा कि क्या योग किसी वस्तु के जुड़ने का नामहै यदि जुड़नेका नामहै तो जुड़ना प्राणसे होताहै इस से निश्चितहै कि प्राण सर्वत्र विद्यमान है तब सर्पने कहाकि मैं तुझ को अभी मारडालूंगा और मारकर फिर तुम से पूछेंगे कि अब तुम्हाराप्राण कहां है तब कोकिलाने उत्तरदिया कि प्राणको मारने की किसी को शक्तिनहीं है वह इस शरीर से निकला और तत्क्षण दूसरे शरीरमें प्रवेश करगया प्राणस्वयं प्रकाशवान् है तब हंस बोला कि हे वादी! यही जगत् ब्रह्मरूपहै प्राण कहां है तब कोकिलाने उत्तर दिया कि इस संवाद से भी प्राणही सिद्धहुआ, इसलिये कि ब्रह्मपूर्ण और अरूप को कहते हैं और पूर्ण अरु अरूप सर्वत्र प्राणही है तब सबने आपस में सलाहकी कि ब्रह्माजी के पास जाकर इस बातका निर्णय करना चाहिये कि जो कुछ ब्रह्माजी कहें वह सत्यहै तब कोकिलाने उत्तर दिया कि यदि ब्रह्माजी तुम लोगोंका पक्षपात करेंगे तब मैं कदाचित न मानूंगी तब सबने कहा कि जो ब्रह्माजी कहेंगे वही प्रमाणहोगा तब बृहस्पति ने कचसे कहा कि हे पुत्र! इसप्रकार आपस में वार्तालाप करके सम्पूर्ण पक्षी ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके पास गये तब कचने उत्तरदिया कि हे पितः! वे सब कैसे संत थे कि

जो कोकिलाका उत्तर न देसके तब बृहस्पतिजी बोले कि हे पुत्र! निश्चय का यहीफल है कि असत् को सत् करके दिखावे फिर सबलोग ब्रह्मा के पासपहुँचे और दंडवत् प्रणाम करनेलगे तब ब्रह्माजी जो सर्वान्तर्यामी उनकी व्यवस्था देखकर अपने पुत्र वसिष्ठजीसे बोले कि इन पक्षियों का प्रश्नोत्तरश्रवणकरो कि ये लोग क्या कहते हैं वसिष्ठजीको इतना समझाकर ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्रो! तुम लोग यहां किस निमित्तआये तब पक्षियोंने उत्तर दिया कि हमलोगों को निश्चय है कि आत्मासे अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं और कोकिला का कथनहै प्राण सर्वत्र व्याप्तहै इस से आपसत्य २ निर्णय इस विषय का समझाकर हमलोगों के आपसके झगड़ेको निवृत्तकीजिये क्योंकि आप इसमार्ग को भलीप्रकार जानते हैं तब ब्रह्माजी बोले कि तुमलोग कुछ प्रश्न उत्तर करो तो हम तुम्हारी उस शंका का समाधानकरें इतनी बात ब्रह्माजी से सुनकर सबसे पहिले हंसबोला कि हे ब्रह्माजी! मुझे भासितहोताहै सर्व मैंहीहूं और यह सब आभास मेरा है तब गरुड़जी बोले कि हे ब्रह्माजी! यदि आप सब के प्रकाशक हैं परन्तु मैं आपका द्रष्टाहूं तब मयूरबोला कि ब्रह्मा मैंहूं हे ब्रह्मा जी! मेरी बातको सुनिये कि सर्वदृश्य मैंहीहूं फिर गरुड़ने उत्तर दिया कि मैं इन सर्व और चराचर का प्रकाशकहूं तब कुलंग बोला कि हे गरुड़! तुममेरीही सत्तासे उड़तेहो मुझ में गुप्त व प्रकट कुछ भेद नहीं है सर्व मैंही हूं तब ब्रह्माजी हँसकर मरीचि आदि अपने सब पुत्रों को एकत्रित करके बोले कि हे पुत्रो! इस पक्षी के वाक्यको श्रवणकरो कि यह लोग क्या कहते हैं तुम सबलोग जानते थे कि जगत् की उत्पत्ति हमलोग ही करते हैं पर तुमलोग आत्मविचार से शून्यहो तुम सब बड़ोंसे यह पक्षी भले हैं फिर पक्षियों से बोले कि हे पक्षियो! तुम सब धन्यहो इसलिये कि तुम लोगों ने मेरे स्वरूप को साक्षात् जान लिया तब कुलंगने उत्तरदिया कि हे ब्रह्माजी! मुझे आपमें समता नहीं

दिखाईपड़ती क्योंकि आपही ने सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्नकिया है परन्तु उस जगत् में किसीको भला और किसीको बुरा क्यों कहतेहो और यदि भला और बुरा कहतेहो तो वह सब भलाई व बुराई तुम्हीं में है तब ब्रह्माजी हँसकर बोले कि तुम कौनहो तब कुलंगने उत्तरदिया कि मैं आत्मा हूं जिससे ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्नहुये हैं और यह तीनों देवता प्रणव से हैं और प्रणवमाया है वही माया शरीरहै और मैं शरीर का द्रष्टाहूं इस लिये आपको नमस्कारहै, ब्रह्माजी कुलंगके इस वचनको सुनकर बहुत प्रसन्नहुये और बोले कि यही तेरा वाक्य मेरी नमस्कार है जो मुझको त्रिगुण और मायासे अतीत स्वप्रकाशजानाहै काहे से जो तीनोंगुण केवल कथनमात्रहैं नहीं तो केवल अद्वितीय मैंही हूं, फिर गरुड़ से पूछा कि तुमने विष्णुजी से कुछ सुनाहो सो कहो तब गरुड़जीबोले सर्व विष्णुहैं तब मयूरने कहा कि विष्णु को मैंने प्रकटकिया है तब सब पक्षियों ने कहा कि हे ब्रह्माजी! प्राण स्वयंप्रकाशित है अथवा दूसरे के प्रकाश से प्रकाशवान् है तब ब्रह्माजीबोले कि प्राण स्वयंप्रकाशवान् नहीं है वह दूसरे के प्रकाश से प्रकाशित है परन्तु कोकिला उपाधि करके चाहती है कि प्राण सत्यहोवै तब कोकिला अपने दोनों हाथ ऊपरको उठाकर उच्चस्वर से बोली कि हे ब्रह्माजी! आज तुमबड़ाई को त्यागकर विषमताको प्राप्तहुये कि मुझमें उपाधिबतलातेहो, जब कि तुम ब्रह्माहो और संपूर्ण पदों को तुम्हीं ने स्थापितकिया है तब ब्रह्माजीबोले कि हे कोकिला! तू क्रोधित न हो और विचार करके देख कि प्राण किस तरहसे स्वप्रकाशरूप होसकाहै तब कोकिलाने उत्तरदिया कि मैंनेजानाहै कि प्राणआपी आपको कहताहै जो प्राण न होय तो कौन कहे ताते सर्व प्राणही है हे ब्रह्मा! वेद की आज्ञाको प्रमाणकरो तब ब्रह्माजीबोले कि वेद का वाक्यहै कि ब्रह्मासे लेकर पिपीलिका पर्यंत एक पूर्ण आत्मा श्रीनारायणही हैं, प्राण और इन्द्रिय इत्यादि सब नारायण से

उत्पन्नहुये हैं भूत, भविष्यत, वर्तमान और पंचभूत सब वही है इससे प्राण क्याहै तब कोकिला ने उत्तरदिया कि तुम ईश्वरहो और सब कर्म तुम्हीं से हैं, जो प्राण कुछ नहीं है तो तुम्हारा कर्म भी वंध्या के पुत्रकी नाईं तुच्छहै और जो आपने कहा कि प्राण श्रीनारायण से है तो इस आपके वचन से प्राणही स्थित हुये, क्योंकि कार्य व कारण में कुछ भेद नहीं है यदि प्राण श्रीनारायणका कार्य है तो प्राणही श्रीनारायण हुआ और आपने वेद में कहाहै कि प्राण मुझसे उत्पन्नहुये हैं यह सत्यहै अथवा मिथ्या तब ब्रह्माजीबोले कि प्राणसे कर्महोते हैं पर प्राण और कर्मकथन मात्रहै यदि एक अद्वितीय मैं ही हूं तब दोनों वही तब कोकिला बोली कि यह सर्वसभामिथ्यावादी है जब कि वृद्धशिरोमणि मिथ्यावादकरैं तो सब छोटे मिथ्याकैसे न कहैं हे ब्रह्माजी! यदि आप कुछ स्वरूप करके सतहो तो अपना स्वरूप वर्णनकरो तब ब्रह्माजीबोले कि जिसको स्वरूप का ज्ञान नहीं है उससे स्वरूप का वर्णन करने से क्या लाभहै और जिसको स्वरूप का ज्ञान है उससे भी कहना योग्य नहीं है इसलिये कि अज्ञानी और ज्ञानी दोनों से विलक्षण मुमोक्षु उपदेश का अधिकारी है तब कोकिला ने उत्तरदिया कि यही विषमताहै, यदि आप अद्वितीय हो तब ज्ञानी और अज्ञानी नहीं बनता है और ज्ञान बिना त्रिपुटी के नहीं होता यदि परमार्थ करके एक अद्वितीय मैंहीं हूं तब तीनोंलोक कहांहै, ब्रह्माजी उठखड़ेहुये और बोले कि तुम्हारा उत्तर हम नहीं देसक्ता इसलिये हम, तुम दोनों सर्व विष्णुजी के पास चलें तब ब्रह्माजी सबपक्षियों को साथ लेकर विष्णुजी के पासचले जब ब्रह्माजी सबपक्षियों समेत क्षीरसमुद्र पर जो विष्णुजी का स्थानहै वहां पहुँचकर श्रीविष्णुभगवान् की स्तुति करनेलगे कि हे भगवन्! आप सम्पूर्ण चराचरके अग्ररूपहोकर सबके अधिष्ठाताहो, कोकिला बोली कि मेरी स्तुतिसुनिये कि आप मुझसे उत्पन्नहुये हैं और यह चतुर्भुजी स्वरूप और शंख,

चक्र, गदा, पद्म भी मुझीसे पैदाहुये हैं मुझमें आवागमन नहीं है पर तुमकोवारंवार नमस्कार करती हूं ऐसा आवाहनकरो जिसमें आवाहन और विसर्जन दोनों नहीं हैं तब हंसबोला कि हे कोकिला! यह स्तुति नहीं है निन्दाकरताहै तब कोकिलाने कहा कि तू अबतक अज्ञान में है मुझसे मतबोल देख ब्रह्माजी तेरे स्वामी खड़े हैं और विष्णुजी आते हैं इससे स्तुति व निन्दाका त्यागकर तब मयूर ने उत्तरदिया कि मैं आवाहनकरताहूं कि न कोई बुलानेवाला है और न कोई आनेवालाहै और न कोई आताहै न जाताहै यही मेरी नमस्कारहै, हे विष्णुजी! आइये तुम्हारा आनाकैसाहै कि जिसमें न आनाहै न जाना तबकुलंग ने उत्तरदिया कि न हंस न कोकिला न मयूर न श्रीविष्णु न ब्रह्मा न रुद्र सर्व मैंही हूं अपने रूपको आपी बुलाता व बोलता हूं श्री विष्णुजी इन पक्षियों की वाक्य सुनकर जैसे प्रातःकाल का सूर्य पूर्व से उदयहोताहै उसीप्रकार से क्षीरसमुद्र से निकले कि जिनको देखकर सब उठखड़ेहुये और नमस्कार करके यथायत्पूजा करनेलगे तब विष्णुभगवान् ने उनकीभक्ति देखकर उनसे पूछा कि हे पक्षियो! तुमकौनहो तब कोकिलाबोली कि मैं चैतन्य, स्वप्रकाशहूं और आपही का प्रकाश मुझमेंहै हे विष्णुजी! तुमको मुझसे यह पूछतेलाज नहीं आती कि तुम कौनहो यह शरीर पञ्चभौतिक जड़रूपहै और आत्मावाक् का विषय नहीं है इससे तुमको कौन उत्तरदेवे कि यह है तब विष्णुजीबोले कि कहिये तो तुम्हारा क्या प्रश्नहै तब कुलंगने उत्तरदिया कि आप ने प्रश्नसे प्रथमही हमको उत्तरदिया कि तुमकौनहो अब हम क्याकहें क्योंकि आपस्वरूपके ज्ञानसे रहित हैं तो स्वरूपकेज्ञान का प्रश्न आपसे क्याकरें अब हम शिवलोककोजावेंगे, हमने सुनाथा कि वेदान्तरूप विष्णुक्षीरसमुद्र में हैं परन्तु देखलिया कि वेदान्त नहीं है केवल भ्रांति है तब विष्णुजी बोले कि मैं ईश्वरहूं और अनन्तशक्ति रखताहूं, यह सर्व पक्षी और ब्रह्मा

किसनिमित्त यहां आये हैं तब सर्व पक्षियों ने कहा कि प्राण स्व-प्रकाश कारणरूपहै अथवा कार्य तब विष्णुजीने उत्तरदिया कि प्राणकार्य है यह सुनकर सबपक्षी प्रसन्नहुये और कोकिलाबोली कि इसी बुद्धिसे तुमको ईश्वर मानते हैं, भला प्राणकैसे कार्य होसक्ताहै तब विष्णुजी ने कहा कि जैसे तू कहे वैसाकहूं तब कोकिला ने उत्तरदिया कि अब आप ईश्वरहुये,कहिये कि प्राण कारणहै तब विष्णुजीबोले कि जो मिथ्याहो वह कैसे सत्य कहा जाय तब कोकिला फिरबोली कि मिथ्या क्यों कहतेहो जो सत्य हो वह कहो तब श्रीविष्णुजी ने कहा कि जब शरीर का नाश होजाताहै तब प्राण कहां रहताहै तब कोकिलाने उत्तर दिया कि इस सभामें दिनही रात होरहा है जो कोई कहे कि घटके फूट ने से आकाशका नाश होताहै तो कैसे प्रतीत कियाजाय इससे जो शरीर नाश हुआ तो क्या हुआ प्राण ज्योंका त्यों रहताहै तब श्रीविष्णुभगवान् बोले कि जब सब जगत् मुझमें लीन होताहै तब प्राण कहां रहताहै, मैं निरंजन क्या असंग हूं तब कोकिला ने उत्तर दिया कि वह कौन है जो तुममें लीन होता है तब विष्णुभगवान् बोले कि मेरा अंशहै जैसे रविके अंश परमाणुहैं तब कोकिला फिर बोली कि हे भगवन् ! तुमने अपने को खण्ड खण्ड किया अखण्ड न हुये, यदि आपही का अंशहै तो उसका स्वरूप क्या है तब श्रीविष्णुभगवान् बोले कि जैसे मैं अरूपहूं तैसेही मेरा अंश भी अरूप है तब कोकिला ने उत्तर दिया कि जो अरूप है सो प्राणहै यदि प्राणी अरूपहै तब प्राण स्वप्रकाश हुआ फिर विष्णु बोले कि जब पञ्चमहाभूत नाश होते हैं तब प्राण कहां रहता है तब कोकिलाने कहा कि पञ्चमहाभूत कैसे नाश होते हैं तब श्रीविष्णुभगवान् बोले कि पञ्चमहाभूत मह-तत्त्व अहङ्कार से उत्पन्न हुये हैं फिरभी उसी अहङ्कार में लीन होजायंगे तब कोकिला ने उत्तर दिया कि जब पञ्चभूत आत्मा में लीन हुआ तब प्राण कहीं नहीं गया यदि नाश होता तो फिर

असत्य न होता तब विष्णुभगवान् ने पूछा कि पुरुष बिषे प्राण कहा है यह प्रकाश प्रकृतिका है तब कोकिला ने पूछा कि प्रकृतिका प्रकाशक कौन है तब श्रीविष्णुभगवान् बोले कि प्रकृति मुझी से उत्पन्न हुई है तब कोकिला ने पूछा कि प्रकाशक आपका कौन है तब श्रीविष्णुभगवान् बोले कि स्वयंप्रकाशवान् हूं तब कोकिला बोली कि मिथ्या न कहो यह स्वप्रकाश प्राणही कहताहै इससे तुम प्राणसेही स्वप्रकाशहुये फिर विष्णु और ब्रह्मा पक्षियों के सहित शिवलोक को चले, तब पक्षियों ने मिलकर सलाहकी कि कोकिला को मारना उचित है क्योंकि धर्मशास्त्र में लेखहै कि जो एकसे अनेकको दुःख मिले तो उसको मारडालना उचितहै तब कोकिला बोली कि हे विष्णुजी ! सम्पूर्ण पक्षीगण कहते हैं कि कोकिला का मारडालना उचित है यदि मैं मरूंगी तो तीनोंलोक और आपभी न रहेंगे तब विष्णु भगवान् ने उत्तर दिया कि हे पक्षियो ! कोकिला को न मारो, और चलकर शिवजी के पास पहुँचे परन्तु शिवजी को किसी ने नमस्कार प्रणाम न किया सबने कहा कि हमारी नमस्कार हमारेही को है तब शिवजी बोले कि यह सर्व नहीं है केवल अद्वितीय मैंहीहूं सर्व मौनहुये तब शिवजी फिर पक्षियोंकी ओर देखकर विष्णुभगवान् से बोले कि हे मेरेरूप ! यह क्या लीला है तब विष्णुभगवान् बोले कि हे महाराज शिवजी ! आप सर्वज्ञ हैं और सबके हृदय में ज्ञानको जानते हो तब सब पक्षियों ने कहा कि हे शिवजी ! आप मङ्गलरूप हैं, तब कोकिलाने उत्तर दिया कि हे शिवजी महाराज ! ये सब पक्षी ब्रह्मा और विष्णुको जानतेहैं और मैं आपको जानकर आपकी शरण आई हूं इस लिये कि आपभी प्राण के उपासकहैं और मैं प्राणको स्वप्रकाश जानती हूं अब आप कृपापूर्वक यह बतलाइये कि प्राण स्वप्रकाश है अथवा परप्रकाश तब शिवजी बोले कि प्रथम तुमलोग आपस में संवाद,शास्त्रार्थ करो तत्पश्चात् तुमको उत्तर दिया जायगा तब

हंसने कहा कि सर्व दृश्य मेरा रूपहै क्योंकि मैं सबका अधिष्ठान हूं तब मयूरने उत्तरदिया कि मैं रूप और अरूप दोनों से परेहूं तब कुलंगने कहा कि ये सब मेरे शिष्यहैं शिव इन लोगोंके इस वार्तालापको सुनकर ध्यान में लीन होगये तब कोकिलाने कहा कि प्राण स्वप्रकाशहै जब शिवजीका ध्यान उचाटहुये तब बोले कि हे कोकिला! तू धन्यहै जो दृढ़निश्चय करके असत्को सत्य की नाईं किया, परन्तु हे कोकिला! तुम आपही न्यायसे विचार करो कि प्राण असत्यसे उत्पन्न हुआहै और यह सर्व सन्त हैं और तुम्हारेही रूपहैं इनको दुःख न दो तब कोकिला मौन होगई, यह इतिहास यहां तक पहुँचा और समाप्त हुआ अब ब्राह्मणका इतिहास प्रारंभ करतेहैं अब बृहस्पतिजी कचसेबोले कि हे पुत्र! निश्चय ऐसा चाहिये जिस पुरुषने अपने कहे के महत् को न जाना और न उसपर निश्चयकिया तो उसका सम्पूर्ण कहना और सुनना वृथा और तुच्छ है प्रथम अवस्था में श्रवण, द्वितीय में मनन अर्थात् विचारणा, तृतीयावस्था में निदिध्यासन अर्थात् उस पर निश्चय करना यदि इन अवस्थाओं में संशय इत्यादिक से रहित होकर दृढ़ न हुआ तो कहने सुनने से क्या लाभहै कहताहै कि मैं द्रष्टा ब्रह्मकाहूं और ब्रह्मसे परेहूं परन्तु इस कथनपर दृढ़ता नहीं, क्योंकि वह सुनकर कहता है कि अपने स्वरूप के विचार से आत्मानन्दको नहीं पाताहै इसीसे प्रश्नोत्तर करताहै हे कच! तुम सम्पूर्ण चराचर स्थावर जंगमादि यावद्दृश्यहै सब को विष्णुही जानो अर्थात् यह सब विष्णुही है यदि प्रारब्धाधीन तुमको कोई दुःख देवे तो उसको भी विष्णुही जानो तब कच ने अपने पितासे कहा कि सर्वत्र विष्णुही है तो दुःख कौन देता है और किसको तब बृहस्पतिजी बोले कि श्रीविष्णु विष्णुहीको दुःख देताहै यद्यपि उसके स्वरूपमें द्वैत नहीं है तदपि यह जो दुःख देताहै ऐसा कहा जाताहै सो इसकी परीक्षाहै कि अपने निश्चय पर दृढ़ है अथवा नहीं, इससे हे पुत्र! तुमभी ब्रह्म निश्चयकर एक

श्वास भी इस ध्यान को न त्यागो जो शरीर नाश होय तो भी अपनी दृढ़ता का परित्याग न करो शरीर को भी ब्रह्मही जानो क्योंकि अधिष्ठान और अध्यस्त और कार्य व कारण में किसी प्रकार का भेद नहीं है तब कचने कहा कि हे पिता! शरीर जो पंचभौतिक होकर नाशवान् है उसको कैसे ब्रह्म जानूं तब बृहस्पतिजीने कहा कि तुझको मेरे कथनपर बिश्वास नहीं है तो तेरा प्रयोजन किसतरह सिद्ध होगा यद्यपि यह तुम्हारा कथन कि शरीर पंचभौतिक व नाशवान् है यह सत्य है तदपि शरीर ईश्वर का भी नाशवान् है परन्तु यदि तुम शरीर को ब्रह्म निश्चय करोगे तब बर्णाश्रम व पिता पुत्र का अभिमान न रहेगा अहंकार निबृत्त होकर ब्रह्मस्वरूप में स्थिति होजावेगी इस उपदेश को मनमें दृढ़रक्खो तब कचने उत्तरदिया कि कुछ तप कहो तब बृहस्पति जी बोले कि हे पुत्र! यही तप है कि शरीर, तत्त्व और इन्द्रियों को एक ब्रह्म जानना इसके सिवाय और कुछ तप नहीं है, पूर्ण तप अपने स्वरूप का पहिचाननाहै जब अपने स्वरूप को प्राप्त होजाता है तब कोई तप शेष नहीं रहता है जो तू करे, हे पुत्र! तुम त्वंपद अर्थात् जीवकार्य के अभिमान को त्याग करके तत् पद, ईश्वर कारण में जो ब्रह्माहमस्मि इसप्रकार प्रवेश करो तब कच बोला कि हे महाराज! सन्त कहते हैं कि पद क्या उपाधि के त्यागने से रवाल अर्थात् परमाणु सूर्य नहीं होताहै परन्तु सूर्य के वास्तव निरुपाधिक में अभेद होजाते हैं, जैसे बूंद समुद्र में नहीं होसक्ता परन्तु जलरूपी है और आप कहते हैं कि बूंद अपने स्वरूप को त्याग करके समुद्र होजाताहै सो आपके कहने में और सन्तों के कहने में बिरोध पड़ता है तब बृहस्पतिजी बोले कि हे कच! बाणी के कहने में बंधना हो त्वं पद, तत् पद और असिपद यह तीनों बाणी के कहने मात्रहैं और कहना बाणी का बिषय तब कचने कहा कि यदि इन पदों से कुछ प्रयोजन सिद्ध न होता तो सन्तलोग ऐसा

क्यों कहते तब बृहस्पतिजी हँसकर बोले कि हे पुत्र ! उन्होंने तुम्हारी दृढ़ता कराने के लिये कहाहै कि इस विचार करने से स्वस्वरूप की प्राप्ति होती है नहीं तो तीनों पद कथनमात्र हैं, वास्तव में कुछ भी नहीं, हे पुत्र ! यदि यह तीनों पद वास्तव में न होते तो उपाधि होती परन्तु केवल कथनमात्र हैं तब कचने उत्तर दिया कि हे पिता ! सन्तोंने जो विवरण करके तीन प्रकार अर्थात् तत् त्वम् असि अर्थात् जीव, ईश्वर, ब्रह्म कहा है सो देख करके कहाहै अथवा सुन करके कहाहै तब बृहस्पतिजी ने उत्तर दिया कि हे पुत्र ! यह दृढ़ निश्चय करो कि सभी सुनकर कहतेहैं और आत्मा दृश्य नहीं है और एक आत्मा में दृश्य, द्रष्टा और एक दो अथवा तीन शब्द की प्रवृत्ति नहीं है इसलिये कि आत्मा मन, वाणी और सर्व इन्द्रियों का गोचर अर्थात् दृश्य नहीं है तब कचने कहा कि हे पिता ! आपके कथनसे मुझे बड़ा आश्चर्य प्राप्त होताहै क्योंकि सन्तोंके कहेसे प्रपंचकी सिद्धि होतीहै और सर्व प्रपंच मिथ्या और तुच्छ वन्ध्या के पुत्रकी नाईं है इसीसे इन सन्तोंके सत्संगसे कुछ लाभ नहीं तब बृहस्पतिजी बोले कि हे पुत्र ! सत्संग का त्यागना योग्य नहीं है क्योंकि संसाररूपीस-मुद्रके पार होनेके लिये सन्तोंका संगही जहाज है और स्वात्म-विचार का साधन है यदि स्वात्मविचार की प्राप्तिहुई तब सत् और असत् दोनों कहां हैं इससे सत्सङ्ग इन्हींका दुर्लभ जानो तब कचने कहा कि हे पिता ! अब आप उन पक्षियों की व्यव-स्था कहिये कि कोकिला के मौन होनेके पीछे यह तीनों देवता अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव क्या कहनेलगे तब बृहस्पतिजी बोले कि हे पुत्र ! क्या कहूं कि तुमको मेरे कहनेपर विश्वास और निश्चय नहीं होता तब कचने कहा कि हे पिता ! आप के सङ्ग और उपदेश से बुद्धि नहीं रही इससे निश्चय कौन करे, सुनिये हम और तुम दोनों उपाधिहैं और मैं आत्मस्वरूपहूं और क्लेश, अक्लेश से निर्विकारहूं और शरीर के धर्मसे जो बाल, युवा और

जरा अवस्था हैं तिन से अतीतहो, मुझमें दिन और रात नहीं है क्योंकि मैं उदय और अस्त से रहितहूं और अपने को स्वरूप जानताहूं जो सदा एकरसहूं अब आप ब्रह्मसूत्र कहिये यदि आप कथन करेंगे तो सुनूंगा परन्तु सुनना मुझमें नहीं है क्योंकि मेरे श्रवण इन्द्रिय नहीं है तब बृहस्पतिजी बोले कि हे पुत्र! मेरा सत्संग तुझको सफल हुआ आपको अर्थात् अहङ्कारको जलाकर आप अर्थात् आत्मस्वरूप होगया अब ब्रह्मसूत्र सुनिये, कि सर्व एक शब्द उच्चारण करनेलगे कि जो कुछ है सर्व हमीं हैं तब कुलङ्गने उत्तर दिया कि सत् और असत् मुझमें नहीं है तो उपाधिहोगी अर्थात् माया होगी तब सब पक्षियोंने कहा कि उपाधि भी हमलोगों में नहीं है क्योंकि सर्व हमीं हैं, धनी और दरिद्री भी हमीं हैं पापी, धर्मी सर्व चराचर हमहीं हैं तब कचने कहा कि ऐसा मतकहो कि मुझ में कहना और सुनना कुछ नहीं है तब बृहस्पतिजी बोले कि पाप और पुण्य, सत् और असत्, दिन और रात्रि, कर्त्ता और अकर्त्ता, भोग और भोक्ता सर्व हमीं हैं ऐसे कहने को उपादान कारण कहते हैं जैसे सम्पूर्ण घटआदि मृत्तिकाहीहै तब कोकिलाने कहा कि तुम सब ऐसेहो जैसे खाली घट मृत्तिकामें डालनेसे शब्द करताहै और जो पूर्णहै उसमें शब्द नहीं होता इतना सुनकर सब पक्षियोंने उत्तरदिया कि जो इतना सन्तोंने कहाहै क्या वे पूर्ण न थे तब कोकिला बोली कि ये सब मूर्खहैं इसलिये कि जितना कहना इन सब सन्तोंका है वह द्वैत अर्थात् भेदको सिद्ध करता है सन्त वही ज्ञानी होताहै जो निष्काम होवे यदि निष्कामहै तो क्या कहना और जो कहनाहै सो कामनाहै तब सब पक्षियोंने कहा कि जो निष्कामहै वह बोलता है या नहीं तब कुलङ्गने उत्तर दिया कि आपत्काम बोलताहै परन्तु उसका साक्षी क्याहै तब मयूरनेकहा कि यह तीनों देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश आपत्कामहैं अथवा साक्षी तब कुलङ्गनेकहा कि सर्व आपत्कामहैं जो कोई कहे कि शरीर सकामहै

तो झूठहै क्योंकि जो जड़है वह पत्थरकी नाईंहै कामना से उस को क्या प्रयोजन है और आत्मा अशरीर है उसको कामना से क्या प्रयोजनहै इससे सभी आपत्कामहैं, जो शरीर और आत्मा दोनों आपत्काम हैं फिर कामना किसमें है तब कुलङ्गने कहा कि कामनाधर्म मनका है और मन असत् है इससे जो असत् का कार्यहै वह भी असत् है तब शिवजी बोले कि हे कुलङ्ग! तेरे माता और पिता कौनहैं तब कुलङ्गने कहा कि मैं आपही माता पिता और पुत्रहूं मुझमें द्वैतकी गन्ध नहीं है तब शिवजीने पूछा कि तेरा गुरू कौनहै तब कुलङ्गने कहा किहे शिवजी! मैं आपही गुरू और शिष्यहूं तब शिवजीने कहा कि हे कुलङ्ग! तुमने यह विद्या किससे पढ़ी है तब कुलङ्गने कहा कि मैं आपही विद्यारूप हूं तो किससे पढूं क्योंकि मैं स्वयं प्रकाशितहूं हे शिवजी! यह सम्पूर्ण मेराही रूपहै तब शिवजीने फिर पूछा कि हे कुलङ्ग! तेरा वर्ण क्या है तब कुलङ्गने कहा कि हे शिवजी! जब मैं आपही वर्णहूं तो क्या कहूं तब शिवजीने कहा कि वर्णउपाधिहै और तू निरुपाधि शुद्धहै तब कुलङ्गने कहा कि हे शिवजी! इतने वाक्य जो आपने कहे हैं सो वाचारम्भण अर्थात् कथनमात्र हैं इससे माया सिद्धहुई तब शिवजी ने कहा कि नहीं नहीं, यदि तुमने केवल कथनमात्र कहा तो क्या चिन्ताहै कहने से बन्धन में नहीं होताहूं इतना उत्तर देके फिर शिवजीने विष्णुजीसे कहा कि देखो कुलङ्ग क्या कहता है तब श्रीविष्णुभगवान् बोले कि यह पक्षी सबको मूलसे नाश करता है इसलिये कि मुमुक्षु प्रथम ज्ञानकी अवस्था में हम तीनों देवतों की उपासना और पूजा करता है और जब सिद्धि अर्थात् ज्ञानको प्राप्त होताहै तब हमलोगों को नाश करता है यह लोग हमारे शत्रुहैं इससे इनका वाक्य सुनना योग्य नहीं है तब ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि कुछ डर नहीं तब विष्णुजी बोले कि ज्ञानके आदि में पूजा उपासना प्रणव और तीनों देवतों की है फिर कहां है, हे ब्रह्माजी! इन पक्षियों को

अपना पुत्र न जानो बरन इनको अपना पिता समझो क्योंकि ये आपी आपहैं तब श्रीशिवजी बोले कि मैं तीनों लोकको ग्रास करताहूं परन्तु जिस पुरुष का अहङ्कार निवृत्त हुआ है वह मुझे उपसंहार करता है ॥

इति श्रीविष्णुजी इस बिषे मुझसे सुनो, आगे इतिहास जड़-भरतका चलेगा इति कथा ब्राह्मण और कच समाप्तहुई ॥

श्रीगणेशाय नमः।

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः।

अथ श्रीशिवजी और ब्रह्मा व विष्णुका संबादप्रारम्भ ॥

श्रीशिवजी ब्रह्मा और विष्णुसे बोले कि हम तीनोंलोकको ग्रास करतेहैं परन्तु जिस पुरुषका अहंकार दूर हुआहै वह हमको ग्रास करताहै, हे विष्णुजी ! उस विषयमें एक इतिहास मुझसे श्रवणकरो ॥

अथ राजाभरतका इतिहास ॥

एक भरतनामी राजा हुआ कि जिसके नामसे यह भरतखंड प्रसिद्धहुआ किसी समयमें वह अपने पुत्रको राज्यदेकर आप तप करने के लिये वनमें गया और वहां जाकर देखा कि बहुत से तपस्वी तप करतेहैं और बहुतेरे जपमें ध्यानावस्थित हैं और उन्हीं के मध्यमें एक तपस्वी आत्मबिचार में मन लगाये है और तीनचार संतोंसे मिलकर संवाद करताहै यदि पूछो कि यह क्या है तो कहताथा कि न मैं हूं न तुमहो न यह तीनों लोकहैं, और अगर पूछतेही हो तो सुनो कि जाग्रत् अवस्था और स्थूल देह और समष्टि और व्यष्टि व अभिमानी प्रथमपाद एक लोकहै, और स्वप्नावस्था व सूक्ष्म शरीर व समष्टि और व्यष्टि व अभि-मानी द्वितीयपाद दूसरालोकहै, और सुषुप्ति अवस्था और कारण

शरीर व समष्टि और व्यष्टि व अभिमानी तृतीयपाद तीसरा लोक है यह तीनों लोक नहीं हैं एक चैतन्य श्रीविष्णुही है तब राजा भरत उस सन्त के पास प्रणाम करके बोले कि हे ब्रह्मरूप! मुझे इस अनित्य संसारसे वैराग्यहुआहै और आपकी शरण में आकर इसवास्ते प्राप्तहुआहूं कि आप दयाकरके मुझको ज्ञान उपदेशकीजिये क्योंकि ज्ञानके बिना वैराग्य प्राप्त नहीं होता और जिसको वैराग्यहै उसको ज्ञान शीघ्रही सिद्ध होताहै और उसके अहं, अभिमान का भी नाश होजाता है, राजा के इस बचनको सुनकर वह संत उपदेश करनेलगा कि ज्ञान यही है कि एक बिष्णु कोही पूर्ण और अभेद जानो तब राजा इस उपदेशको सुनकर मनन करके बिचार करने लगा कि संतने जो उपदेश किया यह सत्य है सर्वत्र श्रीविष्णुही है परन्तु यह आशंका उत्पन्न हुई कि यदि सर्वत्र श्रीबिष्णुही है तो हम क्या हैं, इस प्रकार अपने मनमें बिचार करनेलगा कि हमभी बिष्णुही हैं फिर विचारा कि ऐसा नहीं है हम बिष्णुके जाननेवाले हैं परन्तु निश्चय नहीं कि मैं कौनहूं इस प्रकार मनमें शोच विचार कर फिर गुरु के पास जाकर बोला कि संत, हे भगवन्! हमारे इस संशय को निवृत्त कीजिये यदि आप पूछें कि तुम्हारे क्या संशय है तो हमारे यह बड़ी भारी संदेह है कि हम बिष्णु के जाननेवाले हैं हमारा स्वरूप क्या है तब संत बोले कि तुम ब्रह्महो तब राजाने इस वाक्यको सुनकर फिर प्रश्न किया कि-हे गुरुजी! जैसे हम ब्रह्मको जानते हैं वैसेही ब्रह्मको और सर्व पदको देखते और जानते हैं परन्तु अपने स्वरूप को नहीं जानते इससे कृपापूर्वक आप निर्णय करके निश्चय कराइये कि मेरा स्वरूप क्या है तब सन्त बोले कि यदि तुमको ज्ञान प्राप्त हुआ है तो मौनहो क्योंकि इससे अधिक कथन करने की वाणी में शक्ति नहीं है यदि पूछो कि क्या आत्मा मन, वाणी के बिषे नहीं है या मन, वाणी और संपूर्ण इन्द्रियोंसे उसकी प्राप्ति नहीं

है, यह तीनपद जीव, ईश्वर, ब्रह्म केवल कथनमात्र हैं और प-रमात्मा आनन्दस्वरूप कथनसे परे है, संतके इस बाक्यको सुनकर राजा भरत स्वरूप में लीन हुआ तब शिवजी बोले कि हे बिष्णुजी! एक समय धर्मराज ने काल से कहा कि राजा भरत को लेआवो तब काल धर्मराजकी आज्ञा पाकर राजा भरत के पास आया और उनको देखनेलगा कि भीतर एक गोबिंदही हैं भरत नाम किंचित् भी नहीं है तब काल आश्चर्यको प्राप्तहोकर बिचार करनेलगा कि किसको लेजाऊं और इसी शोच बिचारसे लौटकर धर्मराजके पास पहुँचा और बोला कि हे महाराज धर्मराज जी! सब संतों को मारो क्योंकि वे प्राणियों को हमारी फांसी से छुड़ाते हैं जब हम भरत के समीप पहुँचे तब देखा कि वहां भरत का अंश किञ्चिन्मात्रभी नहीं है कि जिसको आपके पास ले आवें तब धर्मराज और यमकिंकर दोनों मिलकर हमारे पास आये और बोले कि हे महाराज! भरत हमारे हाथ से गया किंचित् शरीर उसका नहीं रहा यदि पूंछो कि स्थूल, सूक्ष्म के अभिमान से रहित हुआ कहो कि हम क्या करें किसको लावें तब शिवजी बोले कि हे बिष्णुजी! तब हमने राजा के पास जाकर देखा कि उसके मुखसे केवल गंगा के प्रवाह की तरह उच्चारण होताहै कि सर्व हमीं हैं परंतु शरीर के अभिमान से रहित होकर सर्वोहमस्मि उच्चारण करता है तब मैंने कहा कि हे राजन्! तुम धन्यहो कि जो अपने स्वरूप में प्राप्तहो परन्तु यह कहिये कि तुम्हारा स्वरूप क्या है तबभी राजाने किंचित् उत्तर न दिया तब हमने धर्मराजसे जाके कहा कि इस शरीरके भीतर भरतका कुछभी अंश नहीं है और हम ने फिर जाकर राजा से पूछा कि हे राजन्! तुम्हारा स्वरूप क्या है तब राजा ने उत्तर दिया कि हे शिव! बड़े आश्चर्यकी बात है कि आप स्वयंशिव होकर मुझ से पूछते हैं कि तुम्हारा स्वरूप क्या है, आपही निर्णय कीजिये कि तुमसे भिन्न क्या है जो तुमको उत्तर देवे इससे निश्चय होता

है कि आप जानतेहो कि मैं भरत हूं यहां भरतकी गन्ध नहीं है कि जो काल का ग्रास होवे, हम कालको खाकर सुखी हुये इस लिये कि भरत अज्ञानको कहते हैं सो उस भारतको काल क्या ज्ञान खायकर नाश करता हुआ अरु उस ज्ञानको हम खाकर विज्ञानरूप हुये हैं तब हमने कहा कि हम तुम्हारे पास आये हैं हमसे कुछ संबाद करो तब राजा बोला कि दूर और समीप हम में नहींहै फिर क्या कहें तब मैंने कहा कि त्रिशूल से तुम्हारा शिर काटूंगा तब राजाने उत्तर दिया कि मैंने अपना शिर आपही काटडाला है कि जिससे जन्म मरण के भयसे रहित हुआ हूं आपी आपु हूं हे श्रीबिष्णुजी ! ऐसा पुरुष अहंकार से रहित हुआ जो है उसको किस तरह नाश करूं तब श्रीबिष्णुजी इस कथनको सुनकर बोले कि हे श्रीशिवजी ! सर्व संसार की स्थिति हमारे अधीन है परन्तु जो पुरुष आपत्कामहै और कामना से भी रहित है सो पुरुष हमारी स्थिति करता है इस बिषय में मुझ से एक इतिहास सुनिये ॥

॥ राजा के बेटे का इतिहास ॥

पूर्वकाल में एक राजा के एक बेटा पैदा हुआ कि जिससे वह बाल्यावस्था से अपने साथ रखकर बैठते उठते सोते जागते बोलते चालते खाते पीते सर्व काल में श्रीबिष्णु श्रीबिष्णु कहता रहता था एक दिन उस लड़के का पिता राजा अपने पुत्रसे बोला कि हे पुत्र ! जब अपने शरीर को त्यागेंगे तब हमारे पीछे कौन राज्य करेगा जब कि सबकाल में बिष्णु विष्णु कहना और पिशाचकी तरह बिष्णु के पीछे लगना इससे क्या लाभहै यदि कोई किसीको दो तीनबार पुकारे तब वह बहुत क्रोधित होताहै और आप जो रात दिन बिष्णु का नाम पुकारा करते हैं क्या बिष्णुजी तुमपर क्रोधित न होंगे तब राजपुत्रने उत्तर दिया कि हे पिता ! इसी से बिष्णु उत्कृष्ट अर्थात् उत्तमहैं कि जो जितना बिष्णुको

अधिक भजै उतना उससे अधिक प्रसन्न होते हैं निदान इसी प्रकार बहुत काल ब्यतीत हुआ कि उस लड़के के पिता का देहान्त हुआ तब राजाका बेटा जैसे भजन करता था तैसे करता रहा पिताके मरनेसे किंचित् अभ्यासको न छोड़ा और किंचित् शोकभी न किया और राज्य नष्ट होगया हे श्रीशिवजी! तब हमने उस राजा के बेटे से साक्षात्कार होकर अर्थात् आकाशबाणी से कहा कि हे पुत्र! राजकर तुम्हारे राज की रक्षा और पालन हम करेंगे तब राजाके बेटे ने कहा कि हे विष्णुजी! मुझको तुम्हारे सिवाय कुछ भी अच्छा नहीं लगता न किसी बस्तु की कामना है तब हम राज्य को लेकर क्या करेंगे क्या तुमसे बढ़कर अन्यबस्तु राज्यादिक श्रेष्ठहै जो तुमको छोड़कर उस वस्तु को ग्रहणकरूं राज्यको हम सूखे तृणकी नाईं तुच्छ जानते हैं हे शिवजी! ऐसी व्यवस्था उस राजपुत्र की हुई कि वह राजपुत्र अनेकानेक वनों में घूमता हुआ अहर्निश श्रीविष्णु श्रीविष्णुके सिवाय और कुछ अपनी जिह्वापर न लाताथा और पूछने पर यही कहता था कि स्वयं विष्णुहूं निदान वनान्तर में घूमतेहुये अनसूया के पुत्र दत्तात्रेय अवधूत जोकि हमारा रूपहैं उनसे समागम होगया और उन्होंने राजपुत्र से पूछा कि हे राजपुत्र! तुम्हारा स्वरूप क्या है तब राजपुत्र ने उत्तर दिया कि मैं श्रीविष्णुका दासहूं तब अवधूत ने उत्तर दिया कि तुम्हारा स्वामी आश्चर्यरूप और उनके सेवक भी अतिआश्चर्यरूपहो इसलिये कि इतने समयतक भक्ति व भजन करनेपर भी तुम्हारी द्वैतबुद्धिका परित्याग न हुआ न उस स्वामीनेही तुमको इस भेद उपाधि से निवृत्त करके मोक्षपद दिया तब राजकुमार ने कहा यदि सर्व विष्णु है तब तुमभी विष्णुही हो अब कहिये कि इस उपाधिसे ब्रह्म किस प्रकार से भिन्न समझाजाता है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि यदि तुमने सम्पूर्ण वस्तुओं में विष्णुकाही अध्यारोपण कियाहै तब मध्य में तुम कौनहो कि जो अपने को

दास मानते हो इसीसे तुमको भ्रम हुआ और निश्चय करतेहो कि मैं भक्तहूं और विष्णुको अपने नेत्रोंसे देखा है इस निश्चय से कदापि मुक्त नहोंगे क्योंकि विष्णुको सर्वव्यापी जानकर अपनेको उनसे भिन्न मानतेहो विष्णुको भिन्न देखने से क्या लाभ है इसीतरह से अनादिकाल और अनेकजन्मों में विष्णुको भिन्न जानते और देखते रहोगे, हे राजकुमार ! यह शरीर मिथ्या और असत्य है जब मृतक होताहै तब इसकी तीन व्यवस्था होती हैं यदि कोई खागया तो विष्टा होजाताहै और यदि रक्खा रहगया तो कृमि होजाताहै और यदि जलायागया तब भस्म होजाता है इससे इस अपने शरीरको ऐसाही समझकर इसकी प्रीति छोड़कर शरीराभिमान को त्यागदो और सच्चिदानन्दमें जो कारण अधिष्ठान तुम्हारा है उसमें प्राप्तहो, यदि तुम इस शरीर को न त्यागोगे तब यह शरीरही तुमको त्यागदेगा इससे उचितहै प्रथम तुम्हीं इसका परित्यागकरो हे पुत्र ! इस शरीर को स्वप्नकी नाईं व जलके बुद्बुदेकी तरह मिथ्या निश्चय करो जो पुरुष ज्ञानी हैं वह इसके साथ प्रीति नहीं करते इससे तुमभी इसकी प्रीतिको त्यागदो यह केवल देखनेमात्र है जिस समय शरीर नाश होताहै तब पांचभूत पांचोभूतोंमें प्रवेश करजाते हैं जो पुरुष आत्मस्वरूप को नहीं जानताहै वह फिर जन्ममरणके बन्धनमें नहीं फँसताहै तब राजपुत्रने कहा कि हे अवधूत ! मुझको शरीरसे वैराग्यहुआ है अब आप कृपाकरके ज्ञान उपदेश कीजिये तब अवधूतने कहा कि नामरूपका त्यागकर अपनेको सत्यरूप जानो और निश्चय करो कि जो कुछहैं वह आपही हैं तब राजपुत्रने उत्तर दिया कि यदि ऐसाहीहै तो मैं भ्रममें क्यों पड़ा हूं मैंने अपने रूपको अब जाना कि जो कुछहै हमींहैं तब अवधूत ने कहा कि जब देखना और न देखना तुममें नहीं रहा तब तुमको स्वरूप प्राप्तहुआ इस लिये कि तुमसे भिन्न कुछ नहीं है जो कुछ तुम देखते और जानतेहो सब तुम्हीं हो तब राजपुत्र स्वरूपमें लीनहुआ फिर

बिष्णुजी बोले कि हे शिवजी ! उसीसमय मैं भी जाकर पहुँचा और बोला कि हे राजपुत्र ! यह अपना शरीर मुझेदे कि इसका पालन मैं करूं तब राजपुत्रने उत्तरदिया कि बिष्णुजी तुम्हारी तो पालना और स्थिति तो मैं करताहूं क्योंकि मैं स्वयंप्रकाशयहूं और मेरेही प्रकाश से तुम प्रकाशित हो मुझको मुक्त आत्मा कहतेहैं तब मैं आश्चर्य को प्राप्तहुआ कि इस राजपुत्र को क्या हुआ कि यह सदा अपनेको दास कहताथा परन्तु आज स्वयंस्वामी बन-ताहै तब मैंने उससे पूछा कि हे राजपुत्र ! तुम्हारा स्वरूप क्या है तब राजपुत्र ने कहा कि हमारा स्वरूप तुम्हींहो परन्तु तुम में भेदहै मैं अभेदहूं हे श्रीविष्णुजी ! मैं अद्वितीयहूं, हे शिवजी ! तब मैं अपने स्थानको चलागया, जो पुरुष सर्वकामनासे रहितहुआ है वह मेरा पालन करताहै, तब ब्रह्माजी बोले कि हे श्रीविष्णुजी! यह कहतेहैं कि ब्रह्मा सम्पूर्ण संसारको उत्पन्न करता है यह मि-थ्याहै इसलिये कि आत्मा अद्वितीय है अरु स्वयंप्रकाश है इस में द्वैत किंचित् नहीं है यह निर्णय करके अपने २ स्थान को चलेगये ॥

इति श्रीशिव, ब्रह्मा और विष्णु का संवाद समाप्त ॥

ॐ नमः ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

कागभुशुण्डजी का इतिहास प्रारम्भ ॥

एक समय दुर्वासा जी अर्थात् अवधूत कागभुशुण्डजी के स्थानमें गये और राजनगर के बाहर किसी स्थान में आराम करनेलगे, और कागभुशुण्डजी शिकार खेलने के लिये बन में गये थे कि कागभुशुण्डजी का राजकुमारनामी पुत्र वहां पहुँचा जहां कि अवधूत सोतेथे और उनको इस निश्चिन्ताई से

सोताहुआ देखा जिसतरह सिंह सोताहै कि जिनको अपने श-
रीरकी नाममात्र भी सुधि नहीं है और बहुतसे पक्षी अवधूतके
शिरपर बैठकर नाना प्रकारके रमणीक शब्द करतेहैं परन्तु अव-
धूतको इसकी कुछ भी खबर नहीं है जब इस दशामें अवधूत
को राजकुमार ने देखा तब जाकर अपने पिता कागभुशुण्डि से
बोला कि तुम्हारे नगरमें एक परमहंस आकर प्राप्त हुये हैं काग-
भुशुण्डिजी इस शब्द के सुनतेही मारे प्रेमके इस वेगसे उनसे
मिलनेको चले कि जिसतरह मछली पानीमें अतिवेग से धावती
है और अभिमान को त्यागकरके अवधूतके पास पहुँचे कि जिन
की दशा सोतेहुये सिंहके समान कि जिनके सम्पूर्ण शरीरमें धूर
लगीहुई है और निश्शंक सोरहे हैं देखकर अपने मनमें विचार
करनेलगे कि इनका वर्णाश्रम क्या है और यह कौन पुरुष है यह
प्रश्न करतेहुये कि हे रामरूप! तुम कौनहो तब अवधूत हँसकर
बोले कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि रामरूप बतलाता और फिर
भी पूछता है कि तुम्हारा वर्णाश्रम क्या है यदि रामही है तब
वर्णाश्रम क्या वस्तु है, और यदि पूछतेहो कि तुम्हारा वर्णाश्रम
क्या है तो मैं वर्णाश्रमसे रहित होकर विज्ञानरूप हूं तुम्हारा कुछ
प्रयोजन मुझसे सिद्ध नहीं होसक्ता क्योंकि तुम वर्णाश्रममें फँसे
हो इसलिये जो पुरुष तुम्हारी तरह वर्णाश्रम में फँसाहो उसके
पास जाओ इस वचन को सुनकर कागभुशुण्डिजी मौन होगये
और फिर एकक्षण उपरान्त बोले कि हे अवधूत! तुम नग्न क्यों
फिरते हो क्या तुम्हारे कुछ वस्त्र नहींहै और न कोई तुमको वस्त्र
देताहै तब अवधूतने उत्तरदिया कि दशोदिशा मेरा वस्त्रहैं जो पुरुष
वस्त्र रखताहै और दूसरे की इच्छा करताहै वह तृष्णाहै यदि तुम
पूछो कि तुमको कोई वस्त्रदेवे तब क्या करोगे तो उत्तर दूंगा कि
पहिरलूंगा यदि कोई भोजन लाताहै तो खालेताहूं परन्तु किसी
वस्तुकी इच्छा कभी नहीं करता यदि कोई रेशमकी शय्या
बिछा देताहै तो भी सो रहताहूं परन्तु उस सुखसेजपर सोने में

मुझे कुछ आनन्द नहीं आता और न वनमें कांटों पर सोने से कुछ दुःखही प्राप्त होताहै मुझको सुख और दुःख प्रत्येक दशामें आनन्द रहता है जैसा जो आश्रितकालमें आकर प्राप्त होताहै तैसाही भोगताहूं और प्रत्येक दशा में आनन्द में मग्न रहताहूं हे कागभुशुण्डि ! तुमको इस वाक्य व सत्सङ्ग से क्या लाभ है क्योंकि मैं अवधूतहूं तुम को उचित है कि एकान्त में बैठकर रामराम जपो तब कागभुशुण्डिजी बोले कि हे महाराज अवधूतजी ! अब आप कृपा करके नगर में चलिये तब अवधूतने उत्तर दिया कि नगर में मुझको कुछ सुख नहीं है न वनमें दुःख है मैं सदा एकरस रहता हूं नगर शरीर को कहते हैं तब तहां शरीर है वहीं नगर है यदि तुमको किसी प्रकार का भय होवे तो नगर में जाओ तब कागभुशुण्डिजी बोले कि बिना इच्छा अथवा हमारी इच्छाही से नगरमें चलिये नगर का त्यागना उचित नहीं है तब अवधूत ने उत्तरदिया कि यह जो तुम्हारा कागभुशुण्डि नाम है यह मुझे दीजिये तब मैं नगर में चलूं यदि तुमको कि मुझे कुछ द्रव्यकी इच्छाहै सो मुझको द्रव्यकी कुछभी इच्छा नहीं है क्योंकि सुमेरुपर्वत सोने से भरा हुआ है हे कागभुशुण्डिजी ! मैंने माछी को गुरु किया कि जो मधुको इकट्ठा करती है जब कुटुम्ब की वृद्धि होगी तब सब मिलकर खावेंगे, सदा शोचती रहती है परन्तु कदाचित् दैवयोगसे कोई पुरुष आ गया और मक्खियों को मारकर मधु लेगया तो अन्त में सिवाय दुःख उठाने के कुछ उनके हाथ नहीं आता इसी बिचारसे मैंने संग्रह का त्याग कियाहै यदि तुम कहो कि बिना पदार्थ के राज्य नहीं होता सो यह अज्ञान और दुर्बुद्धि है इसलिये कि प्रारब्ध अन्यथा नहीं होता जो होना है वही होताहै जो पुरुष नारायण का भजन करता है वह नारायणरूप होजाता है तुम कागही रहे विचार करो कि जो प्रारब्ध में है उसको ईश्वर भी न्यूनाधिक्य नहीं करसके तो यदि इच्छा करो तो प्राप्तहो और न इच्छाकरो

तब भी प्राप्त होता है जो न होना है उसकी इच्छाभी करो तब भी वह प्राप्त न होगा अब तुम जो अभिमान का परित्यागकरो तो मैं शहर में चलूं तब कागभुशुण्डिजी बोले कि जिस शरीरसे मुझे नारायण प्राप्त हुये हैं उस अभिमानको किस प्रकारसे परित्याग करूं तब अवधूत ने कहा कि निश्चय होताहै कि तुमको मुझे शहरमें ले चलना पसंद नहीं है मैंने सुनाथा कि कागभुशुण्डि परमहंस है परन्तु देखने से निश्चित हुआ कि पूरा कौवाहै अब हमको तुमसे कुछभी प्रयोजन नहीं है इतना समय हमारा व्यतीत हुआ हमने सुनाथा कि कौआ बुद्धिमान् होता है परंतु बिष्टा पर बैठता है वह आंखों से देखा यदि तुम पूछो कि विष्टा क्या चीज़ है तो यही शरीर विष्ठा है जो पुरुष इस शरीरको उत्तम समझता है वही कौआ है हे कौआ! जिसका तू भजन करताहै वह मैंहीहूं राम मुझी को कहते हैं रामका भजन इसीको समझो कि ब्रह्मा से लेकर पिपीलिका पर्यंत सबमें रामही परिपूर्णहै सो मैंही हूं और कोई नहीं ऐसा निश्चय करना यही भजन है हे कागभुशुण्डि! यह समझो कि संपूर्ण संसार में आत्मारामही परिपूर्ण है परन्तु यह बुद्धि तुम्हारी भाग्य में किस तरह होवै कि पिता तुम्हारा काग और माता तुम्हारी हंसिनी है, तू यही जानताहै कि हमारे पास माया कहां है और क्यों नहीं आती देखो जब तुम आप मायारूपहो तो फिर माया तुम्हारे पास किसप्रकार आवे मिथ्या शरीर को सत्य जानना इसी को माया कहते हैं और तुम कहतेहो कि मैं दासहूं और राम मेरा स्वामी है यदि विचारदृष्टि से देखो तो तुम नहीं हो केवल गोविन्दही है अब कहिये माया किसको कहते हैं तब कागभुशुण्डि ने उत्तर दिया कि मोह को माया कहते हैं तब अवधूतने पूछा कि मोह क्या चीज़ है कि पुत्र और राज्य को अपना जानना इसी को माया कहते हैं तब अवधूतने कहा कि हे मूर्ख! शरीर को अपना और अपने को शरीर अर्थात् मैं शरीरहूं और शरीर मेरा है ऐसा

समझना इसी को मोह कहते हैं तब कागभुशुण्डिजी बोले कि त्वं पद माया नहीं है क्योंकि यह किञ्चित् अभिमानी हैं तब अवधूतने कहा कि त्वंपद जीव, माया, भूलमें क्या वस्तुहै तब कागभुशुण्डिजी बोले सन्तलोग यहबात कहते हैं कि तत्पदरूप में हूं क्या ईश्वरोहमास्मि में माया नहीं है तब अवधूत ने कहा कि जो पुरुष ईश्वरोहमस्मि ऐसा कहते हैं और धारणा धरते हैं उनको सुख प्राप्त होताहै क्योंकि जो कार्य को त्याग करके अपने को कर्ता का कारण जानता है और असिपद शुद्ध निर्वाण परमानन्दपद है सो विज्ञान से प्राप्त होताहै और उसीमें ब्रह्मसुख होताहै कि जिस में सुख और दुःखकी गन्ध नहीं है हमने सुनाथा कि तुम मायासे रहित हो परन्तु अब देखने से निश्चित हुआ कि केवल तुम मायारूपही हो यदि तुमको इच्छा होवे कि मुझे सन्तोंका सत्सङ्ग प्राप्तहो तो सन्तोंको तुमसे क्या प्रयोजन है सन्त आप्तकाम होते हैं वह लोग यह नहीं करते कि तुम्हारी द्रव्य लेवें अथवा तुमसे सेवा करावें हमको बड़ाआश्चर्यहै कि तुम ने इतने समयतक गोविन्दकाभजन किया परन्तु तुमको कुछभी लाभ न हुआ वृथा कष्टसहतेरहे अब हम जाते हैं जब अवधूत ने जाने की इच्छाकी तब कागभुशुण्डि अवधूतके चरणोंपर गिरकरबिनती करने लगे कि हे अवधूत ! अबतक मैं जानताथा कि भक्तिही उत्कृष्टहै परन्तु अब आपकी कृपासे निश्चय हुआ कि आत्मज्ञान के बिना सुख नहीं है अब आप दया करके मुझे आत्मज्ञान उपदेश कीजिये क्योंकि मैं संसाररूपी अग्नि से जरताहूं इस से हमारे शरीर की रक्षा कीजिये तब अवधूत ने कहा कि यदि मिथ्या संसारको त्यागकरके सुखीहों तो निश्चयकरो कि हमारा रूप है मैं उससे भिन्न नहीं हूं इसी वार्तालाप के होतेही वहां मीमांसा भी आकर उपस्थित हुये और बोले कि जबतक कर्म न करे तबतक रामरूप कैसे होवे कर्मकेही करनेसे रामरूप प्राप्त होताहै तब अवधूत बोले कि हे मीमांसा! कर्म शरीरही से होतेहैं

अथवा आत्मा करता है यदि तुम कहोकि कर्म शरीर करताहै तो आप जड़है आत्माअक्रिय अर्थात् न करनेवाला और शरीरसे रहितहै या निरवयव है अर्थात् कोई अङ्ग नहीं हे मीमांसा ! अब कहिये कर्म कौनकरे तब मीमांसा मौन होगये और उसी क्षण शुकआकर प्राप्तहुआ और बोला कि यह सब कालके अधीन है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि यदि कर्म है तो कालके अधीन होता है यदि कर्म नहीं है तब कालको अक्रिय से क्या सम्बन्ध है तब वैसे शुक मौनहुआ तब न्याय आकर प्राप्तहुआ और बोला कि जो है सो कर्ताही है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि यदि कर्म है तब कर्ता भी है और जब कर्म नहींहै या अक्रियहै तब कर्ता कैसे कहाजाय तब न्याय भी मौन होगया तब पातञ्जलि ने आकर कहा यदि योग न करे तब सुख कैसे प्राप्त होवे क्योंकि योगके विना सुख नहीं मिलता तब अवधूत ने उत्तर दिया कि कहिये योग स्वयं प्रकाशित अथवा स्वतः सिद्धहै या किसी के करने से होताहै तब पातञ्जलि ने कहा कि मैं ऐसा जानताहूं कि किसी के करने से होताहै तब अवधूत ने कहा कि योग से क्या लाभ है क्योंकि जो स्वयंसिद्ध नहीं है वह मिथ्याहै तब पातञ्जलिभी मौन हुआ तब सांख्य आकर प्राप्तहुआ और बोला कि नित्य और अनित्य के विचारके विना रूप कैसे जानेगा तब अवधूत बोला कि नित्य और अनित्य का विचार द्वैत लेकर है और आत्मा एक और द्वैतकी प्रवृत्ति से रहित अर्थात् शुद्धहै तब सांख्य भी मौन होगया तब सबसे पीछे सत् चित् आनन्द वेदान्तरूप राम धनुष बाण और शंख गदा हाथमें लेकर मग्नहुये आनन्दचेष्टा में आकर प्राप्तहुये तब अवधूत बोला कि हे कागभुशुण्डि ! कहो हम रामरूपहैं यदि ऐसा न कहोगे अर्थात् अभेद निश्चय न करोगे तो मैं तुमको और तुम्हारे रामको भस्म करदूंगा तब श्रीराम जी हँसकर बोले कि हे कागभुशुण्डि ! तुम निर्भय व निस्संशय होकर कहो कि मैं रामरूप हूं अर्थात् सब चराचर संसार में एक

अद्वितीय और व्यापक मैंहीहूं तुम कहांहो यदि तुम नहींहो तब केवल रामही है कहो रामोहमस्मि अर्थात् मैं रामरूप हूं तब कागभुशुण्डि ने आनन्दपूर्व्वक प्रसन्नबदन होकर कहा रामोहमस्मि अर्थात् द्वितीय राम मैंहीहूं मुझसे अतिरिक्त और राम कोई नहीं है ॥

इति कागभुशुण्डिइतिहाससमाप्त ॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ ब्रह्मसूत्र में ब्रह्मयज्ञ का इतिहास प्रारम्भ ॥

एक राजा पुष्करद्वीप में देवहूती के पुत्र कपिलमुनि के आश्रम में यज्ञ करने के लिये आया और प्रणाम और सेवा करके नम्रता से बोला कि हे ऋषीश्वर! हे गुरो! कृपा करके यह बतलाइये कि यह संसार सत् है अथवा असत्, चैतन्य है या जड़है और आपका स्वरूप क्या है और मैं कौन हूं तब कपिलदेवजी बोले कि हे राजन्! तुम धन्यहो जो ऐसा प्रश्न किया अब ध्यान धरकर इसके विवरण को श्रवण कीजिये देखो न मैंहूं न तुमहो न यह संसारहै केवल अद्वितीय भेदसे रहित एक ब्रह्महै कपिल मुनि के इस उत्तर को सुनकर राजा अतिआश्चर्य को प्राप्त हुआ और बोला कि हे महाराज! यदि तुम नहीं हो न मैं हूं न यह संसार है तो ब्रह्म क्या है मैं ब्रह्मको नहीं जानताहूं कृपा करके मुझे समझाइये राजा के इस महाविस्मित वचनको सुनकर कपिलमुनि बोले कि हे राजन्! तुम्हारा कथन सत्य है देखो ब्रह्मके प्रकाशक तुमहो और तुम्हीं ब्रह्मके साक्षीहो तब राजाने पूछा कि हे महाराज! मेरा स्वरूप क्याहै तब कपिल

मुनि बोले कि हे राजन्! सत् चित् आनन्द अद्वितीय स्वरूप तुम्हाराही है तब राजाने पूंछा कि मैं शरीरहूं अथवा कोई वस्तु हूं तब कपिलमुनि बोले कि तुम शरीर नहींहो वरन शरीर के प्रकाशकहो तब राजाने हँसकर पूंछा कि हे महाराज! मुझ में यह अद्वैत पद कैसे है पहिले आप कहते थे कि तुम शरीर नहीं हो और अब कहतेहो कि तुम अद्वितीयहो इस आपके कथन से तो दो पद एक चैतन्य दूसरा जड़ सिद्ध होतेहैं यह क्या भेद है तब कपिलमुनि बोले कि हे राजन्! तुम जबतक शरीर को अपनेसे जुदा न जानोगे तबतक कभी सुखको प्राप्त नहीं होसके सिवाय अहंकार शरीरके केवल कथनमात्र है और स्वरूप का जानना अतिदुस्तर है तब राजा ने कहा कि हे गुरो! आप कहते हो कि जाननेसे सुख होताहै सो जानना और कहना क्या वस्तु है मैं इसके भेद से अनभिज्ञहूं इससे दयाकरके मुझे समझाकर मेरे भ्रम को निवृत्त कीजिये तब कपिलमुनि बोले कि हे राजन्! तुम सत्य कहतेहो यदि तुम में जानना और सुनना होय तब तो जानो तुम तो मन और वाणी से परेहो अब इसके विवरण को सुनिये कहना वह है कि जो वेद और शास्त्र व सत्संग से सुने वही कहे औरजानना वहहै कि जो कुछ सुने उसपर निश्चय करे और तद्रूपहो तब राजा ने पूंछा कि तद्रूप कैसे होता है तब कपिलमुनि बोले किहेराजन्! जोतुम्हारी इच्छा तद्रूपहोनेकीहै तो सुनो और जो कुछ मैं तुमसे कहताहूं उसको सत्य जानो आत्मा निश्चय विज्ञान से होता है और विज्ञान ज्ञान से उत्पन्न होता है और ज्ञान भक्ति से उपजता है और भक्ति शुभ कर्म या निष्काम कर्म से पैदा होती है और निष्काम कर्म वैराग्य से होता है हे राजन्! सर्व साधन का कारण वैराग्य ही है इसी से वैराग्य सर्वोत्तम है क्योंकि वैराग्य सेही परम्परा ज्ञान के द्वारे से स्वरूप को प्राप्त होता है तब राजाने फिर पूछा कि जब मैंही स्वरूपहूं तो वैराग्य और निश्चय से क्या प्रयोजन सिद्ध है तब

कपिल मुनि बोले कि हे राजन्! यदि तुम्हीं हो तो निश्चय भी तुम्हीं करो तब राजाने कहा कि पहिले आप उपदेश करते हो कि तुम ब्रह्महो फिर निश्चय क्या कहते हो निश्चय कल्पना से होता है उसे हम कैसे करें यदि मैंही हूं तब निश्चय और न निश्चय करना मुझमें नहीं है हे भगवन्! अब कहिये कि क्या करें और किस वस्तु की निश्चय करें जब कि मुझ से अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है तब कपिल मुनि बोले कि जो कुछ करो स्व-स्वरूप करो और सब क्रिया को स्वरूपही जानो तब राजाने कहा कि मुझे जान पड़ता है कि यह शरीर कठपुतली की नाईं जड़ है फिर इस जड़शरीर में मेरा वास किस तरह होसकै है तब कपिल मुनि बोले कि वेद का वाक्य है कि जाग्रत् अवस्था विषे नेत्रमें और स्वप्नावस्था विषे कंठमें और सुषुप्ति अवस्थाविषे हृदय में और तुरीयावस्था में मूर्द्धि अर्थात् शिरमें स्थितहै तब राजाने कहा कि जो नेत्रादि चार स्थान शरीर में हैं और बाकी शरीर के अंगों में नहीं हैं तब कपिल मुनि बोले कि हे राजन्! जैसे सूर्यका प्रकाश सम्पूर्ण जगत् में सबको प्रकाशित करता है परन्तु सूर्यका दर्शन सूर्यके मंडल मेंही होताहै न कि दूसरेस्थान में तैसेही तुरीयावस्था ब्रह्मकी चैतन्यसत्ता सर्व अंगों में रोम रोम शरीर में व्यापक परिपूर्ण है-परन्तु यदि तुरीया आत्मा का दर्शन करना चाहे तो नेत्र आदि चार स्थान में जाग्रत् आदि अवस्थामें होताहै सो तुरीया आत्मा तुम्हीं हो हे राजन्! और भी सुनिये कि जैसे मुख आदि का प्रतिबिंब स्वच्छ अर्थात् निर्म-ल काच आदि में पड़ताहै भीत आदि मलिनवस्तुमें नहीं पड़ता तैसेही शरीरमें स्वच्छ अर्थात् निर्मल स्थानों में प्रतीत आत्मा अर्थात् तुम्हारी होती है तब राजा बोला कि हे भगवन्! आजके दिन मेरा जन्म सफल हुआ और इससे पहिले अर्थात् आपके उपदेश से पहिले मुझ से जो जो कर्म हुये हैं वह केवल शरीरके अभिमान से हुयेहैं परन्तु अब मैं आपकी अनुग्रहसे देहके अभि-

मान से रहित होकर संसार से मोक्ष हुआ तब कपिलमुनि बोले कि हे मूर्ख! ऐसा मतकह अब तक तुझे ज्ञान नहीं हुआ क्योंकि तुझको अबभी द्वितीय दिखाई पड़ताहै क्योंकि तू कहताहै कि आपके अनुग्रह से संसार से मोक्ष हुआ ज्ञानीको अहं त्वं अर्थात् हम तुम की वृत्ति नहीं होती तब राजाने कहा कि अवश्य करके वह उपाय बतलाइये कि जिससे भेदवृत्तिका नाश होवे तब कपिलमुनि बोले कि सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमादि चराचर में एक आत्माही देखना और ज़ानना यही उस भेदके छूटने का एक उपाय है दूसरा कोई नहीं तब राजा बोला कि हे भगवन्! अब मेरी इच्छाहै कि मैं ब्रह्मयज्ञ करूं इसी वार्तान्तर्गत दत्तात्रेयजी आपहुंचे और बोले कि सम्पूर्ण संसार में एकमैंही परिपूर्ण हूं तब मैत्रेयजी ने पूछा कि हे भगवन्, पराशरजी! बड़े आश्चर्यकी बातहै कि अवधूत भरतखंडमें था और कपिलमुनि पुष्करद्वीप जो सातवां द्वीप है वहां थे वे किसतरह पहुंचे तब पराशरजी बोले कि हे राजन्! सुनिये संत ब्रह्मवित् सम्पूर्ण संसारमें अर्थात् सब स्थानों में परिपूरित अर्थात् व्याप्तहैं जहां इच्छा करते हैं वहांही प्रगटहोते हैं इससे अवधूतके पुष्करद्वीप जानेमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं वह ईश्वरका अंश योगकला से युक्त है और भी सुनिये अवधूत बोले कि चराचर स्थावर जङ्गमादि जो कुछहै सब मैंही हूं तब कपिलमुनि बोले कि यदि सर्वत्र तुम्हीं हो तुम्हारा स्वरूप क्या है मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी और प्रेत, पिशाचादि किस रूप में हो जब अवधूत को इस प्रश्नका उत्तर न आया तब मौनहोकर अवाक् होगये और राजा स्वरूपमें लीन होगया और यह जाना कि जो जो आत्मा, मन, वाणी का विषय नहीं है वह मैंही हूं तब कपिलमुनि भी सम्पूर्ण शरीर और शरीरके अङ्गोंसे परे निर्विकल्प समाधि में स्थित होगये और दोसहस्र वर्षतक कोई न बोले पीछे अवधूत हँसकर बोले कि पद और अपद ये भी दोनों मुझी सेहैं तब कपिलमुनि बोले कि जब पद और अपदभी तुम

सेहैं तो तीनरूप हुये तब अवधूत बोले कि तीनोंको मैंही सिद्ध करताहूं अथवा और कोई तबतक कपिलमुनि बोले कि हे राजन्! अब ब्रह्मयज्ञ कीजिये क्योंकि तुम्हारी इच्छासे अवधूत तुम्हारा स्वरूप आकर प्राप्तहुये हैं तब राजा बोला कि यज्ञका करना और न करना मुझमें नहीं है परन्तु यज्ञ अवश्य करूंगा तब कपिलमुनि बोले कि हे अवधूत! तुम्हारा क्या रूपहै तब अवधूत ने उत्तर दिया कि मेरा रूप मुझसे क्या पूछतेहो तो नाम रूप मुझमें नहीं है यदि तुमको स्वरूप का ज्ञान नहीं है तो हजारों तरह से तुमको समझाने से भी कुछ लाभ नहीं है और जो तुमने जाना तो मौन होजावो कहनेका स्थान नहीं है तब कपिलमुनि बोले कि जानना और न जानना मुझमें नहीं है इतना कहकर मौनहोगये तब राजा बोला कि हे कपिलदेवजी! मौन न हूजिये सर्व रूप तुम्हाराहै इससे कुछ कहिये तब अवधूत बोले कि जबतक बुद्धि चिरस्थायी है तभीतक कुछ कहना सुनना है और जब विचारपूर्वक बुद्धि आत्मस्वरूपमें लीनहोगई तब जो अखण्ड सुख प्राप्त होताहै वह कथनसे बाहर है तब राजा बोला कि हे अवधूत! इससे निश्चय होताहै कि तुम बुद्धिके अधीन नहीं हो इस वचन को सुनकर अवधूत मौन होगये और उसी समय मुकुन्दजी आकर प्राप्तहुये और बोले कि हम उस वस्तुको कहतेहैं कि जिसमें कहना नहींहै वह क्याहै कि मैंही मैं हूं अर्थात् आत्माही है तब राजा ने पूछा कि तुम कौनहो और आत्माका स्वरूप क्या है तब मुकुन्दजी बोले कि मैं वही हूं जो तुमहो अर्थात् आत्मा तुम्हीं हो तब राजा बोला कि यदि मैंही हूं तो मेरा स्वरूप क्याहै तब अवधूत बोले कि मूर्खोंकी तरह सम्भाषण न कीजिये यदि भेदसे रहित केवल एक तुम्हीं हो तो तुमसे कौन कहे कि द्वितीय का अभाव है तब राजा मौन होगया और कपिलमुनि बोले कि हे अवधूत! अब यह बतलाइये कि अवधूत पद क्या है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि अवधूत मुझीको कहते हैं तब

कपिलमुनि बोले कि तुममें तो नाम रूप नहीं है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि नाम, रूपमें भेद न जानो कि नाम रूप सर्व मैंही हूं तब कपिलमुनि बोले कि तुम जो यह कहतेहो कि मैं अपने आपको कहताहूं दूसरे को नहीं और जो करता हूं सो आप को करताहूं परन्तु मुझ में क्रियाकी गन्ध नहीं है क्योंकि आत्मा अक्रेय और पूर्णहै हे अवधूत ! अब कहिये कि तुम्हारा क्या नाम है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि मेरा नाम यही है कि न कपिलमुनि न अवधूत केवल मैंही हूं तब कपिलमुनि मौन होगये और दोहजारवर्ष आत्मा में ऐसे लीनहुये कि जिनको इस बातकी भी सुधि न रही कि वे दो हज़ार वर्ष एकघड़ी के समान बीती हैं या नहीं तब मुकुन्दजी बोले कि प्रथम अवस्था में प्रणव का नाश करतेहैं, प्रणव अर्थात् अकार, उकार, मकार, विश्व, तैजस, प्राज्ञ इन छहों को शास्त्र वेद की प्रक्रियापूर्वक जो पंचीकृत वार्तिक में लिखी है चैतन्यस्वरूप आत्मा में लय अर्थात् उपसंहार करते हैं तब कपिलमुनि बोले कि कहना सुनना प्रणव में नहीं है पीछे लय प्रणवके शब्द उच्चारण नहीं है तब अवधूत बोले कि हे कपिलजी ! तुम्हारे इस कथन से तो आत्मा प्रणव के आधीन हुआ आत्मा जड़ और प्रणव चैतन्य सिद्धहोता है सन्त कैसे कहते हैं कि बुद्धि नहींहै और कहताहूं बुद्धिको शक्ति है कि एक अक्षर आत्मा बिषे कहे संतोंका वचन बुद्धिमान् कवि समझसक्ता है क्योंकि बुद्धिमान् बुद्धिके अधीन है और संत बुद्धिसे परे आत्मस्वरूप हैं, संतों का वचन वही जानता है जो आत्मानन्द समुद्र में मग्न है, यदि संतोंका वाक्य परोक्षज्ञानी सुनता है तब परोक्षज्ञान को प्राप्त होकर स्थितप्राज्ञ अर्थात् आत्मनेष्ठी होताहै और यदि भक्त अर्थात् अभेद उपासक संतों का वाक्य सुनता है तब परोक्षज्ञान को प्राप्त होता है तब मुकुन्दजी बोले कि यदि आपलोगोंका वाक्य ऐसाहै तो आपलोगों को क्या सुख मिलताहै तब अवधूतने उत्तरदिया कि मेरा वाक्य

ऐसा है कि जिसमें वाक्य की प्रवृत्ति नहीं है अर्थात् मन, वाणी का अगोचर है और कहताहूं सर्वस्थान में पूर्ण और अक्रिय हूं और सर्वसंसार का कारण अधिष्ठान व सर्व अन्तर्बाह्य इन्द्रियों का भोक्ता भी मैंहीहूं इससे सुखस्वरूप अपने को क्या कहूं कि वह मन और वाणी के भी कहने में नहीं आता इस से यही सिद्धान्त है कि मैंही हूं और मैंही संसारको चित्र विचित्र उत्पन्न करता और अपने में लय करताहूं तव कपिलमुनि बोले कि मैं क्या कहूं कि न तू है न मैं हूं केवल एक अद्वितीय मैंही हूं इस कथन को सुनकर सब बोल उठे कि अब कृपाकरके आत्मसुख वर्णन कीजिये तब कपिलमुनि बोले कि आत्मानन्द अनन्त है कि जो कहने और सुनने से परे है अन्तःकरण इन्द्रिय और पद अपद अर्थात् प्राप्ति अप्राप्ति सर्व मैंही हूं क्योंकि अभेद हूं मैं और शरीर यह भेद मुझमें नहींहै सर्व आपी आपहूं भेद और अभेद मुझमें नहींहै न दुःख व सुख मुझ में है क्योंकि मैं स्वयं सुखरूपहूं जब यह संवाद यहांतक पहुंचा तब पराशरजी मैत्रेयजी से बोले कि हे मैत्रेयजी! संत जो आनन्द में मग्न थे वे आपस में संवाद करते थे परन्तु तुम कुछ भी नहीं बोलते उचित है कि जब एक बात मैं कहूं तो एकबात तुमभी कहो विना संभाषणके तुम स्वरूप में किस तरह लीन होगे तब मैत्रेयजी बोले कि शिष्य का प्रश्न एक होताहै गुरु से बराबरी न करना चाहिये यदि गुरु से बराबरी करूं तो क्या लाभ है यह धर्म ब्राह्मण का नहीं है तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेय! सत्संग करो और तुम कहते हो कि जो जो पुरुष आत्मानन्दकी प्राप्तिकी इच्छा करता है वह अभिमानपने से रहित होता और ईश्वर होता है यही सुख है जो त्वंपद अर्थात् जीवन को त्याग करके तत् पद ईश्वरमें प्राप्त होता है, और वेदमें भी कहाहै कि त्वंपदके अभिमान से रहित होना यही परमसुख है इसलिये कि मुक्ति का हेतुहै तब मैत्रेय जी बोले कि त्वंपदके अभिमानको त्याग किया अर्थात् आप न

रहा तो क्या सुखहै क्योंकि जो अपनेको ईश्वर करने में ही सुख होता है तब पराशरजी बोले किइससे परे कौन सुखहै कि पद अपदमें पूर्णहूं जिसको समता प्राप्त हुईहै उसका सुखवाणी के कहनेसे परेहै यह सुनकर मैत्रेयजी बोले कि ब्रह्मसूत्रकहो तब पराशरजी बोले अबतक तुम्हारा अज्ञान निवृत्त नहीं हुआ बिना ब्रह्मसूत्रके क्याहै जो कुछ मैं कहताहूं ब्रह्मसूत्रहीहै भेददृष्टि दूरकरके और सब कहनेको ब्रह्मसूत्रही जानो तब कपिलमुनि बोले कि मैंहीहूं तब मुकुन्दजी बोले कि मैं नहीं हूं तब कपिलमुनि बोले कि वेदमें लिखाहै कि अद्वितीय ब्रह्म है इससे निश्चित होताहै कि मैंही हूं तब मुकुन्दजी बोले कि तेरी बुद्धि शास्त्र विषे फँसी है, मुखसिद्धान्त पूर्व्वभाग वेदका वेदवादी को है और पुराणका सुखपुराणवादी को है और तू कहता है कि वेद और सन्त दोनों का कहना एक है इसको कैसे मानें तब कपिलमुनि बोले कि किञ्चित् आत्मस्वरूप को कहो तब मुकुन्दजी बोले कि मैंने सुना था कि तू परमज्ञानीहै पर अब निश्चितहुआ कि तुमको ज्ञानकी गंध नहीं है यदि पूर्णब्रह्म है तब मध्य में तुम कहां हो तब कपिलमुनि बोले कि हे मुकुंद ! तुम सत्य कहतेहो जो मेरे स्वरूप में ज्ञानका ठिकाना कहां है तब अवधूत बोले कि न कपिल न मुकुंद सर्व मैंही हूं तब कपिलमुनि बोले कियदि मैं नहीं हूं तो तुम कहांहो तब अवधूत बोले कि मैं स्वयंप्रकाशरूप हूं तब कपिलमुनि बोलेकियदि तुम स्वयंप्रकाशितहो तो क्या मैं स्वयंप्रकाशरूप नहीं हूं तब अवधूत ने उत्तर दिया कि स्वयंप्रकाशरूप एक है अनेक नहीं इससे मैं तू कहां है केवल अद्वितीय मैंही हूं तब कपिलमुनि बोलेकि एक कहनेसे द्वैतसिद्ध होताहै तबअवधूत बोलेकि जब मैं आपही कहताहूं और आपही सुनताहूं तब द्वैत कहां है तब कपिलमुनि बोले कि कहना और सुनना शरीर के अधीन है तुझ में नहीं तब अवधूत बोले कि इस तुम्हारे सिद्धान्त में आत्मा अज्ञात जड़ हुआ तब कपिल

जी बोले कि आत्मा में ज्ञान और अज्ञान नहीं है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि फिर क्या है तब कपिलजी बोले कि वही मैं हूं तब अवधूत बोले कि त्रिपुटीरूप क्यों होते हो केवल तुम्हीं हो तब कपिलमुनि बोले कि अखंड कहने में खंडको सापेक्ष होती है परंतु खंड और अखंड एकता और अनेकता मत कहो क्योंकि वाणी का विषय नहीं है तब अवधूत बोले कि कहना सुनना तेरेही बिषे है तब कपिलमुनि बोले कि मुझमें नहीं है कहना धर्म वाक्इन्द्रियका है और मैं इन्द्रिय नहीं हूं मैं इन्द्रियों के संगसे रहित हूं तब कहने और सुनने से क्या मिलता है तब अवधूत बोले कि यह सब शरीर के धर्म हैं जब यह सब धर्म शरीरके हैं तो मुर्दा क्यों नहीं बोलता अगर कहो कि मुझसे सब सिद्ध होते हैं कहना और सुनना मैंही हूं तब कपिलमुनि बोले कि वेद में लिखा है कि आत्मा में कहने और सुनने का स्पर्श नहीं है क्योंकि वाक् और श्रवणइन्द्रिय आत्मा में नहीं है क्यों-कि आत्मा शुद्ध है तव अवधूत बोले कि वेद में लिखा है और मैं कहता और सुनताहूं और सर्व कर्म भी करता हूं और मुझ में क्रियाकी कुछभी गन्ध नहीं है पूर्ण और असंग और निष्क्रिय अचल होने से भगवान् गीता में कहते हैं कि मैं वेद होकर कहता और श्रवण होकर सुनता हूं इससे हे कपिल मुने! कहना और सुनना मुझी में है तब कपिलमुनि बोले कि त्रिपुटी सिद्ध करतेहो कहना, सुनना, चित्त मेरे में तीनों नहीं हैं क्योंकि मैं अद्वितीय हूं तब अवधूत ने उत्तर दिया कि इस तेरे को संत ज्ञानी नहीं मानते हैं तब कपिलजी बोले कि संत ज्ञानी कैसे मानें वे तो आत्म नेष्ठी हैं उनको अंगीकार करने से क्या प्रयोजन है कहिये कि अंगीकार क्यों नहीं करते तब अवधूत ने उत्तर दिया कि हे कपिलजी ! अब वेद और शास्त्र का कथन सुनिये वेदका सिद्धान्तहै कि न मैं हूं न तुमहो भेदसे रहित सर्व मैंहीहूं यह सम्पूर्ण वेदों की आज्ञाहै कि आत्मा में

एक और दो और तीन और वर्णाश्रम व लोक परलोक व जीव और ईश्वर व जगत् का संबंध कुछ भी नहीं है जैसे सुवर्ण में भूषण का व रस्सीमें सर्पका संबंध नहीं है केवल अज्ञानसे इन का संबंध भासित होताहै और जब वास्तवमें निश्चय हुआ तब भय व भ्रान्ति दोनों नाश होजाती हैं और एक अद्वितीय आपी आप निश्चित होजाताहै एक, दो और तीनका कहनेवाला आपीहै इसलिये कि आपी आप है तब कपिलमुनि बोले कि मैं व्यर्थ वाक्यको नहीं मानता जहां एक कहना असंभव है वहां इतनाकहना कैसे उचित समझाजाताहै कि आपका यह कथन व्यर्थ है तब अवधूत बोले कि हे मेरेरूप! यदि तुम्हीं तो कहने और सुननेवाले भी तुम्हीं हो जहां अहंकार है वहां अद्वितीय कहना नहीं बनता और यदि स्वरूपही है तब अद्वितीय में कहना सुनना नहीं बनता तब कपिलमुनि बोले कि एक अहंकार और दूसरा निरहंकार इन दोनों में तुम कौन हो तब अवधूत ने उत्तर दिया कि मैं आत्मा हूं और यह सब उसी आत्मा से उत्पन्न हुयेहैं और मैं अहंकार व निरहंकार इनदोनों से परे हूं क्योंकि मुझमें द्वैतकी गंध भी नहीं है तब कपिलमुनि बोले कि सन्त कहने से बंधनमें नहीं आते इसलिये कि स्वतंत्र हैं हेअवधूत! तुम शरीर हो कि आत्मा दोनों में कौनहो तब अवधूत ने उत्तर दिया कि दोनों से अलग केवल मैंही हूं अज्ञानी कहताहै कि शरीर और आत्माहै नहीं तो यही शरीर आत्मरूपहै इसलिये कि आत्मा पूर्णहै उसमें विषमता नहीं और जिसको शरीर और आत्मा दोनों भासतेहैं वह अज्ञानी है तब कपिलमुनि बोले कि तुम मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार इनचारों में से कौन हो तब अवधूत ने कहा कि ये चारों मुझीसे प्रकाशित हैं इन में से कोई भी मुझसे भिन्न नहीं मैंही इनका अधिष्ठान हूं तब कपिलजी बोले कि चित्त का अहंकार क्या वस्तु है तब अवधूत बोले कि ये मझीसे सिद्ध होतेहैं नहीं तो कुछ भी नहीं है उस

से सर्व मैंही हूं अब कहिये तुम कौन हो तब कपिलमुनि बोले कि मैं क्या कहूं सर्वत्र तुम्हीं तो हो तब अवधूतने उत्तर दिया कि मैं नहीं हूं इसलिये कि अध्यस्तहैं तब मैत्रेयजी बोले कि हे पराशरजी! अब आप सत्य कहिये कि आप मेरे गुरु हैं अथवा नहीं तब पराशरजी बोले कि मैं गुरुशिष्य कुछभी नहीं केवल मैं ही हूं तब मैत्रेयजीबोले कि आप अपना नाम तो बतलाइये कि पराशर क्यों कहतेहैं तब पराशरजी बोले कि मैंही मैं नाम रक्खा है तब मैत्रेयजी बोले कि नाम शरीर से संबंध रखताहै या आत्मा से संबंधित है तब पराशरजी बोले कि जिस वस्तुको हमने उत्पन्न किया उसका रूप क्या रक्खाजाय फिर अवधूत बोले कि कहिये आप कौनहैं तब कपिलमुनि बोले कि कहूं सर्वत्र तुम्हीं हो तब अवधूत बोले कि जहां मैं और तू नहीं है वह कौनहै तब कपिलमुनि बोले कि वह मैं हूं तब अवधूतने उत्तर दिया कि मेरा कथन उसको अच्छा लगताहै कि जो सिद्धान्ती है तब कपिल मुनि बोले कि तुम कौन हो तब अवधूतने उत्तर दिया कि यदि तुम्हीं हो तो किससे पूछते हो और यदि पूछते हो तो अज्ञानी हो तब कपिलमुनिबोले कि मुझमें बुद्धि नहीं है तुम्हीं से प्रकाशित हूं कहना और मौन होनाये दोनों मुझीसेहैं इतना सुनकर उस समय सब अपने२रूपमें ऐसे लीनहुये कि सबको अपना २ स्वरूप दर्शित होनेलगा उसीसमय लोमशऋषि भी कि जिन्हों ने असंख्य ब्रह्मा और विष्णु देखेहैं परन्तु योगी थे शरीर उनके न था और शरीर दिखलाई भी पड़ताथा अर्थात् शरीराभिमान से रहितथे आ पहुंचे और बोले कि दीप क्या चैतन्य पूर्ण है मैंने देखाहै कि दीपसे भिन्न कुछभी नहीं उत्पत्ति, पालन और संहार सब दीप से ही होताहै तब अवधूत बोले कि यदि दीप को तुमने देखाहै तब उसका द्रष्टा कौनहै तब लोमशऋषि हँसकर बोले कि द्रष्टा दीपका दीपही है और द्रष्टादर्शन व दृश्य यह तीनों दीपही हैं दीप में स्थित होकर कहता हूं कि दीप से दूर हूं इससे तुम

कहो कि कौन हो तब अवधूत ने उत्तर दिया कि मैं वही हूं जो तुम हो अब कहिये आप कौनहैं तब लोमशऋषि बोले कि मैं दीप हूं और दीपसेही हुआहूं और दीपसे कुछ भिन्न नहीं है तब अवधूत बोले कि तुझमें मुझमें अन्त की समाई नहीं है तब लोमशऋषि बोलाकि मेरे अहङ्कारसे है मुझको बन्धन नहीं है तब अवधूत बोले कि एक अद्वितीय आत्माहै तब सब मौन होकर अपने स्वरूप में लीन हुये और इसीतरह बहुत समय व्यतीत हुआ हे मैत्रेयजी! मौन इसवास्ते धारण कीगई थी कि सब परमानन्द को प्राप्त हुये थे फिर आपस में कहने लगे कि हम आत्माहैं तब अवधूत ने उत्तरदिया कि सब नहीं है केवल एक मैंही अद्वितीय हूं तब कपिलमुनि बोले कि यदि तुम एक हो तो हम सर्वभी हैं, संसारका लक्षण इसीसे सिद्ध होताहै क्योंकि जब एक कहाजाताहै तब सर्वभी कहने में आते हैं और यदि एक न कहाजाय तो सर्वभी नहींहै तब अवधूत बोला कि मुझमें एक और अनेक कुछभी नहीं है केवल मैंही हूं तब कपिलमुनि बोले कि तुम कौन पदहो एक वा दो अथवा तीन, यह क्यों कहते हो कि एक दो नहीं है केवल मैंही हूं तब अवधूतबोले कि मुझ में सर्वपद हैं इसीसमयान्तर में सात्विकद्वीप से सतऋषिभी आपहुंचे कि जिनका आना केवल समागम के निमित्त था क्योंकि आत्मसुख केवल सत्सङ्ग से प्राप्त होता है तब सतऋषि बोले कि जो है सो भजन विष्णुका है इससे भक्ति उत्तम है जो मुक्ति की चाहना रक्खे वह भगवान् की भक्ति करे जोकि सर्वत्र व्याप्तहैं तब अवधूत बोले कि श्रीभगवान् की भक्ति से मेरी भक्ति अधिक उत्तम है जो कोई मेरे सन्मुख होताहै वह मेरा रूप होताहै और जो कोई भगवान्की भक्ति करता है वह अपने अहङ्कारकी मलिनतासे स्वच्छ नहीं होता इसलिये कि वह अपनेको दास मानताहै इससे अपने स्वरूप से आपही आप अप्राप्त है और मेरा भक्त निश्चय करके मेरा रूप है तब सत-

ऋषि बोले कि यह शरीर तेरा नाशवान्है तू विष्णुसेसमता कैसे करता है तब अवधूत बोले कि यदि मेरा शरीर नाशवान् है तो विष्णुका शरीरही कब स्थित रह सक्ता है तब रोमशऋषि से पूछो कि उन्हों ने कितने विष्णु देखे हैं इससे जो शरीर पर दृष्टि करै तो किसी का शरीर स्थित नहीं रहसक्ता इसी से मेरी भक्ति उत्तम है इसलिये कि मैं शिवरूप पूर्ण हूं तब सप्तऋषि बोले कि जबतक वैराग्य न होय तबतक ज्ञानकी प्राप्ति कठिनहै तबअव- धूत बोले अपने को न जानकर केवल एक विष्णुही को जानना इसी को वैराग्य कहते हैं तब सप्तऋषि बोले कि हमभी नहीं हैं श्रीविष्णुही हैं परन्तु वैराग्यकौन करे तब अवधूत बोले कि जब तक मैं कहा जाता है तब तक सर्व वस्तु युक्त हैं और जब मैं न रहा तब केवल भगवान्ही है तब सप्तऋषि बोले कि हम नहीं हैं कहिये कि हम कौन हैं तब अवधूत बोले कि विचारदृष्टि से देखो कि जब सर्वत्र विष्णु है तो तुमभी विष्णुहो तब सप्तऋषि बोले कि श्रीविष्णु ईश्वर हैं तो हमभी ईश्वर हैं तब अवधूत बोले कि जब तुम्हीं हो तब ईश्वर कहां हैं तब सप्तऋषि बोले कि एक शरीर है एक आत्मा है यही आत्मा ईश्वर है तब अवधूत बोला कि ईश्वरका रूप वेद खोलकर कहता है परन्तु आत्माका रूप किसी ने नहीं कहा तुम आत्मा को देखकर ईश्वर कहते हो अथवा विना देखे नाम रखतेहो तब सप्तऋषिबोले किबुद्धि के विचार से कहाजाता है कि आत्मा ईश्वर सर्वशक्ति है तब अवधूत बोले कि बुद्धि का क्या रूप है तब सप्तऋषि बोले कि बुद्धि के रूप नहीं है केवल कथनमात्र है और यही निश्चयरूप है तब अवधूत बोले कि निश्चय आपसे आप होता है अथवा आत्मासे यदि आत्मसत्ताकर युक्तबुद्धि से होता है ताते बुद्धि जड़ है जब कोई वस्तु तत्त्वसे कुछ नहीं है तब उस वस्तु का विचार किस प्रकार होसक्ता है अब कहिये कि तुम कौन हो ईश्वर हो अथवा और कुछहो,जब बुद्धिही न रही तब ईश्वर कहां रहा

तब सप्तऋषि बोले कि हम सर्व ब्रह्म हैं और ब्रह्मविद्यासे कहा जाता है तब अवधूत बोले कि भ्रम दूर करके कहिये कि हमब्रह्म हैं सन्तों के सत्संग का यही फल है तब राजा बोले कि जब मैंही मैं हूं तो व्यर्थ विषाद क्यों करूं तब मुकुंदजी बोले कि हे मेरे रूप! तुम ऐसा मतकहो सर्वस्थान में सर्व मैं हूं कहो कि सर्व मैं ही हूं तब अवधूत बोले कि हे मुकुंदजी! जो मैंही हूं तो मैं कौन हूं तब राजा ने उत्तर दिया कि तुम्हारा रूप यह है कि मैं हूं वह मुख नाक इन्द्रियसे परे है क्योंकि जबतक बुद्धि किसी वस्तुमें भेद न करे तबतक क्या कहै इससे कहिये बुद्धि नहीं रही उस समय चौदह सहस्र सिद्ध आ पहुंचे और आकर बोले कि सिद्ध सर्व स्थानों में पूर्ण हैं तब अवधूत बोले कि हे सिद्धो! सर्व कहां है मैंही हूं तब सिद्ध बोले कि अवधूत नहीं है मैंही हूँ तब अवधूत बोले कि हँसते जाव तब सिद्ध बोले कि हँसना और रोना हममें नहीं है तब अवधूत बोले कि यदि किसी वस्तु को आपसे भिन्न जानते हो तुम सिद्ध नहीं हो वृथा यहां आये हो कहो कि हँसना और रोना हमसें है तब सिद्ध बोले कि हे अवधूत! तुम हँसो इसलिये कि हम नहीं हैं तब अवधूत बोले कि न तुम हम हँसतेहैं हंसते हँसते सहस्रवर्ष व्यतीत हुये तब कहा कि रोवो तब सिद्ध बोले कि मूर्खों की नाईं मत हँसो तब अवधूत बोले कि अवधूतों का ज्ञान यही है अब कहिये कि आपका क्या ज्ञानहै तब सिद्ध बोले कि हमारे ज्ञान बिषे वाक्की प्राप्ति नहीं है तब अवधूत बोले कि यह अच्छी बात कही इतने में कुमारनामी सिद्ध बोला कि जब मैं योग करताहूं मुझे स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई पड़ताहै और वह ऐसा स्वरूप है कि कथन से बाहर है तब अवधूत बोले कि वाक् बिना योग किसने कहा, वहां ध्वनि होतीहै, कोई कहता है कि ज्योतिहै, एक चतुर्भुज का ध्यान करताहै, एक शून्य नाम बतलाता है उस से सब कहने में आतेहैं, योग कहनाही उचितहै परन्तु तुम अभी बालकहो सत्संग

करो जिससे निर्मल हो जावो तब कुमार बोला कि यदि मैं चाहूं तो योगशक्ति के बलसे इस शरीर को त्याग करके दूसरे शरीर में प्रवेश करजाऊं,ज्ञान से प्राप्त होताहै ज्ञान तो केवल कथन-मात्रहै तब अवधूत बोले कि हे मूर्ख! विद्वानों के सम्मुख ऐसा कहते तुझे लाज नहीं आती ज्ञान ऐसाहै कि इस शरीरकोभी त्याग कर सर्वस्थानोंमें पूर्ण होताहै तब कुमार बोला कि योग शक्ति के बलसे जो चाहूं तो आकाशको चलाजाऊं तब अवधूतने उत्तर दिया कि आकाश में तब जाव जब वह तुम से भिन्न होवे तब कुमार ने उत्तर दिया कि इतने श्वास जो आते जाते हैं उनसे कुछ सुख नहीं पाते परन्तु योगी एक एक श्वास पर अमृत पीते हैं और "सोहमस्मि" जप करतेहैं और उसी में सुखपाते हैं तब अवधूतने कहा कि उस ज्ञानी को बड़ी लज्जा की बातहै जो प्राण और श्वास से अपना सुख चाहे जिस प्राण से योगी सुख बिषे प्राप्त होतेहैं ज्ञानी उसको जड़ जानकर अपने स्वरूप से सुख रखतेहैं अपने स्वरूपसे अप्राप्त होना और प्राणसे सुख की आशा चाहना ज्ञान से रहित होताहै और ज्ञानादि पांचों तत्त्व मिथ्या हैं तब एक प्राण किस गिनतीमें है, योगमार्ग चींटियों का और ज्ञानमार्ग विहंग का है यह सुनकर उनमें से ब्रह्मसिद्ध बोला कि हे अवधूत! योगको दूर करने के लिये कौन समर्थ है योग तो स्वयंसिद्ध है जो कि सबसे मिलाहै ज्ञान योगही को कहते हैं इससे सब योगही है सम्पूर्ण सनकादिक व ब्रह्मादिक जो अपने स्वरूप में लीन होते हैं योगसेही होते हैं यह सुनकर अवधूत मौन होगये तब राजाने उत्तर दिया कि हे ब्रह्मसिद्ध! यह आपका कथन मिथ्या है योगको ज्ञानसे क्या संबंध है ज्ञान वह है कि जिसमें संयोग वियोग का होना कदापि नहीं है तब ब्रह्मसिद्ध बोले कि हे राजन्! तुमको स्वरूपकी प्राप्ति नहीं है तब राजा बोला कि मैं योग करताहूं यदि योग स्वयंसिद्ध है तो उसकारूप वर्णन कीजिये तब ब्रह्मसिद्ध बोले कि प्रथम तुम आत्मा का रूप

कहो कि वह कैसा है यदि आत्माकारूप कुछ नहीं है तो योगको क्या पूछते हो जो कि एक अवस्था है और जिसमें द्वैत नहीं है इससे योग स्वयंप्रकाशरूप है तब राजा ने उत्तरदिया कि कोई शास्त्र नहीं कहता कि योग स्वयंसिद्ध है तब सिद्धों ने कहा कि योगस्वप्रकाशरूप और स्वयंसिद्ध है और योगही से स्वरूपकी प्राप्ति होतीहै योग शुद्धस्वरूपहै तब कपिल मुनि बोले कि यदि योग से स्वरूपकी प्राप्ति होती है तो योग न हुआ यदि स्वरूपहै तब योग से क्या प्रयोजन तब कुमार बोला कि हे कपिलजी ! योगही से सब योग होता है तब कपिलमुनि बोले कि योगका कर्त्ता कौन है तब कुमार बोले कि योग का कर्त्ता योगही है यह सुनकर कपिलमुनि मौनहोगये तब मुकुंदजी बोले कि आत्मा की प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं किसी को ज्ञानसे और किसी को अहंकार के परित्याग से और किसीको कर्मके त्यागने से और किसी को भक्ति वैराग्य और योग करने से प्राप्त होता है उसकी प्राप्ति के यही सब साधनहैं हम योग नहीं करते ज्ञान साधन करते हैं तब कुमार हँसकर बोले कि ज्ञान क्या वस्तुहै कहना अथवा निश्चय करना तब मुकुंदजी बोले ज्ञान निश्चयकरनेको कहतेहैं तब कुमार बोला कि निश्चय योगहै इसलिये कि निश्चय तब होता है कि जब श्रोता स्वरूप होताहै यह भी योगहै इससे योग स्वयंप्रकाश रूपहै यह सुनकर मुकुंद मौन होगये और लोमशऋषि बोले कि हे सिद्धो ! योग मुझसे होताहै जिस समय मैं इच्छा करताहूं उसी समय योग होता है परंतु योग और वियोग मुझमें दोनो में से कुछ नहीं है तब कुमार बोले कि योग से सब अंग शरीर के दिखलाई देते हैं परन्तु स्वरूपसे अप्राप्त होता है तब कुमार बोला कि जहां योग है वहां रूप नहीं है इससे योग अरूप और स्वप्रकाशरूप है तब लोमशऋषि मौन होगये तब सप्तर्षियों ने उत्तर दिया कि पूर्णयोग जानना श्रीविष्णुका है जब श्रीविष्णुको जाना तब मुक्त हुआ तब कुमार बोला कि तुम भक्तिकी पालना

करतेहो परंतु भक्त वह है जो स्वामी के साथ प्रेम करे और प्रेम करे तबहीं योगहुआ यह सुनकर सप्तर्षि मौन होगये तब राजा बोला कि त्वंपदके अहंकार तक योगहै तत्पद में योग नहीं है ईश्वर स्वयंप्रकाशरूप है तत्पद योग काहे को करे तब कुमार बोला कि ईश्वर का धर्म क्या है तब राजा ने उत्तर दिया कि ईश्वर का धर्म यह है कि सब मुझसे उत्पन्न हुये और मैंही हूं इन सबकी पालना करताहूं और अंतमें यह सब मुझी में लीन होजायँगे तब कुमार बोला कि तब योग सिद्ध हुआ इसलियें किकहते हो मुझसे हुआहै और होता है तब राजा बोला कि असिपद अर्थात् लक्ष्य में योग कहां है तब कुमार बोला कि जो कोई ब्रह्माहमस्मि कहताहै जबतक ब्रह्म में लय न होजाय क्या सुखहै यहसुनकर राजा मौन होगया और सर्व अपने में देखने लगे तब अवधूत बोले कि यदि ब्रह्महीं है तब सिवाय उसकेक्या है जिसमें मिले यह कहकर कुमार मौन होगया तब अवधूत ने उत्तर दिया कि तुमको लाज नहीं आती कि सन्तोंकी सभा में बोलतेहो अब यदि और कुछ संशय हो तो वह भी कहिये तब कुमार बोले कि हे अवधूत! मैं तुमसे क्या कहूं तुमतो मेराही रूपहो इसलिये जो कुछ तुम कहते हो वह मेराही कथन है तब अवधूत बोले कि तुम और दोनों बरन केवल मैंही हूं तबकुमार मौनहुये और सिद्धोंने उत्तरदिया कि ऐसा न कहो तब अवधूत बोले कि मुझमें कहना और मौन होना दोनों नहीं हैं और जितना कहनाहै सब मुझी में है तब सिद्धोंने कहा कि तुम कौनहो तब अवधूत बोले कि मैं वह हूं जो तूहै तब सिद्धोंने उत्तर दिया कि हम इतनी शक्ति रखतेहैं कि सम्पूर्ण ब्रह्मांडमें पूर्णहैं तब अवधूतने कहा कि मुझमें पूर्ण और अपूर्ण दोनों नहीं हैं तब सिद्ध मौन होगये सिद्धोंकी यह दशा देखकर अवधूत बोले कि मौन न होवो यह सब तुम्हारीही लीलाहै तब कपिलमुनि बोले कि मुझमें बोलना और मौन होना दोनों नहीं हैं तब अवधूत बोले कि

तुम्हारे विषेत्रिपुटी सिद्ध हुई और ब्रह्म विषे एक भी कहना नहीं बनता तब कपिलमुनि मौन होगये और अवधूत बोले कि परमार्थ तत्त्वका स्वरूपहूं और यह सब सुख ज्ञान से प्राप्त होता है तब लोमश ऋषि बोले कि तुमको ज्ञानसे सुख है और हम को अपने आनन्द से आनन्द और अपने प्रकाश से प्रकाश है तब अवधूत बोला कि मैं ज्ञान और प्रकाश से रहित हूं और मैं ही हूं तब राजा बोला कि तुमको ऐसा कहने में लाज नहीं आती तब अवधूत बोले कि जब द्वैत नहीं है तो लाज किससे करूं तब राजा बोला कि तुम्हारा स्वरूप क्याहै तब अवधूत बोले कि रूप और अरूप मुझमें दो मेंसे कुछ भी नहीं है इस से यही कहो सर्व अवधूत है तब सबने कहा कि एक अवधूत है इस वचन से एक सिद्ध हुआ तब मैत्रेयजी बोले कि हेभगवन्, पराशरजी! उनसंतों की सभामें कोई और भी था या नहीं तब पराशरजी बोले कि यदि तुम को एक के कहने से निश्चय नहीं हुआ तब अनेक के कहने से क्या प्रयोजन है इतना उपदेश मेरा व्यर्थ हुआ परन्तु तुमको ज्ञान प्राप्त न हुआ तब मैत्रेयजी बोले कि मुझको निश्चय नहीं है मेरा स्वरूप सिद्ध करके कहिये कि मैं कैसे निश्चय करूं तब पराशरजी बोले कि भय न करो यदि तुम्हीं हो तब निश्चय भी तुम्हारा रूप है तब मैत्रेयजी बोले कि मैं निश्चय किस तरह करूं मुझ में गुरू शिष्य और रूप अरूप कुछ भी नहीं है तब पराशरजी बोले कि तुम यही निश्चय करो कि मैं अरूपहूं तब मैत्रेयजी बोले कि यह बुद्धिका विकार है अब वह कहिये कि जिसमें विकार न हो तब पराशरजी बोले कि यही कहो कि मैं हूं तब मैत्रेयजी बोले कि यदि मैंहीं हूं तो कहने से क्या लाभ है और यदि न कहो तो क्या हानि होगी तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी! जब तुमने अपनेको ब्रह्मजाना तबही परम सुख प्राप्त होगा यही निश्चय करो कि रूप और अरूप मुझ में कुछ भी नहीं है तब मैत्रेयजी बोले

कि अब मैं क्या करूं तब पराशरजी बोले कि अपने से अतिरिक्त मतदेखो तब मैत्रेयजी बोले कि इससे क्या सिद्ध होगा तब पराशरजी बोले कि तुम निगुरों की नाईं वार्तालाप न करो तब मैत्रेयजी बोले कि गुरु और शिष्य मेरी दृष्टि में नहीं है केवल मैंहीहूं तब पराशरजी बोले कि यदि शरीर तुम्हारा नाश को भी प्राप्त होजावे परन्तु इस निश्चय का परित्याग कदापि न करना तब मैत्रेयजी बोले कि जब मैंही हूं तब दूसरा कौन है जो मुझको दुःख देवे तब पराशरजी बोले कि धन्य है तुमको तुम यही निश्चय करो क्यों कि इसका सुख वाणी से परे है तब मैत्रेयजी बोले कि वह शिष्य नहीं है कि जो गुरुके उपदेश से अपने शरीर का अभिमान न त्यागे शिष्य वही है जो कि गुरुके उपदेश से द्वैत को मलिनता त्याग करे और जो उपदेश गुरुके मुख से श्रवण करे उसको अमृत की नाईं पान करे तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी! यही कहिये कि सर्वरूप मेरा है तब मैत्रेयजी बोले कि यदि मैंही हूं तब मुझमें यह वाक्य योग्य नहीं तब पराशरजी बोले कि ऐसा मतकहो जिस वस्तु से तुमको यह सुख प्राप्त हुआ है उसको न त्यागो तब मैत्रेयजी बोले त्याग तबकरूं जब मुझ से कुछ भिन्न होवे अब ब्रह्मसूत्र कहिये कि उस सभा में इतने संत इकट्ठे थे उन्हों ने क्या कहा तब पराशरजी बोले कि उनके वाक्य सुनने से तुम को क्या लाभ है कि अपने को न जानना कि मैं कौन हूं तब मैत्रेयजी बोले तुम्हारे इस प्रकार कहने से बड़ा आश्चर्य होता है यदि मुझसे भिन्न कोई होते तो जानूं और जब मैंही हूं और कोई द्वितीय नहीं तब मैं क्या जानूं तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेय! भय न करो यदि आप औरद्वितीय तुम में नहीं है परन्तु तुम से प्रकाशमान है अब ब्रह्मसूत्र सुनो तब मैत्रेयजी बोले कि मुझमें कहना और सुनना नहीं है परन्तु आप कहिये मैं सुनता हूं तब पराशरजी बोले कि ऐसा मत कहो वरन कहो कि मेरेही

विषेहै तब सिद्धों ने कहा कि यह सम्पूर्ण जो कुछ कहने और सुनने में जाताहै योग्य है तब कपिल जी बोले कि योग और भोग दोनों मुझमें नहीं हैं तब सिद्धों ने कहा कि ज्ञान भी नहीं है ज्ञान को उत्तम और योगको निकृष्ट मानना इसीको अज्ञान कहते हैं तब लोमशऋषि बोले कि अबतक कपिल का अज्ञान निवृत्त नहीं हुआ क्यों कि वह कहता है कि ज्ञानको भला जानना अज्ञान है तब कपिलजी बोले कि मुझमें तो ग्रहण और त्याग दोनों नहीं हैं तब दोनों मौन होगये तब राजा बोला कि यदि कोई स्वरूप के प्राप्ति की इच्छा करे तो किस प्रकार प्राप्त होता है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि नित्य को अनित्य से विचार करके भिन्न करे तब राजा बोला कि नित्य और अनित्य किसको कहते हैं तब अवधूत ने कहा कि नित्य आत्मा है और अनित्यशरीराभिमान है अज्ञानी शरीर के अभिमान में फँसे रहते हैं और ज्ञानी आत्मानन्द में मग्न हैं और मुझमें इन दोनों में से एक भी नहीं है तब राजा बोला कि तू कौन है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि अब तक तुम मुझे नहीं जानते तब राजा बोला कि जानना मुझमें अज्ञान है इसलिये कि बुद्धि नहीं है आदि विचार के बुद्धिनाश होती है इसलिये जहां बुद्धि नहीं है वही मेरा स्वरूप है हे अवधूत! कहो तुम्हारे विषे क्या है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि मुझ में एक और अनेक नहीं है तब राजा बोला कि जिसमें एक और अनेक और तुम नहीं हो वह रूप मेरा है इससे क्या कहूं हे अवधूत! जो सब पदों का त्याग करता है उस पद को अवशंख कहते हैं अब कहिये अवशंख पदका किस प्रकार त्याग होवे तब अवधूत बोले कि हे राजन्! विचार करो कि अवशंख कहांहै तब राजा बोला कि जिसमें दोनों नहीं सो अवशंख है तब अवधूत बोले कि अवशंख पद मुझमें नहीं है तब राजा बोले कि वह क्या वस्तु है कि जिसमें दोनों सिद्ध होते हैं तब अवधूत ने उत्तर दिया कि वह मैं हूं तब राजा

बोला कि तुम्हीं अवशंख हो तब कपिल मुनि बोले कि यही अहंकार है और अहंकार का अन्तनाश है तब राजा बोला कि हे अंधे! तुझको अबतक बुद्धि नहीं है अहंकार का नाश अवशंखसे होता है तब कपिल मुनि बोले कि जो कुछ कहने में आता है वही अवशंख है तब राजाने पूछा कि मौन क्या वस्तु है तब कपिलमुनि बोले कि आनंद निरंजन का है उसमें अवशंख कहां है तब राजाने उत्तर दिया कि हे कपिल मुनि! तुमने माता को कैसे उपदेश किया है, जानाजाता है कि तुम्हारी बुद्धि अज्ञात है इसी कारण से तुमने उपदेश नहीं किया, अवशंख पद उसको कहते हैं कि जिसमें बोलना और मौन होना दोनों में सेकुछभी न होवे तब कपिलमुनि मौनहोगये कुछ उत्तर न देसके उससमय लोमशऋषिआकर बोले कि अवशंख आसिपद अभ्यस्त है तब राजाने उत्तर दिया कि असिपद अवशंख से है क्योंकि जो असिपद कहता है वही अवशंख है तब कपिलमुनि बोले कि अवशंखका क्या अर्थ है तब राजा ने उत्तर दिया कि अवशंख उसे कहते हैं कि जिससे सम्पूर्ण पद प्रकट होवें और वह स्वयंसिद्ध एकरस रहे तब कपिलमुनि बोले कि मैं सर्वपदों से अतीत हूं इससे मुझमें अवशंख नहीं रहा तब राजा ने उत्तर दिया कि जो सर्वपदों से अतीव है वही अवशंख है तब अवधूत बोले कि जहां मैं हूं वहां अवशंख नहीं है तब राजा बोला कि इसीसे तुमको अवशंख कहते हैं तब अवधूत मौन होगये और लोमशऋषि बोले कि जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया अवशंख हैं मैं तुरीया से अतीतहूं मुझमें अवशंख कहां है तब राजा बोला कि अवशंख उसीको कहते हैं कि जिसके उपरान्त और कोई पद न होवे इस लिये जो तुरीया से अतीत है वही अवशंख है तब सप्तर्षि बोले कि जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश नहीं हैं वह अवशंख कहां है तब राजाने उत्तर दिया कि उसीको अवशंखकहते हैं तब सप्तर्षि बोले कि भक्ति में अवशंख कहां है तब राजा बोला कि बिना

अवशंख के भक्ति कहां है तब सिद्धोंने पूछा कि अवशंख काहे से होता है तब राजाने उत्तर दिया कि यदि अवशंख न हो तो कौन करे तब सिद्धों ने कहा कि जब योग उठा तब अवशंख कहां रहा तब राजा बोला कि योग का उठना अवशंख की प्राप्ति से है इसी समयान्तर में मीमांसा भी आकर प्राप्त हुये और बोले कि जहां कर्म है वहां अवशंख कहां है तब राजा बोला कि कर्म ही से अवशंख होता है तब मीमांसा मौन होगये और वैशेषिक आकर उपस्थित हुये व बोले कि अवशंख काल से हुआ है तब राजा बोले कि अवशंख काल से भी कुछ बड़ा है तब वैशेषिक बोले कि काल है तब राजा बोला कि काल अवशंखहुआ भय न करो और निश्चय करो कि काल अवशंख है तब वैशेषिक मौन होगया कि न्यायने आकर उत्तर दिया कि क्रियायें सब कर्त्ताके आधीन हैं कर्म में अवशंख कहां से आया तब राजा बोला कि कर्त्ताका अर्थ कहिये तब न्याय बोला कि जो सर्व कर्म करता है उसको कर्त्ता कहते हैं तब राजा बोला कि तो अबतो अवशंख सिद्ध हुआ क्योंकि अवशंख ही से सब वस्तु होती हैं तब न्याय बोला कि तुमने व्यर्थ बचन कहा तुमको दंड देना उचित है तब राजा बोला कि अवशंख के बिना कौन दंड देसक्ता है अवशंख स्वयंप्रकाशित होकर और सब के ऊपर अपना प्रकाश करताहै तब न्यायने उत्तर दिया कि तुम ईश्वर हो इस अवशंख को उठाओ तब राजा बोला कि यद्यपि ईश्वर है तो किससे उठै तब न्याय बोला कि जबतक अवशंख का त्याग नहीं होता तब तक सुख स्वरूप की प्राप्ति अति कठिन है तब राजा बोला कि जब मैंही मैंहूं तब सुख से क्या प्रयोजन है तब न्याय बोला कि अवशंख से परेहो तब राजा बोला कि जो अवशंखसे परे है वही अवशंख है तब न्याय मौन होगया तब पातंजलि आकर प्राप्त हुये फिर बोले कि हे राजन् ! तुम कौन हो तब राजा बोला कि मैं अवशंख हूं तबतक याज्ञवल्क्यजी भी आपहुँचे और बोले कि

पिंड अर्थात् शरीर में अवशंख कहां है तब राजा बोला कि जो बाह्य इन्द्रियों के द्वारा लीला देखताहै और भीतर की इन्द्रियों से युक्त होकर सोहंसोहं की ध्वनि का शब्द करता है वह अवशंख है तब याज्ञवल्क्यजी बोले कि तुम ने योग नहीं किया तुम को सुख किसप्रकार से प्राप्तहोवे तब राजा बोला कि योग मुझ से होताहै तव याज्ञवल्क्यजी बोले कि जबतक सर्व अंगों को न देखे सुख कदापि नहीं मिलता तब राजा बोला कि जो देखता है सुखपाता है वही अवशंख है यदि शरीर इस मार्ग में मिथ्या है तव उसके अंगों के देखने से क्या लाभ है पांचोंतत्त्व हमारे मत में मिथ्या हैं तव उसकेदेह इन्द्रियों से क्या लाभ होगा योगशक्ति से दशवें द्वारपर पहुँचता है परन्तु जो वस्तु मूलसे निर्बल है उसकी शाखा कहां तक बली होगी जबतक शरीरको अपने से भिन्न न जाने कदापि सुखकी प्राप्ति नहीं होती तब याज्ञवल्क्यजी वोले कि जो कोई ईश्वरके दर्शन करना चाहे तो योग करे तव राजा बोला कि यदि मैं हूं तब योग से क्या प्रयोजन है तव याज्ञवल्क्यजी वोले कि जब तुम्हीं हो तो ज्ञान क्यों करते हो तव राजा बोला कि ज्ञान स्वयंप्रकाश रूप है अर्थात् अपने प्रकाशसे प्रकाशितहै औरयोगमें किञ्चित् भोजन किञ्चित् वार्ता किञ्चित् चलना किञ्चित् निद्रा यह साधन चाहिये इससे जिस वस्तु के आदि में दुःख होवे उसके अन्त में क्या सुख होगा और ज्ञानमें भोजन व निद्रा, वार्ता व चलना ये सब आपसे आप हैं और जिस योगीमें ज्ञान और योग दोनों नहीं हैं वही अवशंख है तव याज्ञवल्क्य मौनहोगये तब सांख्य बोले कि जबतक नित्यानित्य का बिचार न करे तबतक आत्म सुख कभी प्राप्त न होगा तव राजा बोला कि जिसमें नित्यानित्य की प्राप्ति है उसी को अवशंख कहते हैं यह सुनकर सांख्य मौन होगये तब व्यासजी आकर बोले कि जब मैं ही हूं तब नित्यानित्य से क्या प्रयोजन है असंख्य व अवशंख कहां है क्योंकि मेरे बिना वह नहीं है तब

राजा बोला कि जहां व्यास और राजा नहीं है वहां मैं हूं और मैं उसी को नमस्कारकरता हूं तब व्यासजी बोले कि जहां राजा और अवशंख नहीं है वहीं मैं हूं तब राजा बोला कि इस से जिसमें तीनों स्थित हैं वही अवशंख है तब व्यास जी बोले कि जो वस्तु नाशहुई वही अवशंख है इस से मुझ में अवशंख नहीं है तब राजा बोला कि इसीसे तुम अवशंख हुये तब व्यास जी मौनहोगये और सम्पूर्णसन्त आश्चर्यित हुये और सबने यह जाना कि व्यास ऐसे ज्ञानीसे भी अवशंख न उठसका तब अवधूत बोले कि जो वस्तु कहने में आती है उसी को अवशंख कहते हैं और जहां बुद्धि नहीं है वह रूप मेरा है तब राजा बोला कि वही अवशंख है तब अवधूत मौन होगये और पराशरजी बोले कि मैत्रेयजी मैं भी वहां गया और देखा कि सर्वरूप मेराही है क्यों सन्त लोग अपना पराया यह द्वैत नहीं रखते तब मैंने कहा कि हे राजन्! जो तू कहता है वह सत्य है परन्तु जिससे यह अवशंख स्थित हुआ है उसे देख तब राजा बोला कि उसीको अवशंख कहते हैं हे मैत्रेयजी! मैं क्या कहूं वह अपने स्वरूप में स्थित रहता था इसीसे किसी की शक्ति न थी कि उसको उठासके तब राजा बोला कि हे सन्तो! सब शास्त्रों में अवशंखको श्रेष्ठ माना है तब अवधूत बोले कि यदि शास्त्र स्वयं सिद्ध होवे तो अवशंख वहां स्थित होगा परन्तु मुझ में कुछ नहीं है मैं अवशंखको कहां रक्खूं इस वचनको सुनकर राजा मौनहोगया और हे मैत्रेयजी! थोड़ेही काल में राजा सत्संग करके अपने स्वरूप में लीन होगया और मैंने तुमको अनेक प्रकार के उपदेश किये परन्तु मुझ में कुछ भी प्रवेश न किया हे प्यारे! इस समयको दुर्लभ जानो और अपने तत्त्वको सोचो कि तुम्हारा मूल क्या है कि जिसके विना सब तुच्छ है॥ इति॥

राजा निदाघ का इतिहास प्रारम्भ ॥

निदाघ नाम एक राजाथा उसने किसी समय में ऋषभ देव के आश्रम में आकर प्रश्न किया कि हे भगवन्! मुझको इस संसार समुद्र से पार कीजिये तब ऋषभ जी बोले कि हे राजन्! मेरी दृष्टि में संसार रूपी समुद्रमें जल नहीं है जो नौका बनाकर तुमको पार उतार दूं तब पराशर जी बोले कि हे मैत्रेयजी! जिसतरह हमने इतने समय तक तुमको उपदेश किया उसीप्रकार ऋषभदेवजी भी अपने शिष्य राजा निदाघ को दशसहस्र वर्ष तक उपदेश करते रहे परन्तु उसको कुछ भी ज्ञान न हुआ कि मुझमें बुद्धिहै परन्तु वास्तव में नहीं है जबतक विचार न करे कि मैं क्या करूं, जैसा वशिष्ठजीने रामचन्द्रजी को उपदेश किया है कि जिस किसी का शरीर कीचड़ में फंसजावे तो हाथों के सहारे से निकल सक्ता है परन्तु जिसका चित्त इच्छा में फँसा हो वह किस तरह निकले इससे उचित है कि अपना विचार आपही करे, फिर कुछ दिन के पीछे निदाघ ने पूछा कि हे गुरो! मैंने स्वप्न में देखा है कि मेरा शरीर नाश होगया और यम किंकर मुझको धर्मराज के पास लेगया तब धर्मराज ने मुझ से पूछा कि तुम शुभ और अशुभ कर्म अपना वर्णन करो और यह भी बतलाओ कि तुम कौन हो तब निदाघ ने उत्तर दिया कि मैं अपने को नहीं जानता हूं तब धर्मराज बोले कि जब तुम अपने कोही नहीं जानते हो तो तुमको दण्ड देना उचित है लेकिन आपका उपदेश मेरे हृदय में था इससे उस समय मेरे मुख से यह निकला कि मैं चैतन्य हूं शरीर नहीं हूं तब धर्मराज मौन होगये जब मैंने स्वप्न से आंख खोलकर देखा तो मुझको धर्मराज और यम किंकर कोई भी दिखाई न पड़े केवल वही संकल्प जो कि स्वप्न में देखा था बाक़ी रहगया तब ऋषभदेव जी बोले कि हे राजन्! ऐसाही है जैसा कि यह सं-

कल्प तुमको स्वप्नावस्था में दिखाई पड़ा और जब निद्रा छूटी तब भ्रमजाना तैसेही जब अज्ञान की निद्रा से जागेगा तव जानेगा कि यह जाग्रत् अवस्था जो नामरूप करके निश्चय होरहा है केवल भ्रम है मैं नहीं हूं तब निदाघ ने उत्तर दिया कि हे ऋषभदेवजी! योगियों का मत लाये हो जैसे योगी लोग नींदसे जागते रहते हैं तब ऋषभ देवजी बोले कि बड़ा आश्चर्य तुम्हारी बुद्धि पर है कि मैं कुछ कहता हूं और तुम कुछ समझते हो हे मूर्ख! योगपद अभिमान मात्र है मैंने तो यह कहा कि तुम अज्ञान द्वैत की निद्रा से जागो यह नहीं कहा कि रात्रि भर जागरण करो बड़े आश्चर्य की बात है कि वेदशास्त्र ने जो कहा है उसको सांसारिक लोग और प्रकार से समझते हैं इससे अहङ्कार से किसप्रकार छूटैं हे राजन्! तुम ज्ञानआत्मा का खांड़ा निश्चय हाथ में लेकर अहं मम का बन्धन अपने गले से जीवका बन्धन काटो जो कि जिससे काल से निर्भय होजाव नहीं तो धोखा दुःख होगा और आत्म बोध का द्वारा तब प्राप्त होगा जब वैराग्य की कुञ्जी हाथ में आवेगी तब राजा ने पूछा कि वैराग्य क्या चीज है जब कि आत्मा से अतिरिक्त कुछ नहीं है और न भिन्न होगा हे गुरो! जो पुरुष ज्ञानरूपी नेत्र खोले रहते हैं उनकी पहिचान किसप्रकार से है तब ऋषभदेव जी बोले कि जबतक तुम्हारी मनरूपी चक्षु न खुलैंगी इन आँखों से कदापि दिखाई न देगा जिसपुरुष का देहाभिमान दूर हुआ और नाम रूप का भी त्याग हुआ है उसको घर और बन एक समान है यदि प्रारब्ध से रेशम की शय्या प्राप्त होवे तो कुछ आनन्द नहीं है न कांटोंपर सोने से कुछ क्लेशही होताहै इसलिये वे पुरुष अपने से भिन्न नहीं देखते हैं और जबतक शरीराभिमान है कदापि सुखकी प्राप्ति न होगी तब निदाघ ने उत्तर दिया कि अहङ्कार का त्याग यही होगा कि मैं अतीत हूं तब ऋषभदेवजी बोले कि अतीत होने से अहङ्कार का नाश नहीं होता इसे स्थूल

कहतेहैं प्रयोजन तो सूक्ष्म के त्यागने से है इसलिये आवागमन का कारण सूक्ष्म अहङ्कारही है इससे सूक्ष्म का त्याग करो तब राजा बोला कि मैं नहीं जानता कि स्थूल और सूक्ष्म क्या वस्तु है दया करके मुझको इसका भेद समझाइये तब ऋषभदेवजी बोले कि गृहस्थाश्रम को त्याग करके फिर अतीत होना यही स्थूलका त्यागहै परन्तु अतीत होने पर भीइस बात की चिन्ता करता है कि अब मैं क्या करूं और कहां जाऊं और किसका स्मरणकरूं और जब क्षुधा लगेगी तब किससे मांगूंगा हे निदाघ! स्थूल का त्याग तो बहुत सुगम है परन्तु सूक्ष्म का त्यागना अति दुष्कर है इसी सूक्ष्म के त्यागने के लिये कितनेही जप करते और कितनेही गुफा में बैठतेहैं और कितनेही योगाभ्यास करते हैं परन्तु उसके नाशकेयत्न की प्राप्ति नहीं होती इसलिये कि उसके त्यागका मार्ग नहीं जानते जिससमय गुरुके निकट जाकर इस त्याग का प्रश्न किया उस समय गुरुने उपदेश दिया कि तीर्थयात्राकरो कि जिस से इस अहंकार का नाशहोजावे पर हे राजन्! जो पुरुष तीर्थयात्रा को जाता है वह सांसारिक बुद्धिके ग्रहण करने से जाताहै परन्तु उस तीर्थयात्रा में तत्त्व नहीं है विचार से कुटुम्बादि की याद करके भ्रष्ट होजाता है और चंचलता भी आजाती है और उसके मनमें अहंकार की वृद्धिहोती है कि मेरे समान कोई नहीं है इसहेतु कि मैंने तीर्थयात्रा बहुत किया है तब सूक्ष्म की वृद्धिहोती है और स्थूल में बन्ध होकर विवेक बुद्धिक्षीण होजाती है तब मनमें यह भासित होताहै कि यदि मैं कहूं तो अमुक मनुष्य मरजाय और अमुकजी उठे हे राजन्! जिस पुरुष ने इसभ्रमको अपने मनमें स्थित किया वह स्वरूप के ज्ञानसे अप्राप्त रहकर आवागमन के क्लेशको प्राप्तहोताहै हे शिष्य! गोविंद जी का भजन दो प्रकार का है एकसकाम कि मैं भजन करताहूं इस का फल यह विचारता है कि मैं जीवनावस्था में सांसारिक प-

र्थों के सुख भोगकर अन्त में स्वर्ग को प्राप्तहूंगा इस भजन के करनेवाले को सकाम भजन करनेवाला पुरुष कहते हैं यह गोविन्द के स्वरूप से अप्राप्त रहता है और जिस पदार्थ की इच्छा करता है वह उसको निस्संदेह प्राप्तहोता है और दूसरा निष्काम भजन है उसको श्रवण करो निष्काम भजन करनेवाला सदा यह जानताहै कि सर्वत्र एक वहीहै उसके विना और कुछ भी नहीं जड़ चैतन्यादि ब्रह्मासे लेकर पिपीलिका पर्यंत एक उसी पुरुष का विस्तार है और वही जगत्रूपहोकर भासता है जगत् उस से भिन्न नहीं है जैसे जलतरंग जलसे भिन्न नहीं है जलही है ऐसेही जगत् परमात्मासे भिन्न नहीं सब वही है हे शिष्य! जिसने ऐसा अनुमान करके गोविन्दका भजन किया वह निःसंदेह गोविन्दस्वरूपहोजाताहै तब निदाघबोला कि हे परम गुरु! अब कृपा करके सूक्ष्मअहंकार के नाशहोने का यत्न कथन कीजिये कि जिस से मेरा चित्त सुखीहोवे तब ऋषभदेवजी बोले कि तुम्हारीशक्ति सूक्ष्माहंकार से निकलने को समर्थनहीं दिखाई देती जब कि मरीचि आदि ब्रह्माके पुत्र सूक्ष्माहंकार से निकलने की इच्छा अनेक विधि करते हैं परन्तु उनको इस से निकलना अति दुर्घट है तब तुमसे किसप्रकार इसका त्याग होसक्ता है इस संसार में ऐसा कौन पुरुष है कि जो इस बातका अभिमानकरे कि मैं सूक्ष्म अहंकार का त्याग करूंगा यदि कहिये कि सूक्ष्माहंकार जप अथवा तप से छूटजाता है तो यह अत्यंत असत्य है ईश्वर और गुरुकी शक्ति इस से छुड़ाने की नहीं है कि किसी को इस सूक्ष्म अहंकार से छुड़ासके सूक्ष्म अहंकार एक अथाह समुद्र है इसमें अनेक जिज्ञासु डूबगये कि जिनका खोजतक नहीं मिला हे शिष्य! जो पुरुष सूक्ष्माहंकार में फँसा है और कहता है कि नहीं ब्रह्महूं उसका घात करना उचित है क्योंकि वह केवल उसका कथनमात्र मुख से है यह उसके सुखको नहीं जानता इस से उसका यह कहना व्यर्थ है तब निदाघ बोला कि

हे भगवन्! यदि सर्व ब्रह्महो है तब अहंकार कहां है जैसे कि समुद्रके जलान्तर ही उसके फेन और बुद्बुद व जलतरंगादि भिन्न भिन्नरूपों से दर्शित होते हैं परन्तु यथार्थ में वह सब जलही हैं तब ऋषभदेवजी बोले कि मेरे पास न्याय शास्त्र नहीं है नहीं तो मैं तेरे मन को पूर्णरूप से बोध कराके तेरी इस शंका को निवृत्त करता देख यह जीव सूक्ष्म अहंकारके आवागमनरूपी बन्धन में फँसा है परन्तु बन्धन में फँसने पर भी अपने को ब्रह्म मानता है यह कथन और बिचार उसका बिल्कुल असत्य और व्यर्थ है तब निदाध बोला कि हे भगवन्! आपका कथन सत्य है कि यह जीव आवागमन में भटकता फिरता है परन्तु सन्त लोगों का कथन है कि ब्रह्मही सर्वत्र पूर्ण है उसके सिवाय कोई दूसरा पदार्थ किञ्चित् भी नहीं है यह सुनकर मुझको धैर्य नहीं होता इसका विवरण मुझे कृपा करके यथावत् समझाइये कि इसमें क्या भेद है तब ऋषभदेव जी बोले कि तुमको सन्तोंकी समानता से क्या प्रयोजन है पूर्ण ब्रह्मवेही सन्त कहते हैं कि जिन्होंने सूक्ष्माहंकार का परित्याग किया है हे निदाघ! तू मेरा शिष्य है इससे मैं कुछ क्रोध नहीं करता यदि कोई दूसरापुरुष होता तो उसका नाश करडालता और यदि मुझ में यह अहंकार होवे कि तू मेरा शिष्य और मैं तेरा गुरुहूं तो मुझको धिक्कार है तब निदाघ बोला कि जब आपमें गुरु शिष्यका अहंकार नहीं है तो कृपा करके मुझे भी ऐसाही उपदेश कीजिये कि मैं भी इस सूक्ष्माहंकार के बन्धन से छूटजाऊं तब ऋषभदेवजी बोले कि यदि तुम इसके बन्धनसे छूटना चाहते हो प्रथम अपने मनको वशकरो यदि पूछो मन किसप्रकार से वश होगा तो सुनो यह संसार स्वप्नमात्र है इसमें अनेक प्रकारके पदार्थ दर्शित व भासित होते हैं परन्तु जागने पर उनका चिह्नमात्र भी दिखलाई नहीं देता तब निदाघ बोला कि हे गुरो! मनका स्वरूप कैसा है और मैं उसको किस तरह से अपने वशकरूं तब ऋषभदेव

जी मौनहोगये और शोचने लगे कि मनका स्वरूप किसप्रकार है उसी समय अष्टावक्रजी आकर प्राप्तहुये और बोले कि सर्व ब्रह्माण्ड में एक आत्माही व्याप्त है और जब सब जगह एक आत्माही पूरितहै तब मन किस स्थान में टिकसक्ता और वह अपना क्या वश दिखलासक्ता है हे निदाघ ! यदि ब्रह्म अद्वितीय है तो उसकी प्राप्ति किसप्रकार से होसक्ती है तब निदाघ मौन होगया फिर ऋषभदेवजी बोले कि हे अष्टावक्र ! तुम कौनहो तब अष्टावक्र ने उत्तर दिया कि मैं पूर्णब्रह्महूं तब ऋषभदेवजी बोले कि ब्रह्म एक है अथवा अनेक तब अष्टावक्रजी बोले कि यह कथन तुम्हारा हँसने योग्य है जब केवल ब्रह्मही है तब अनेक किसप्रकार होसक्ता है अब तुम भी कहो कि मैं पूर्णब्रह्महूं तब ऋषभदेवजी बोले कि हे अष्टावक्रजी ! जबतक पांचोंतत्त्वको अपने वश में न करे तबतक सुखस्वरूपको कदापि नहीं पासक्ता तब अष्टावक्रजी बोले कि ब्रह्मपूर्णको कहते हैं कि उसके बिना और कुछ नहो फिर चार और पांच यह कहना व्यर्थहै तब ऋषभदेवजी बोले कि जब एक वही है तब पांचो तत्त्वका वश करना भी उसीसेहै हे अष्टावक्रजी ! अब कहिये कि आप कौनहैं तब अष्टावक्र ने उत्तर दिया कि मेरा स्वरूप जाग्रत्,स्वप्न,सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंसे परे है अब आप अपना स्वरूप वर्णन कीजिये तब ऋषभदेवजी बोले कि मेरा स्वरूप तो तुरीयावस्था है तब अष्टावक्रजी बोले कि तुमने अपने को बड़ा जाना है, पूर्णब्रह्म विषे तीन और चार कहां है तब ऋषभदेवजी बोले कि हे अष्टावक्र जी ! बिचार करके देखो कि सुषुप्ति के त्यागने के पीछे तुरीया जो ईश्वर का स्वरूप है उसमें प्राप्ति होती है परन्तु ब्रह्म तुरीया से भी अतीत है इससे चारोंस्थान क्या संख्यामात्र से परे हैं उसीसमय अनसूया के पुत्र दत्तात्रेय अवधूत भी आपहुँचे और बोले कि मुझको मेरी नमस्कार है मैं देश और काल से रहित हूं तब अष्टावक्रजी बोले कि यह बतलाइये कि देश और काल

किसमें है तब अवधूत अर्थात् दत्तात्रेयजी बोले कि द्वितीय देश और काल से मुझको क्या सम्बन्ध है तब अष्टावक्रजी ने उत्तर दिया कि तुम अद्वितीय तब होसक्ते हो जब देश काल को अपने से अतिरिक्त न जाने तब अवधूत बोले कि तुम कौन हो तब अष्टावक्र ने उत्तर दिया कि मैं पूर्णब्रह्म हूं तब अवधूत ने कहा कि तब तो तुम अद्वितीय न हुये क्योंकि जब पूर्ण है तब अपूर्णभी है इससे तुम्हारा कथन हँसने योग्य है यदि स्वरूप को जाना है तब मौन हो तब अष्टावक्रजी बोले हे मेरे स्वरूप! यदि मैं मौन होजाऊं तब अहंकार है और वचन बोलूं तबभी अहंकारहै इस से इस विषय में क्या करना उचितहै कि जिससे निरहंकार हो जाऊं तब अष्टावक्रजी बोले कि ऋषभदेवजीसे पूछो कि जिन्हों ने अपने शिष्यको इतना भयभीत कियाहै कि वह स्वरूप को नहीं जानसक्ता तब ऋषभदेवजी से प्रार्थनापूर्वक पूछा कि हे ऋषभदेवजी! मैं तुम्हारा शिष्य होताहूं आप कृपापूर्वक मुझको उपदेश कीजिये तब ऋषभदेवजी बोले कि हे अवधूत! तुझमें यही अज्ञानहै कि तू अवतक गुरुकी इच्छा रखता है जब चौबीस गुरु से तुमको कुछ ज्ञान प्राप्त न हुआ तो एक मुझको गुरु करने से क्या लाभ होसक्ताहै तब अवधूत बोले कि गुरु कहां और शिष्य कौन है यह शरीर केवल जड़ है इससे इसको उपदेशकी कुछभी आवश्यकता नहीं है जब आत्मा पूर्ण है तब गुरु शिष्य कहां है यह संबंध केवल कथनमात्र है बड़े आश्चर्य की बात है कि अबभी गुरु शिष्यका भेद तुम्हारे हृदय से निवृत्त नहीं हुआ अर्थात् अबतक तुम्हारी अज्ञानता दूर न हुई यदि मुझसे कहिये तो मैं अवधूत आपही गुरु और आपही शिष्य हूं और कहो तो तुमको शिष्यके समेत भस्म करदूं तब ऋषभदेवजी बोले कि अब मुझको समझ पड़ता है कि जब सूक्ष्म अहंकार का नाश होगा तब आपसे आपही नाश होजावेगा परन्तु तो भी यह बतलाइये कि उसके नाश करनेका क्या यत्नहै तब अवधूतने उत्तरदिया कि

मैं वेद और शास्त्र नहीं पढ़ा हूं अवधूतों की तरह कहताहूं सूक्ष्म अहङ्कार का नाश तब होता है जब यह जाने कि सर्वशिव है और अन्तर व बाहिर सब स्थानों में उसीका प्रकाश है, सूक्ष्म और स्थूल कहां है जब पूर्ण जाना तब दोनों अहंकार भस्म होगये इससे अधिक यदि तुम जानतेहो तो वह कहो तब ऋषभदेवजी बोले कि जब सर्व शिवही है तो उसको कौन जान सक्ता है तब अवधूत बोले कि इससे अद्वितीय है कि अपनेको आप जानता है द्वैतभेदकी उसमें प्राप्ति नहीं है तब वसिष्ठजी आकर बोले कि कि यदि कोई चाहे कि संसार से मुक्त होवे तो योगकरे और योगके बिना मुक्तिका पाना अति कठिन है जिज्ञासुको उचित है कि पहिले आसन करके प्राणको शुद्धकरे तब अवधूत हँसे अवधूत का हंसना देखकर अष्टावक्रजी बोले कि सत्य कहिये योग कौन करे इसलिये कि जो सत्य और असत्य विषे योग्य नहीं होता योगका कर्त्ता कौन है तब वसिष्ठजी बोले कि मैं वृद्ध हूं और तुम बालकहो इससे मेरी तुम्हारी समता योग्य नहीं तुमने योग नहीं किया इससे तुम्हारा मन शुद्ध नहीं हुआ तब अष्टावक्रजी बोले कि मैं तो सदा योग में स्थित हूं फिर योग कौन करे बिछुड़े हुओं में मिलाप होताहै परन्तु जो आपस में मिले हुये हैं उनका मिलाप किस प्रकार से किया जावे अब यह बतलाइये कि आसन किस तरह से करूं और प्राणको किस प्रकार शुद्ध करूं तब वसिष्ठजी बोले कि बिना योग के योगको पहुंचना कठिन है तब अवधूत बोले कि मैं शिवहूं तुम कहते हो कि आसन करो और मैं कहता हूं कि शयन करो, तुम कहते हो कि प्राणायाम करो और मैं कहता हूं कि प्राणको सुगमता से बाहर निकालो, इससे हे वृद्ध ! स्थूलबुद्धि से रहित ऐसा योग करो कि जो भीतर और बाहर दोनों स्थानों में सर्वत्र वही होवे तुम्हारा योग खंडित है इस लिये कि तुम्हारा कथन है कि मनको बन्धवृत्ति से फेरकर वास्तव स्वरूप में लगाना चाहिये और योग मेरा

अखंड है कि भीतर और बाहर दोनों स्थानों में केवल शिवही है तब वसिष्ठ जी बोले कि जब तक अनहद का शब्द न सुने क्या लाभ है तब अवधूत बोले कि सुषुम्णा नाड़ी मध्य को कहतेहैं और विद्वान् पुरुष सुषुम्णा को सहज अवस्था कहते हैं हे वसिष्ठ जी! जिसको सहज अवस्था प्राप्त हुई उसके लिये सुषुम्णा क्या चीज़ है यदि कहिये कि लंबका अर्थात् जीभको बढ़ा कर योगी लोग अमृतपान करते हैं तो सुनो वह बूंद अमृत क्या है, जब कि योगी प्राणको अपान में करता है तब उसका शरीर भीतर व बाहर से अग्नि के समान होजाता है और यही उष्णता दशवें द्वार में जो रक्त, पीब व मज्जा से भरा हुआ है गर्मी पहुंचाती है तब मज्जा पिघल कर नीचे को आती है उसी को योगी अमृत का बूंद समझ कर पान करते हैं इससे वह अज्ञानी है कि जो ऐसे अथाह समुद्र को कि जिसमें भीतर और बाहर दोनों स्थानों में ब्रह्म पूर्ण है उसको त्याग करके एक बूंद लंबका पर निश्चय करे तब वसिष्ठजी बोले कि तूने संसार को भ्रष्ट किया तब अवधूत ने उत्तर दिया कि संसार क्योंकर भ्रष्ट न होवे, जो पुरुष स्वरूप को जाना और नाम रूपसे रहित हुआ वह निश्चय भ्रष्ट है योगी को चाहिये शयन को त्याग करके आसन लेवे और भजन करके सदा यही चिंतवन रक्खे कि प्राण किस मार्ग से आता जाता है परन्तु यह नहीं जानते कि साकार को निराकार में मेल करने को आत्मघात कहते हैं जिस समय पंचतत्त्व के शरीर को सर्प की केंचुल के समान त्याग किया हो तो फिर जैसे सर्प को केंचुल से कुछ प्रयोजन नहीं रहता उसी प्रकार उसको भी परित्याग करके उस त्यागे हुये शरीर का ग्रहण न करना चाहिये तब वसिष्ठ जी बोले कि चुप रहो तब अवधूत बोले कि मैं स्वयं प्रकाश हूं तब कपिल मुनि बोले कि जो पुरुष ईश्वर के बिना और कुछ जानता है वह योग क्या करेगा तब अवधूत बोले कि मौन रहना अच्छा है

तब ऋषभदेवजी ने कहा कि मौन होना सूक्ष्म अहंकार है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि हे ऋषभदेव जी! मुझमें मौनता और वक्तृत्व दोनों में से कुछ भी नहीं है यदि मैंही हूं तब सूक्ष्म और स्थूल कहां है परन्तु मौन अति उत्तम है तब अष्टावक्रजी बोले कि मैं न मौन हूं न वक्ता मुझे जो कुछ दिखाई देता है वह सब मैंही हूं तब वसिष्ठजी ने उत्तर दिया कि रूपमें यही देखना योग्य है तब अष्टावक्रजी बोले कि जिसने देखा और जिसको देखा यह दोनों मेरे रूप हैं इससे द्वैत कहां है कि योग किया जाय तब अवधूत बोले कि अपना स्वरूप कहिये तब अष्टावक्र बोले कि मेरा रूप यही है कि नाम रूप मुझमें नहीं है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि तू मौन होजावे तब अष्टावक्र जी बोले कि मौन होने से क्या प्रयोजन है मैं किसी पद में बन्द नहीं हूं इसका उत्तर तुम्हीं दो तब अवधूत ने कहा कि पहिले तुम हमारे प्रश्न का उत्तर दो इसी वार्तालाप के होते हुये ही नारद मुनि आकर उपस्थित हुये और नारायण नारायण उच्चारण किया कि जिसको सुनकर सब लोग बोल उठे कि मौन हो तब नारदजी बोले कि सन्तलोग इस निमित्त एकत्रित होते हैं कि परमार्थ का संवाद करें मौन होने से क्या प्रयोजन है तब अवधूत ने उत्तर दिया कि यदि नारायण ही है सब कहने से क्या सिद्ध है तब नारदजी बोले कि नारायण नाम कहने में परमार्थ है तब अवधूत बोले कि नारायण नारायण तुम कहो कि जो नारायण को भूले हुये हो मुझ में तो भूलना और ध्यान करना दो में से कुछ भी नहीं है तब नारदजी बोले कि मैं विष्णुधाम से तुम लोगों के सत्संग के लिये आया हूं और उस स्थान में भी यही वार्ता थी, अर्थात् विष्णुजी लक्ष्मी जी से कहते थे कि मैं संतों के सत्संग के लिये जाता हूं सो श्री विष्णु जी आते हैं तब अवधूत बोले कि मिथ्या न कहो तुम्हारे कथन में लोग हंसते हैं इस लिये कि विष्णु सर्वव्यापी हैं तब

उनमें आना जाना कैसे होसक्ता है मुझको विष्णु की इच्छा नहीं है क्योंकि वह सर्वत्र व्याप्त हैं यह वार्ता हो ही रही थी कि विष्णु जी भी आकर उपस्थित हुये और संतों के समागम को देखकर हंसे और बोले कि हे संतो ! तुम लोग निस्सन्देह जानो और मुख से बोलो कि जो कुछ चराचर स्थावर जंगमादि देखने सुनने और कथन में आताहै वह सब विष्णुही है और हम लोग भी विष्णु हैं किसी बातकी चिन्ता न करो जिस पुरुषने मुझको इस प्रकार व्यापक जाना वह निस्संशय मेरा रूप है क्योंकि उसमें और मुझ में कुछ अन्तर बाकी नहीं रहा तब अवधूत बोले कि हे नारद ! भगवान् का स्वयं वाक्य है कि सर्व विष्णु ही है और तुम आपको नारद कहते हो, तुमने अपने को अतिरिक्त जाना है आपही जानो कि यदि सर्व विष्णु ही है तब नारद कहां है इस बात चीत के होतेही समय जड़भरतजी भी कि जिनके शिरपर जटा और शरीर में भस्म विराजमान है और जिनके नेत्र अरुण सूर्य के समान प्रकाशितहैं आकर प्राप्त हुये और बोले कि श्रीविष्णु सर्व जड़भरतही है तब श्री विष्णु भगवान् बोले कि न जड़भरत न विष्णु मैंही हूं तब अवधूतने कहा कि हे श्रीविष्णु जी ! एक इतिहास मैं कहता हूं तुम उसको सुनो परन्तु मैं मौन के समान कहता हूं॥

योगीका इतिहास॥

एक समय मैं सुमेरु पर्वत पर गया और वहां एक कंदरा जो अस्सी योजन लम्बी थी उसमें पहुँचा तो क्या देखा कि एक योगी बैठा है मैंने उसको नमस्कार करकेपूछा कि हे योगिन् ! तुम्हारा स्नान किस वस्तु से होता है तब योगी बोला कि मैं अहं भस्म से स्नान करताहूं तब मैंने पूछा कि यहां भस्म किस वस्तु से बनाई है तब योगी ने उत्तर दिया कि मैंने अहंकारको जलाकर यह भस्म बनाई है जो कि शरीर पर मले हूं तब मैंने पूछा कि आसन किस बिधि से करतेहो तब योगीने उत्तर दिया

कि मेरा आसन चर और अचर से है मैं जानता हूं कि तीनों लोक मेराही रूप हैं जब इस प्रकार से उसयोगी की मैंने वार्ता सुनी और उसके रूपको देखा तो अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त हुआ और उस से पूछा कि प्राण और अपान को आप किस प्रकार से एक करते हैं तब योगी ने उत्तर दिया कि मैं एक और दो नहीं हूं क्योंकि योगी और को भी एक ही जानता है तब मैंने पूछा कि इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा का साधन किस प्रकार से करते हो तब योगी ने उत्तर दिया कि इड़ा पिंगला ईश्वर और सुषुम्णा ब्रह्म यह तीनों मुझी से प्रकाशित हैं तब मैंने पूछा कि ध्यान के बिषे कुछ कहिये तब योगी बोला कि सर्व मैंही हूं तब मैंने पूछा कि सोहम् का अर्थ कहिये तब योगी बोला कि सोहम् ब्रह्मा से लेकर पिपीलिका पर्यन्त व्याप्तहै जो श्वास भीतर जाती है शब्द सो और जो बाहर आती है वह शब्द हम् है तात्पर्य यह है कि अन्तर और बाहर मैंही सर्वत्र व्याप्तहूं तब मैंने पूछा कि नासाग्र क्या है तब योगी बोला कि अहंकार शरीर से अलग होना इसी को नासाग्र कहते हैं तब मैंने पूछा त्रिकुटी क्या वस्तु है तब योगी ने उत्तर दिया कि सत रज तम यही त्रिकुटी है फिर मैंने पूछा कि तुम्हारा शरीर कितने दिन तक स्थिर रहेगा तब योगी ने कहा कि शरीर कहां है जो पैरों से गिरै इस लिये कि मैं पांच तत्त्व से परे हूं तब अवधूत ने कहा कि हे श्रीविष्णुजी! फिर तीन परिक्रमा करके उनका चरणप्रक्षालन किया और चरणोदक को पान करके बोला कि तुम मेरे गुरुहो तब योगी बोला कि ऐसा शिष्य हो कि गुरु शिष्य का भेद न रहे यह इतिहास मैंने अपने गुरु का कहा फिर जड़भरत बोले कि इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है कि योगी अपने स्वरूपको जाने क्योंकि उसकी कामना निवृत्त होगई है परन्तु मैंने एक कर्म देही को अपना गुरु मानाहै॥

योगी का इतिहास समाप्त॥

कर्मकांडी का इतिहास प्रारंभ ॥

मैं एकसमय द्रोणाचल पर्वतपर गया और वहां एक कन्दरा जो बावन योजन लम्बी और इतनी ही गहिरी थी उसमें पहुंचा और उसमें एक कर्म देही को बैठे देखा उसके निकट जाकर ज्योंही इरादा किया कि योगी मेरी इच्छा को समझकर यकायक बोल उठा कि मैं विना भोजन योग में स्थितहूं तू मेरेपास मत आ तब मैंने पूछा कि हे मेरे रूप ! तुम्हारा स्नान क्या है तब योगी ने उत्तर दिया मेरा स्नान अहं और मम से है तब मैंने पूछा कि चौका किस बस्तु से लगातेहो तब योगी बोला कि चारो अन्तःकरणको चौका कियाहै फिर मैंने पूछा कि चूल्हा तुम्हारा क्याहै तब योगी बोला कि एक जड़भरत दूसरा कार्त्तिकेय यही दोनों हमारे चूल्हे के ढेले हैं तब मैंने उनसे पूछा कि खिचड़ी तुम्हारी क्या है तब योगी बोला कि ज्ञान और बिज्ञानकी फिर मैंने कहा कि तुम्हारा भोजन क्या है तब योगी ने उत्तर दिया कि बिज्ञानको खाताहूं तब मैंने पूछा कि लकड़ी तुम्हारी क्या है तब उसने उत्तर दिया कि मैंने कामना को लकड़ी बनाया है यदि तुम भी हमारे समान हो तो मेरे निकट आवो और भोजनकरो तब मैंने उस से पूछा कि जब तुम्हारे आगे भोजन आता है तब प्रथम श्रीभगवान् का भोजन लगाते हो तब योगी ने कहा कि अहंकार का भोग श्रीभगवान् को लगाता हूं और स्वरूपको प्राप्तहूं इस से उत्तम भोग श्री विष्णुजी के लिये नहीं है तब मैंने उनसे पूछा कि तुम्हारा रूप क्या है तब योगी ने उत्तर दिया कि यह संसार जो नाम रूप करके दिखाई देता है यही मेरा रूप है तब मैंने कहा कि तुम मेरे गुरुहो तब योगी बोला कि मैं तुम से परे हूं अर्थात् कारण हूं मुझ में गुरु शिष्य नहीं है मैंने गुरु शिष्यको नाश कियाहै और योगमार्ग में आयाहूं तुम मुझको फिर इस उपाधि में न फँसावो फिर योगी बोला कि तुम कौन हो तब मैंने कहा कि जड़भरतहूं तब योगी

बोला कि यदि तुम्हारा नाम जड़भरत है तो मेरे पास न आना क्योंकि तेरे पास आने से मेरा चौका अपवित्र हो जायेगा क्योंकि जड़ मृतक को कहते हैं और तुम मृतकरूपी नाम अपने साथ रखते हो तुम जबतक इस नाम का त्याग न करोगे तबतक मुझ को कदापि नहीं पहुंचसके तब मैं बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुआ और पूछा कि तुम्हारा क्या नाम है तब योगी ने कहा मुझमें नामरूप कुछ भी नहीं है हे श्री विष्णु जी! वह एक हमारागुरु था यह वार्ता होही रही थी कि वामदेवभी आपहुंचा और बोला कि एक अद्वितीय नारायण का नाम है दूसरा कोई नहीं जिस पुरुष ने नारायण से अतिरिक्त निश्चय किया उसका त्याग योग है तब अवधूत बोला कि हे वामदेव! श्री विष्णु जी का रूप क्या है जो एक से नाम रूप होता है तब वामदेव जी बोले कि यही श्री नारायण का रूप है तब अवधूत बोले कि मुझको एक और अनेक की इच्छा नहीं है मैं क्या करूं तब कपिल मुनि बोले कि हे कपिल! यदि सर्व रूप तुम्हारा है तब एक और अनेक भी तुम्हीं हो यह वार्ता होही रही थी कि दुर्वासा ऋषि भी जो अहंकार की अग्नि से जल रहे थे आकर पहुंच गये और वड़े अहंकार से बोले कि सब लोग गोविन्द का भजन करो क्यों कि गोविन्द के भजन बिन मुक्ति अति दुस्तर है तब राजा जनक ने आकर उत्तर दिया कि हे दुर्वासा जी! गोविन्द जी का भजन कैसा है कि जिससे निर्मल हो जाऊं तब दुर्वासा जी बोले कि श्री विष्णु श्री विष्णु कहना यही भजन गोविन्द जी का है तब राजा जनक बोले कि द्वैत लेकर वचन न बोलो इस लिये कि जिस स्थान में एक की समाई नहीं है वहां द्वैत किस तरह रह सक्ता है तब दुर्वासा ऋषि बोले कि मैं सबको भस्म करता हूं क्या तुम लोग मुझे नहीं जानते कि मैं रुद्र हूं तब अवधूत बोले कि रुद्र क्रिया को कहते हैं इससे क्रिया करो तब दुर्वासा ऋषि बोले कि हे अवधूत! तूने संसार को भ्रष्ट कर दिया मैं पहिले

तुझी को भस्म करता हूं तब अवधूत बोले कि यदि मृत्यु का आदि है तब मृत्यु के होने से क्या भय है यदि कहो कि गोविन्द के भजन से ऋद्धि सिद्धि प्राप्त होती है तो हमने इसको स्वप्नवत् जानकर तीनों लोक को ऐसा भस्म किया है कि फिर कभी जन्म न पावैगी अर्थात् इसकी उत्पत्तिही न होगी तब दुर्वासा जी बोले कि न वह योगी था न कार्तिक कि जिसको तुमने अपना गुरु किया है जिस पुरुष ने तुम्हारी आज्ञानुसार वार्ता की वह तुम्हारे अनुकूल हुआ मैं उसको नहीं मानता तुम सब मेरे शिष्य होओ नहीं तो मैं तुम सबको भस्म करता हूं तब श्री विष्णु जी बोले कि सब क्यों भस्म करते हो यह अपराध इस अवधूत का है इसीको भस्म करो तब दुर्वासा बोले कि हे विष्णु जी! यदि यह सब आपके अनुकूल नहीं है तो तुम यहां किस लिये आये हो तुम्हारे यहां उपस्थित होने से निश्चित होता है कि प्रथम इस विषय में तुम्हारी ही इच्छा है इससे मैं सब से पहिले तुम्हीं को भस्म करता हूं हे मूर्खो! कर्म करो भ्रष्ट न हो तब अवधूत बोला कि हे दुर्वासा! मैंने कर्म को भस्म करदिया अब किस तरह करूं तब दुर्वासा बोले कि जब कर्म भस्म हो गया तो तुम कैसे बचे तब अवधूत बोले कि कर्म मुझसे प्रकट हुआ है फिर मुझी में लय होगा मैं एक रस हूं तब दुर्वासा बोले कि तुम अत्रि के पुत्र हो इससे जो मैं कहूं सो करो तब अवधूत बोले कि अत्रि को हमने भस्म किया है अब तुमको भी भस्म करते हैं तब दुर्वासा बोले कि मैं जबतक सब को भस्म न करलूंगा यहां से नहीं जाऊंगा तब अवधूत बोले कि हे दुर्वासा! तुम एक रोम भी भस्म नहीं करसके जो पुरुष तुमसे भय माने तुम उसको भस्म करो मैं तुम से कुछ भी नहीं डरता तब दुर्वासा बोले कि तुम हमारे भाई हो मैं जड़ भरत को कहता हूं कि जब जड़को नाश कर दिया तो फिर उस जड़को अपने साथ क्यों रखता है मैं उस समयको नहीं जानता हूं जब सभा में आया था क्योंकि तुम्हारी

भी चाल भ्रष्ट है इसी समय मीमांसा भी आकर प्राप्त हुये और बोले कि विना कर्म के प्रयोजन सिद्ध नहीं होसक्ता तब दुर्वासा जी बोले कि हे मीमांसा! कौन कर्म है तब मीमांसा बोले कि सर्व कर्म है तब अवधूत मौन होगये फिर कपिल जी बोले कि जब नित्य को अनित्य से भिन्न जाना तब शुद्धकर्म तुमसे कैसे सिद्ध होसक्ता है तब मीमांसाने उत्तर दिया कि भिन्न जानना नित्य को अनित्य से कर्म होता है इससे सर्व कर्म ही हैं यदि तुम जानते हो कि हम कर्म से मुक्त हैं सो कदापि निश्चय नहीं करसके इससे कर्म करो कि जिससे तुम स्वरूप को प्राप्त होवो तब कपिल जी बोले कि कर्म अज्ञान विषे है जब ज्ञान प्राप्त हुआ तो कर्म से क्या प्रयोजन रहा उसको कौन करे तब मीमांसाबोलेकि हे कपिलजी! ज्ञान की प्राप्ति कर्म का नामहै जैसे वृक्ष और बीज में कुछभी भेद नहीं है बीज से वृक्ष और वृक्षसे बीज होताहै इसीतरह कर्म से सुख प्राप्त होता है और कर्म के सुख से ब्रह्म लोक मिलता है तब कपिल जी बोले कि जिसको ब्रह्मलोक मिलने की इच्छा न हो वह कर्म क्योंकर मैं बुद्धिहीन हूं मुझको कर्मसे कुछ भी प्रयोजन नहीं तब मीमांसा बोले कि तुम्हारा कथन सत्य है परन्तु जबतक योग न करे स्वरूपको कैसे प्राप्तहोगा योग भी कर्म है तब कपिलजी मौन होगये और निदाघ बोला कि कर्म शरीर से होता है अशरीर में कर्म कहाँहै तब मीमांसा बोले कि विना शरीर कौनकहे इससे शरीर कर्महै यदि कोई विना शरीर के कर्म करे तो कदापि नहीं होसक्ता तब निदाघ बोला कि जिस पुरुष का शरीर से कुछ प्रयोजन नहीं है उसके कर्म से क्या प्रयोजन है तब मीमांसा बोले कि कर्म से कहते हो कि शरीर हों तब निदाघ बोला कि जिस पुरुष को लोक और परलोक दोनों की आश नहीं है उसको कर्म से क्या संबंध है तब मीमांसा बोले कि नरक और स्वर्ग में कर्म ही प्रधान है यह सुनकर निदाघ मौन होगया तब दुर्वासाजीबोले किहे संतो! कर्मकरो विन कर्म

के सुखकी प्राप्ति कठिन है जैसे कोई पुरुष कहे कि अमुक फल मेरे मुखमें पड़जावे तो बिना कर्म के कैसे प्राप्त होवे, ऋषभ देव जी बोले कि कर्म स्वप्रकाश है अथवा पर प्रकाश तब मीमांसा बोले कि स्वप्रकाश है क्योंकि पुरुष जो कर्म करता है वही होता है और जो कामना करता है उसको प्राप्त होती और यदि निष्काम काम करताहै तो स्वरूप की प्राप्ति होती है तब ऋषभ देवजी बोले कि यदि इच्छा नाश भई तब कर्म से क्या प्रयोजन तब मीमांसा बोले कि इच्छा शुद्ध कर्म बिषे लीन हुई इससे वह भी कर्म है जो मनुष्य कर्म से विना कुछ जानता है वह चांडाल है तब ऋषभ देव जी बोले कि चांडाल क्या आत्मा से भिन्न है चांडाल भी आत्मा रूपही है यदि कर्मों के त्याग से चांडाल होताहै तो भी चांडाल हों इस लिये कि चांडाल कथन मात्र है वह अक्रेय हुआ तब मीमांसा बोले कि कर्म से विना अक्रेय कैसे होता है तब अवधूत बोले कि हे जड़भरत ! इस प्रश्नका उत्तर कहिये तब जड़ भरत जी बोले कि त्वंपद विषे कर्म है तत्पद में कर्म कहां है और असिपद अतीत है क्योंकि तत्पद उत्पत्ति, पालन और संहार में प्रवर्त नहीं है और असिपद अक्रेयरूपहै फिर उसमें कर्म कहां है तब मीमांसा बोले कि पद कर्म से तत्पद को प्राप्त होता है और तत्पद व असिपद कहने में आता है फिर विना कर्म के असिपद कहां है क्योंकि त्वंपद और तत्पद स्थूल कर्म है और असिपद सूक्ष्म कर्म है तब निदाघ बोले कि यदि पूर्ण है तब कर्म से क्या प्रयोजन है तब मीमांसा बोले कि यदि पूर्ण है तब कर्म उससे कैसे भिन्नहै अब हे अवधूत ! यह बतलाइये कि कर्म सत्य है अथवा असत्य तब अवधूत बोले कि कर्म सत्य है तब मीमांसा बोले कि तुम महात्मा होकर यह कहते हो कि अवधूत ने सम्पूर्ण संसार को भस्म किया है मैंने तो भ्रष्ट नहीं किया किन्तु इन संतों ने भ्रष्ट किया है तब अवधूत बोले कि इन लोगों ने भिन्न जाना है तब मीमांसा बोले कि विना कर्म

समत्वा को प्राप्त होना अति कठिन है तब पराशर जी बोले कि हे मैत्रेय जी ! मीमांसा का अभिप्राय यह है कि सबलोग कर्म की पालनाकरें क्योंकि स्थूल अहंकार कर्म के आधीनहै जो सूक्ष्म अहंकार से अतीत है वह भी कर्म है इसलिये कि वह कहता है कि मैं कर्म से छूटा यह मिथ्या है तब मैत्रेयजी बोले कि हे भगवन् , हे गुरो ! अक्षेय किसी प्रकार न हुआ इसलिये कि यदि सर्व पद विषे कर्म की पालना करे तो आपी आप धर्मभ्रष्ट होता है आतमचारी क्या करे क्योंकि परमहंस भी इसके आधीन हुये हैं हे गुरो ! कर्मको उठाइये मैं डरताहूं इसलिये कि योगाभ्यासी अल्पबुद्धि हैं इससे किसप्रकार से करें तब पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी ! तुमको निश्चय नहीं है कि इतनी वार्ता इसीलिये होती है यदि वाक्यमात्रसे फिरे तो क्या लाभ चाहिये यदि शरीर नाशहोजाय तो भी निश्चय से न फिरे यदि फिरे तो निश्चय नहीं है दम्भहै इसविषयमें एकइतिहास तुमको सुनाता हूं श्रवण करो ॥

राजा भरत के पुत्र का इतिहास प्रारम्भ ॥

कर्मभूमि भरतखण्ड में एक भरत नामी राजा था कि जिसकी स्त्री गर्भवती थी जब दश मास व्यतीत हुये तब उस के पुत्र उत्पन्न होने की आशा हुई परन्तु पुत्र माता के उदर से बाहर नहीं आता था और कष्ट अर्थात् पीड़ा बड़ी थी तब रानी पुत्रसे बोली कि पुत्र सत्य कहो कि तुम अपने बाप के वीर्यसे हो या नहीं तब पुत्र बोला कि हे माता ! जो माता की रज और पिताके वीर्य से उत्पन्न होता है उसका नाम शरीर है इससे जड़ है पत्थर, ढेलाके समान है और मैं चैतन्य हूं मैं आदि मध्य और अन्त में भी एक समान पूर्ण हूं इससे पिताके वीर्यसे किसतरह होसक्ताहूं तब माता बोली कि मुझसे तो कोई पाप कर्म नहीं हुआ फिर पिताके वीर्य से अपना होना क्यों नहीं मानते हो

तब पुत्र ने उत्तर दिया कि मैं किसी तरह बाप से उत्पन्न नहीं हूं इसलिये कि यह शरीर काष्ठकी पुतली की नाईं है और मेरानाम रूपसे रहित है इससे जो नाम रूप न रखता हो उसको पिता के वीर्य से किस प्रकार कहो कि यह अमुकके वीर्य से उत्पन्नहुआ है और तुम्हारी दृष्टि स्थूल शरीर पर है तो इसको स्वप्न और मृगतृष्णा की भांति निश्चय करो तब माता बोली कि यदि पिताके वीर्यको नहीं मानते हो तो शास्त्र भ्रष्ट करेगा तब पुत्र बोला कि तुम सत्य कहतीहो परन्तु जो कोई नाम रूप से रहित है वह आपही शास्त्रभ्रष्ट है और जो अपने को शरीर मानता है शास्त्र उसको दण्ड देवेगा और जो अशरीर है वह देखने में नहीं आता शास्त्र उसका क्या करेगा तब माता बोली कि हे पुत्र! तुम कौनहो ऋषिहो अथवा देवता या पिशाचहो तबपुत्र ने उत्तर दिया कि इनमें से तुमने जिसका नाम नहीं लिया मैं वह हूं परन्तु प्रकाशक इन सबका जो तुमने गिनाये हैं मैं ही हूं तब माता बोली कि हे पुत्र! यदि तुम ईश्वरहो तो तुमको मेरे उदरमें आनेका क्या काम था तब पुत्र बोला कि हे माता! तुम विचार रूपी नेत्रों से अन्धी हो तुमसे क्या कहूं तुम आपही बिचार करो कि आदिसे मैं तुममें न था जो अब आयाहूं मैं व्यापक हूं देव गोविन्द उत्पत्ति व नाश से रहितहूं और सर्व कर्मों से अतीतहूं इस से मेरी नमस्कार मुझी को है क्योंकि मैं पूर्ण ब्रह्म हूं तब माता बोली कि विना योग के मन शुद्ध नहीं होता इस से पहिले योग करो कि जिससे मन शुद्ध होवे तब पुत्र बोला कि मैं अद्वितीय पदोंका साक्षी हूं और सर्वदा सम रूपहूं इसी संशय ने तुमको पीड़ित किया है कि अपना स्वरूप जानने के लिये योग व समाधि कहती हो जो अद्वैत अखण्ड न होवे वह बंधन में है यदि कहो कि सत् चित् आनन्द अज्ञेय बिषै कुछ करना तो तुच्छ और मिथ्या है मेरा रूप शुद्ध स्वयंप्रकाशवान् है मुझको योग से क्या प्रयोजन है और योग, मेल होना किसी वस्तु के

साथ को कहते हैं जब मुझ में कोई दूसरा नहीं है आपही आप हूं तब मेल क्या वस्तु है और किसके साथ करूं तब माता बोली कि बिना कर्म के सुख नहीं मिलता तब पुत्र बोला कि जिस वस्तु का आदि दुःख है उसमें क्या सुख होगा और मेरा रूप वह है कि जिसमें सुख और दुःख दो में से एक भी नहीं है तब माता मौन होगई और पुत्र बोला कि मौन न होओ जो कुछ तुम को समझ में आवे वह कहो और सुनो जो तुम पूछती हो कि कौन हो सो सुनो–मैं अद्वितीय हूं यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मुझी से प्रकाशित है परन्तु मैं सर्वदा इससे अतीत हूं तब माता बोली कि तेरे समान कोई माताके उदर में कभी नहीं बोला बाहर निकल तब पुत्र बोला कि मुझसें भीतर बाहर नहीं है तब माताने कहा कि संतों के दर्शन से कल्याण होता है तब पुत्रने उत्तर दिया कि सन्तको इन नेत्रों से कैसे देखसके यही उपदेश और सिखापन अमृत के तुल्य है और दर्शन उनका है हे माता! बिना सत्य बिचार और ज्ञानके जो कोई चाहता है कि कल्याण प्राप्त होवे सबको व्यर्थ जानकर भ्रम व अभिमान मनसे बाहर करो औरअन्तर्यामी को देखो तब माता बोली कि अब आत्मतत्त्व कहो कि जिससे मैं कृतार्थ होऊं तब पुत्र बोला कि आत्मतत्त्व मैं तब कहूंगा कि जब तू मलिनता चतुराईसे किनारे होकर जो कुछ सुने उसको सत्य जाने तब माता बोली कि जो वस्तु असत्य है उसको सत्य कैसे जाने तब पुत्रने उत्तर दिया कि तुमको आत्मतत्त्व किस तरह से प्राप्त होवे कि जो अबतक सत्य और असत्य को शोचती हो तब माताने कहा कि अब मैं सब से न्यारी हुई जो कुछ तुम कहो वही करूंगी तब पुत्रबोला कि जो तुमको ज्ञान की इच्छाहै तो श्रवण करो तब माता बोली कि ऐसा उपदेश करो कि जिससे शरीर को नाशवान् जानकर तत्त्वको प्राप्त होऊं तब पुत्रबोला कि यद्यपि ऐसा कभी नहीं हुआ है कि जबतक अहंकार का त्याग न करे और स्वरूप को

प्राप्त होवै परन्तु मैं तुमसे कहता हूं कि ऐसा निश्चय करो कि श्री गोविन्दही है और यदि गोविंद ही है तब शरीर उनसे कब अतिरिक्त होसक्ता है इससे लय करने के लिये कोई वस्तु न रही आपी रहा हे माता! छहोशास्त्र स्वरूप की प्राप्ति की प्रक्रिया भिन्न भिन्न कहते हैं परन्तु सब सिद्धान्त यही है कि श्रीगोविन्द ही है तब माता बोली किहे पुत्र! तेरे संगसे मुझको यह प्राप्त हुआ कि न मैं न पुत्र केवल गोविन्द हीहै उसी समय पुत्र प्रातःकाल के उदय हुये सूर्य के समान प्रकाशित माता के उदर से उत्पन्न हुआ पुत्र का जन्म सुनकर राजा अति आनन्द को प्राप्त हुआ फिर पुत्र ने पृथ्वी में गिरतेही माता से पूछा कि हे रानी! मैं तुम्हारी व्यवस्था जानने के लिये आया हूं कहो क्या प्राप्त है और तुमने क्या उत्पन्न किया है तब रानी बोली कि न पुत्र न मैं केवलश्रीगोविन्दही है तब राजा बोला कि हे रानी! यह महात्माओं का ज्ञान तुमको किस तरह प्राप्त हुआ तब रानी बोली कि यही उपाय है कि मैं नहीं हूं केवल गोविन्द ही है और यदि केवलगोविन्द ही है तब तू गोविन्दमैं गोविन्द दोनों गोविन्द ही हैं और क्या उपाय बतलाऊं यदि और कुछ पूछना हो तो पुत्र से पूछलो फिर राजा ने पुत्र से पूछा कि तुम कौन हो तब पुत्रने उत्तर दिया कि मैं नहीं हूं क्या कहूं और यदि मैंही हूं तो किससे कहूं तब राजा भरत बोला कि हे पुत्र! तुम धन्य हो कि तुम्हारे सत्संग से हम और रानी दोनों स्वरूप बिषे प्राप्त हुये तब पुत्र बोला कि हे पिता! तुम प्रथम स्वरूप से कब भिन्न थे जो मेरे उपदेश से उसको प्राप्त हुये अब तुम आत्मा बिषे लीन होजाव तब राजा जड़भरत बोले जब तक तृष्णा जो पिशाच की नाईं मन को पकड़े है नाश न हो तबतक आत्मसुख कैसे प्राप्त होगा तब पुत्र बोला कि तृष्णा का रूप कहिये तब राजा बोला जो मनमें अनेक प्रकार की कामना उठती है उसी को तृष्णा कहते हैं यह न होवे तब पुत्र

बोला कि देखो इच्छा का होना किसके अधिकार में है जब उस इच्छा करनेवाले को जानोगे तव कामना के नाश का विचार तुम्हारे चित्त से स्वतः नाशको प्राप्त होजावेगा तव राजा जड़भरत बोले कि जिससे इच्छा होती है उसको विष्णु कहते हैं तब पुत्र बोला कि तुम्हारा वचन हँसने योग्य है यदि इच्छा विष्णु ही से है तव तुमको डर किस बात का है कि उस के नाश करनेकी इच्छा करते हो तव राजा जड़भरत बोला कि अब मैं इच्छाको नाश करने से भी रहित हुआ परन्तु अतीत होकर राज्यको त्याग करूं तब पुत्र बोला कि यदि आप वनमें गये और राज्य करने की इच्छा मनसे दूर न हुई तो वनमें जाने से क्या लाभ है हे राजन् ! राज्य करो और भगवान् के विना किञ्चित् पदार्थ को कुछ न समझो न देखो यही ज्ञान है तब राजा बोला कि मैं चाहता हूं कि सन्तों का सत्संग करूं और परमार्थ को प्राप्त होऊं तब पुत्र बोला कि ऋषभदेव के आश्रममें ब्रह्मसूत्र होता है उस स्थान पर सब सन्त इकट्ठे होते और हुये हैं यह कैसा ब्रह्मयज्ञहै कि जिस में आहुति और अग्नि एक ब्रह्महीं है चलो उस स्थानपर चलें और उनसंतों और उस यज्ञके दर्शन करें इस तरह पुत्रकी वार्ता सुनकर राजा रानी और पुत्र समेत ऋषभदेवजी के आश्रम को चले और वहां पहुँचकर क्या देखा कि मीमांसा हँस हँस कर कहता था कि सम्पूर्ण कर्मही है और अवधूत के सिवाय सब लोग उसके कथन की पालना करते थे तब पुत्रने पितासे कहा कि अब आप सन्तों की सभा देखिये तब मीमांसा पुत्रसे बोला कि तुम कर्म रूपहो तब पुत्रने उसको उत्तर दिया कि कर्म किससे उत्पन्न होकर किसमें लय होता है तब मीमांसा बोला कि कर्म किसी से उत्पन्न नहीं होता वह स्वयंप्रकाशरूप और व्यापकरूप है तब पुत्रने हँसकर कहा कि ऐसा उपद्रव क्यों करते हो कर्म स्वप्रकाश पूर्ण है अथवा खाली तब मीमांसा बोला कि पूर्ण है

तब पुत्रने फिर पूछा कि पूर्ण में कौन वस्तु नहीं है जब क्रिया नहीं है तब कर्म कहां है क्योंकि यदि पूर्ण है तब उसको कौन करे इस उत्तर को सुनकर मीमांसा मौन होगये और सम्पूर्ण सन्तलोग बोल उठे कि हम ब्रह्म हैं यह दशा देखकर राजा भरत अपने पुत्रसे बोला कि तू सबसे परेहै तब पुत्रने उत्तरदिया ऐसी बुद्धिको अग्नि में जला दीजिये क्योंकि न्यूनाधिक्य अर्थात् कमी और जियादती सब मेराही रूप हैमैं किसी से न्यून और अधिक नहीं हूं तब राजा जनक बोले कि हे पुत्र! मैं तुमको पूर्ण-ब्रह्म देखता हूं तब पुत्रने उत्तर दिया कि यही अज्ञानहै कि अब तक पूर्णब्रह्म देखतेहो यदि पूर्ण है तब उसका द्रष्टा कौन होवे फिर अवधूत से बोले कि तुम्हारा नाम अवधूत किस प्रकार से हुआ तब अवधूत बोले कि तुम्हारा क्या नाम है तब पुत्रने उत्तर दिया कि मेरा नाम स्वदेवदत्त है तब अवधूत ने पूछा कितुमको स्वदेवदत्त क्यों कहते हैं तब पुत्रने उत्तर दिया कि जिस तरह तुमको देवदत्त कहते हैं उसी तरह मुझको भी स्वदेवदत्त कहते हैं तब अवधूत बोले कि अब आप अपना रूप बतलाइये तब पुत्रने उत्तर दिया कि क्या तुमने अभीतक नहीं देखा जो अब पूछते हो, मेरा रूप वह है कि जिसमें नाम रूप कुछभी नहींहै तब अवधूत ने पूछा कि अब मुझे यह बतलाइये कि यह सबरूप तुमसे है अथवा तुमसे भिन्न है तब पुत्रने उत्तर दिया कि इस समय मेरे वाक् नहीं है जो कहूं और विना वाक् के कहनानहीं बनता तब अवधूत ने कहा कि फिरमौनहोजाव तब पुत्रने उत्तर दिया कि तुम अबतक अवधूत नहीं हुये विचार करके देखो कि जो इतनी वार्ता मने की है वह वाक् सेकीहै और वाक् की सामर्थ्य है कि वार्ता करसके तब अवधूत हँसकर बोले कि जिसने अपना रूप जाना उसने अपना सुख नहीं कहा क्योंकि वह कथन में नहीं आता तब पुत्र बोला कि मेरे कथन को सुनिये सुख मेरा वह है कि जिसमें सुख और दुःख दोनों नहीं हैं फिर सुख क्या

बस्तु है तब अवधूत बोले कि और कुछ कहिये तब पुत्र बोला कि तुम श्रवण से रहित हो और मैं वाक्य को त्यागता हूं और बिना वाक्य के कथन करता हूं तुम बिना कानके सुनो कि अवधूत नहीं है मैंही हूं यही निर्वाण है तब अवधूत बोले कियदि सर्व तूही है तब तुम्हारा स्थान कहां है तब पुत्र बोला कि वे॰ में लिखा है कि जाग्रत् अवस्था में नेत्र में, स्वप्नावस्था में कंठ में और सुषुप्ति अवस्था में हृदय में और तुरीया में मस्तक में परंतु मेरे हृदयमें नहीं आता क्योंकि जब अखंड ब्रह्मांड बिषे आत्मा पूर्ण है तबकिसस्थान में कहना चाहिये यदि एकस्थान में कहा जाय तब और स्थानों ने क्या अपराध किया है, आत्मा सर्व बिषे पूर्ण है यह भी मिथ्या है और यदि वही है तब पूर्ण किस बिषे होवे इससे बड़ा आश्चर्य है कि आपी आप है और पूछता है कि तुम कौनहो और कहता है कि मैं पापी हूं, नरकगामी हूं परन्तु क्या करूं जो कामनाके बशहूं यदि कोई कहे कि नित्य अनित्य दोनों ब्रह्म है तो लड़ने को तय्यार होता हैइससे कामना का त्यागकरो तब अवधूत नेकहा कि मुझ में कहां है जो कहता है कि मैं नरकगामी हूं तो समता बिषे देख कियदि सर्व विष्णु भगवान्ही है तब कहो क्या नरक नहीं तो स्वर्ग तो सब को प्रिय है परन्तु वह लोग धन्य हैं जो नरक में भी मग्न रहते हैं तब पुत्र बोला कि यदिहठ नहीं है तब युद्ध क्यों करतेहो तब अवधूत ने उत्तर दिया कि युद्ध क्यों न करें जानता हूं कि आदि से पूर्ण हूं फिर पूर्ण कहनेसे क्या प्रयोजन है तबपुत्रने उत्तरदिया कि यदि पूर्ण दृष्टि है तब ब्रह्म क्यों नहीं कहते तब अवधूत बोले कि यदि ब्रह्मको नहीं जानते कि ब्रह्म आपही है और स्वयंप्रकाशवान् है वह कहनेसे नहीं होता तब पुत्रबोला कि यदि स्वयंप्रकाशवान् है तो पापी किसलिये कहता है तब अवधूत बोले कि पूर्ण सबको अंगीकार है परंतु वह धन्य है जो अपनेको पापी मानता है क्योंकि श्री विष्णु भगवान् धर्म और अधर्म दोनों में समान

हैं तब पुत्र बोला कि यदि कुछ उपाय स्वरूप जानने का कहा जाय तो उसको मानता नहीं है तब अवधूत बोले कि स्वयंसिद्धि में उपायकी समाई कहां है तब निदाघ बोला कि मैं सर्व बिषे पूर्ण हूं और सर्व पदों का द्रष्टाभी मैंहीहूं मेंसमता और बिषमता नहीं रखता हे अवधूत! तुम मुझही से प्रकाशवान् हो तब अवधूत बोले कि तुम और मैं नहीं हूं मैंहीहूं तब राजा जनकने उत्तर दिया कि श्री नारायण अभेद है तब अवधूत बोले कि हम और तुम नहीं हैं केवल मैं ही हूं तब जनक ने उत्तर दिया कि श्री नारायण अभेद है तब अवधूत बोले कि हे मूर्ख! नारायण बिषे भेद और अभेद दोनों नहीं हैं हे मैत्रेय! उस समय सम्पूर्ण सभा के लोग ऐसे मौन होगये कि पांचहजार वर्ष व्यतीत होगये परन्तु एक क्षणके समान भी न मालूम हुये और फिर प्रसन्न होकर बोले कि जो कोई वासना को त्याग न करे वह वासना के बीचमें बँधा रहता है तब पुत्र बोला कि यदि वासना का त्याग न करे तो क्या है और यदि त्याग करे तो क्या होताहै तब अवधूत ने उत्तर दिया कि जबतक वासना है तबतक जीव रूप है और जब वासना का त्याग होजाता है तब शिवरूप होजाता है इससे वासना के त्यागके बिना सुख नहीं है इसवास्ते इस पिशाच रूपी वासना का त्याग करनाही उचित है तब पुत्र ने उत्तर दिया कि यदि वासना त्याग करूं तो क्या लाभ है और त्याग न करने से क्या हानि है तब जड़भरत बोले कि हे पुत्र! तुमको अबतक ज्ञान प्राप्त न हुआ कि वासना के त्यागे बिना सुख स्वरूपकी प्राप्ति नहीं है तव पुत्र बोला कि सुखका स्वरूप किस तरह का है उसको कथन कीजिये तब जड़भरत बोले कि जो तुम कहतेहो कि सन्त लोग बिना कर्म बन्धनकी पालना करते हैं यह मिथ्या है प्रथम मैंने शरीर रूपी संसार को ज्ञान अग्नि में जलाया तिसके पीछे संतों ने मेरी वाक्य लिया फिर पुत्रबोला कि सत्य कहिये कि कर्मों के करने से शुद्ध हूंगा और न करनेसे

अशुद्ध रहूंगा तब जड़भरत बोले कि जबतक वासना का त्याग नहीं होता तबतक मनरूपी दर्पण स्वच्छ नहीं होता तब पुत्र बोला कि जिसके मन न हो वह क्या करे तब जड़भरत बोले कि जो तुमने जाना कि हमारे विषे पर नहीं है इसीको त्याग करो तब पुत्र बोला कि इसके जानने से क्या लाभ और न जाननेसे क्या हानि है तब जड़भरत बोले कि अज्ञान अंधेरी रात्रिके समान है और ज्ञान सूर्यके समान प्रकाशवान् है इससे इतनाही भेद है तब पुत्र बोला कि मेरा रूप दोनों से परे है और दोनों मेराही रूप भी हैं तब राजा जड़भरत बोले कि हे पुत्र! संतों को इतना दुःख न दो यदि तुमने कुछ जाना है तो तुमको सुख है कहने से क्या प्रयोजन है मौन धारण करो तब पुत्र बोला कि हे पिता! इस भेदहष्टि को कि यह मेरा पुत्र है और दूसरे सन्त हैं मध्य से उठाओ क्योंकि यही अज्ञान है मेरे विषे पिता अरु पुत्र दोनों नहीं हैं हे राजन्! कहने से क्यों रोकते हो यह पुत्र हमारा रूप है और जो कुछ कहना है आप से कहता है दूसरे से नहीं तब जड़भरत बोले कि हे पुत्र! तुम कहां से आये और कहां जावोगे तब पुत्र बोला कि मैं देश व काल से परे हूं इससे मेरा एक स्थान से आना और दूसरे स्थान में जाना नहीं है मैं विदेह अर्थात् विना शरीर स्थित हूं तब जड़भरत बोले कि तुम कौन हो तब पुत्र बोला कि तुम क्या जानो कि मैं कौन हूं किसकारण कि तुम्हारी दृष्टि नामरूप में स्थित है और तुमने जाना है कि मैं जड़भरत हूं इस आवरण अर्थात् परदा को दूर करके आत्मा और आप को देखो कि मैं कौन हूं तब जड़भरत बोले कि तुम ब्राह्मण हो क्योंकि जिसपुरुष में इसप्रकार का विचार होवे ब्राह्मण हो अथवा चांडाल मेरा गुरु है तब राजाभरत बोले कि हे पुत्र! जब सर्वव्यापी आप हैं तब संसार और सत्सङ्ग से क्या लाभ है तब पुत्र ने उत्तर दिया कि यह सब संसार रूपी रचना के हेतु कहना और सुनना है इससे विशेष और क्या प्राप्त होगा

कि भ्रमको भ्रम जानगया नहीं तो ब्रह्म आकाशकी नाईं सर्वत्र पूर्ण है तब अवधूत बोले कि इन सबको तुम क्या देखतेहो तब पुत्र बोला कि मेरे नेत्र नहीं हैं मैं किस प्रकार और किससे देखूं यदि नेत्र कहूं तो तीन पद होते हैं एक द्रष्टा दूसरा दृश्य तीसरा दर्शन इससे मैं अद्वितीय हूं इससे मेरा देखना कहां रहा तब अवधूत मौन होकर कुछ न बोले इसी समयान्तरमें हंसपर चढ़े हुये श्रीब्रह्माजी आ पहुंचे ब्रह्माजीको आयाहुआ देख श्रीबिष्णु जी उनकी ओर देखकर हँसे और यह बोले कि हे ब्रह्माजी! देखो सभा तुमको जड़से उखारती अर्थात् कारणके सहित नाश करती है तब ब्रह्माजी बोले किमनुष्य शरीर धारण करने का यही फल था यह न्यून नहीं है तब श्री बिष्णुजी बोले कि यह लोग प्रारब्ध कर्म के अभिमान से भ्रममें हैं और इनको अहंकार भी है तब ब्रह्माजी बोले कि यदि प्रारब्ध है तो उनका संकल्पहै और प्रारब्ध का नाश करते तो आप करते हैं हमने अपनी ओर से कुछ भी नहीं किया है परन्तु मेरी इच्छा यह है कि सर्व संसार को अपने को जाने तब श्री बिष्णु भगवान् बोले कि हे ब्रह्मा! इस पुत्र के मस्तक में तुमने क्या लिखा है तब ब्रह्माजी बोले कि हे श्री बिष्णुजी! इस पुत्र में नाम, रूप नहीं है इसके मस्तक में क्या लिखूं तब पुत्र उठकर औरसाष्टांग दंडवत् करके ब्रह्माजीसे बोला कि हे श्री ब्रह्माजी! संतलोग आश्चर्य को प्राप्त होंगे कि आत्मदर्शी को किसी की दंडवत् से क्या प्रयोजन है परन्तु मैंने तुम्हारे पंच महाभूत औरमन, बुद्धि, चित्त और अहंकारको दंडवत् किया है तब श्रीब्रह्माजी बोले कि एक बुद्धिको जो अपने पास में रक्खा है उसको भी दंडवत् में देदो तब पुत्र बोला कि मैंने बुद्धि से दंडवत् किया है यदि बुद्धि न होती तो किसतरह से दंडवत् करता तब श्रीब्रह्माजी बोले कि बुद्धि के विचार से सच्चिदानंद तुम आपही हो, पुत्र आत्मामें लीन होगया तब ब्रह्माके पुत्रमरीचिभी आकर प्राप्त हुये और अपने पिता ब्रह्मासे बोले कि हे

पिताजी! सत्य २ कहो कि आपको ब्रह्मा क्यों कहते हैं और आपके कौनसे अंग का नाम ब्रह्मा है तब ब्रह्माजी बोले कि ये सब अंग हमहीं से हैं परंतु मैं क्या कहूं कि हैं अथवा नहीं हैं तब मरीचिऋषि बोले कि अब मेरी इच्छा है कि मनको अपने वश में करूं इसलिये कि यह सन्ध्या करते समय भी अनेक स्थानों में मारा फिरता है इससे ऐसी युक्ति बतलाइये कि जिससे मन का नाश होजावे तब ब्रह्माजी बोले कि मैं तब कहूंगा कि जब यह बतलावे कि मैं कौनहूं कि जिसमें तू अपने मनको जाने और मनका नाश होवे, मनुष्य कहते हैं कि योगसे मन वश होता है परन्तु मिथ्या है जबतक कोई योगमें स्थित रहता है तभी तक मन स्थित रहताहै और जब योगसे उच्चाट हुआ तब यह मन फिर अनेक स्थानों में पहुंचता है यह केवल मनका कारण है तब मरीचि बोले कि मैं संकल्प विकल्प में फँसाहूं इससे अपनेको नहीं जानता हूं और संकल्प विकल्प मेरा वस्त्रहै जबतक इसका त्याग न होवे आत्मा का निश्चय किस तरह होसक्ता है यदि मैं अपने को जानता तो मनके नाशका उपाय न पूछता तब ब्रह्माजी बोले कि मैं तेरे रूपको तब कहूंगा जब तू कहेगा कि मुझमें नाम रूप कुछ भी नहीं है परन्तु बाहरसे मतकहो अंतःकरणसे कहो कि मैं शरीर नहीं हूं और जब अंतःकरणसे तुझको निश्चयहुआ तब बे परिश्रम तेरा स्वरूप तुझको प्रकट होगया इसलिये यह शरीर अभिमान आत्मा बि॰ आवरण अर्थात् परदा है और यह सर्ब संसार जो देखता है यह सर्वनाम रूप बिषे निश्चय किये हैं इस कारण से अपने स्वरूप को प्राप्त नहीं होते और यह जानते हैं कि यही अहंकार शरीर आत्मा का आवरणहै तब मरीचि बोले कि हे श्री ब्रह्माजी! यदि शरीर है तब आपहै और जब शरीरही नहीं है तब आप कहां है कि जो कहे आप हैं तब श्रीब्रह्माजी बोले कि जिस समय शरीर नाश होता है और सब अंग बने रहते हैं यदि आत्मा उस शरीर में है तो क्यों नहीं

चलता फिरता तब मरीचि ध्यान में लीन हुये और योग शक्ति से भीतर बाहर के सब अंग देखने लगे कि सब जड़ हैं फिर ब्रह्माजीसे बोले कि मैं शरीर नहीं हूं अब आप बतलाइये कि मैं कौन हूं तब ब्रह्माजी बोले कि चित्तको एकाग्र करके श्रवणकरो तो जो शरीर तुम्हाराहै प्रकटकरूं, जिस बस्तुसे तुमने सब अंगोंको देखा और जड़जाना वही तुम्हारा रूप है तब मरीचि अपने स्वरूपको जानकर आत्मा में लीन हुये और ब्रह्माजीसे बोले कि आप के दुर्लभ सत्संग से मैंने स्वरूप को जाना तब श्री विष्णु भगवान् बोले कि हे श्री ब्रह्माजी! तुमने बहुत शीघ्र इस पुत्रको स्वरूप बिषे प्राप्त किया सन्तलोग ऐसा नहीं करते तब श्री ब्रह्माजी बोले कि संतों के अनेक मार्ग हैं जिस मार्ग से चाहें मुमुक्षु के प्रयोजन को सिद्ध कर देवें उससमय जय नाम राक्षस आ पहुँचा और बोला कि मैं सब को भक्षण करूं और मैं आपी आपहूं उसके इस वचन को सुनकर और रूप देखकर सब मौन होगये तब अवधूत बोला कि जब तक भक्षण नहीं कियाक्याथा और यदि भक्षणकरोगे तब क्या होगा तबराक्षस बोला कि मैं नहीं जानता था कि कोई श्रोता मेरे वचन का है परन्तु देखा कि तू है तब राक्षस राजपुत्र के पास आकर यह बोला कि हे पुत्र! मैं तुझको भक्षण करता हूं तब पुत्र बोला कि तू किसको खाता है यह जो तू सब देखता है तुझी से है यदि तूने भक्षण किया तो अपने ही अंग भक्षण किये यदि कोई अपने को भक्षण करे तो कोई रोंक नहीं सका तब राक्षस बोला कि मैं यही भक्षण करता हूं कि तुझको और अपने को अर्थात् अहंत्वं को खाकर आपी आप हूं तब पुत्र बोला कि यदि तीनों को भक्षण करेगा तब त्रिपुटी सिद्ध होगी मैं अद्वितीय हूं तब राक्षस बोला कि हे पुत्र! तुम्हारा क्या नाम है मैं तुम्हारे नगर का हूं तब पुत्र बोला कि मेरा नाम स्वराट् है उसको कहता हूं स्वराट् उसे कहते हैं जो अपने प्रकाश से प्रकाशित होवे तब राक्षस बोला कि जिसवस्तु

के बिषे प्रकाश होता है वह कौन स्थान है कि जिस विषे तूने प्रकाश किया तब पुत्र बोला कि मैं आपी प्रकाशरूप और आपी प्रकाशक हूं तब राक्षस बोला कि अब कहिये मैं कौन हूं तब पुत्र बोला कि मैं ही हूं हे राक्षस! अब कुछ और कहो कि जिसमें मनुष्य और राक्षस दोनों न रहे तब राक्षस बोला कि मुझ में वाक्य की गम नहीं है तब पुत्र बोला कि तुम हमारे देश के हो तब श्रीब्रह्माजी मरीचि से बोले कि हे पुत्र! देखो यह राक्षस क्या कहता है कि उसीसमय श्रीशिवजी भी जो परम ज्ञानरूप त्रिशूल हाथ में लिये हुये जिनकी जटाओं में श्रीगङ्गाजी विहार करती हैं और मस्तक में चन्द्रमा विराजमान है व कण्ठ में सर्प हारके समान विभूषित हैं आकर प्राप्त हुये और बोले कि हे राक्षस! मैं तुझको मारता हूं कहो तुम कौन हो तब राक्षस बोला कि हे शिवजी! अपने सर्वाङ्ग में देखिये कि शिवही है अथवा और कोई तब शिवजी बोले कि न शिव न राक्षस एक मैं ही हूं फिर निदाघ से बोले कि मैं तुझको मारताहूं तब निदाघ त्रिशूल से बोला कि मैं त्रिशूल अर्थात् त्रिगुणको भस्म करके आपही शिव हुआ हूं तात्पर्य यह है कि त्रिगुण माया को नाश करके अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ हूं तब शिवजी बोले कि बाहर से मतकहो भस्म करूंगा तब राजा निदाघ बोला कि क्या कहूं निदाघ तुम्हारे दर्शन से भस्म होगया तुम अन्तर्यामी हो देखो यदि भीतर या बाहर मुझमें निदाघ होवे तो भस्म करो नहीं तो जानो कि शिवरूप है तब शिवजी बोले कि जब निदाघ भस्म होगया तो बाकी क्या रहा तब निदाघ बोला कि जब निदाघ भस्म होगया तो निदाघ बाकी रहा तब शिवजी बोले कि तुम्हारा शरीर सफल हुआ इस निश्चयका त्याग न करना जब आत्मा में लीन होगा तब हम तीनों देवता अर्थात् ब्रह्मा विष्णु और शिवके भयसे रहितहोवेगा धन्यऋषभदेवके उपदेश और ऋषभ देवजीको कि जिनकी कृपा से तुमको

स्वरूप प्राप्तहुआ, सदा शिवजीभी सर्व से फिरकर विष्णुदेवकी ओर मुख करके पूछने लगे कि तुम कौनहो तब विष्णुजी बोले कि जो तुमहो तब शिवजी बोले कि यदि मेरा रूप है तो आवो और मिलो तब श्रीविष्णुजी बोले यदि तुम भिन्नहोतो मैं मिलूं तब शिवजी बोले कि अवतक तुम्हारे मनसे भिन्न व भेद नहीं गया यह नहीं जानते हो कि मन भी तुम्हारेविषे है यदि शिवको नहीं देखतेहो तो आपी आपहो और उसी मनको देखताहूं जो अज्ञान है तब श्री विष्णुजी बोले कि जबतक तुमहो मनभी है और जब तुम नहीं हो तब मन कौन है इससे मनभी तुम्हीं हो यदि मैं हूं तो मुझसे अतिरिक्त क्या है तब शिवजी बोले कि मैं क्या कहूं संसार तुम्हीं से प्रकट होता है यह तुम भलीप्रकार जानतेहो कि मुझमें कोई वस्तु नहीं है तो आपी आप है तब राक्षस बोला कि श्री विष्णु और श्री शिव दोनों मैंही हूं तब श्री विष्णुजी बोले कि अब मैं चक्र को आज्ञा देताहूं कि तेरा शिर तेरे धड़से अलग करदेवे इसलिये कि तू मूर्ख है तब राक्षस बोला कि मैंने अपना शिर अपने हाथ से काटा है फिर उसके कटने से क्या संशय है हे विष्णुजी ! मैं शरीर नहीं रखता कहिये तुम्हारे शरीर है अथवा नहीं तब श्री विष्णुजी बोले कि शरीर केवल कथनमात्र है क्योंकि यह पंचतत्त्व से बना है और वह पांचोतत्त्व महत्तत्त्व अहंकारसे उत्पन्न हुयेहैं और अहंकार प्रकृति से और प्रकृति पुरुषसे प्रकट हुई है इससे एकही पुरुष निरन्तरहै शरीर कहां है तब राक्षस बोला कि हमारी जात मूर्ख थी नहीं तो तीनों देवताओं को काबू में लाना सहजही था मैं तीनोंलोक का राज्य करता और किसी से भय न रखता आदि में हिरण्याक्ष और हरिणाकशिपु से आजतक किसी ने नहीं जाना कि शुद्ध प्रकाश है जिसने स्वतः त्याग करके दूसरे की चिन्ता मनमें रक्खी उसको कैसे न मारे हे श्री विष्णुजी ! हमारा कुटुम्ब क्यों नाश किया तब श्री विष्णुजी बोले कि हमने किसी को नहीं मारा

और न मुझसे कोई मरेगा क्योंकि यह देह बुद्बुदेकी नाईं है जैसे नदीमें बुद्बुदा उठकर फिर नदी मेंही विलीयमान होजाता है तब कौन मरगया और किसने मारा इसलिये सब लोग कहते जाव कि आत्मा भी शरीर है॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः॥

ब्रह्मयज्ञ का इतिहास समाप्त हुआ॥

श्रीगणेशाय नमः॥

हरिःॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः॥

राजा वासकरण और आत्मदर्शी का इतिहास॥

आत्मदर्शी वासकरण से बोले कि हे भगवन्! हे परमानन्द स्वरूप गुरो! मैं आपके उपदेशरूपी अमृत को पान करके सब देवताओं और ऋषीश्वरों व मुमुक्षुओं का व्यवहार और व्यवस्था जो कुछ जाननी योग्य थी जानली परन्तु एक संशय जो मन व बुद्धि से जानने से परेहै और सिवाय गुरु व आपकी दयाके उसका निवृत्त होना अति कठिन है, मैं सर्व कर्म लौकिक वैदिक और शरीर व सर्वलोकों को व जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति समष्टि व्यष्टि व सर्व प्रपंचको मिथ्या संकल्प मात्र अधिष्ठान की सत्ता से अतिरिक्त सत्ता रहित जानता हूं, परन्तु इनको भेद से मैं अभिज्ञात हूं इससे कृपापूर्वक इनका विवरण करके मुझको सविस्तर समझाइये कि जिससे मेरी संशय निवृत्त होवे १ मेरा स्वरूप क्या है २ मैं कहां से आया हूं ३ और किसलिये आया हूं ४ व शरीर त्यागने पर कहां जाऊंगा ५ कारण मेरा कौनहै ६ यदि मैं आत्मा हूं तो शरीर में किसतरह आया ७ मेरी उत्पत्ति का हेतु और प्रयोजन क्याहै इसलिये कि बिना प्रयोजन मूर्खोंकी भी प्रवृत्ति नहीं

होती तो स्थूल सूक्ष्म,कारण व संघातकी उत्पत्ति का क्या प्रयोजन है हे दयालु ! दया करके ये सब मेरी संशय निवृत्त कीजिये तब वासकरण जी बोले कि हे शिष्य! तुम्हारे इस भ्रमकी निवृत्तिका कारण यह है कि तुम्हीं से सब प्रपंच जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति सिद्ध होती हैं और तुम्हारेही प्रकाश से प्रकाशित हैं व स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंच भी सब तुम्हीं से प्राप्तहैं तुम न कहीं से आयेहो न कहीं जाओगे आकाश की नाईं निष्क्रिय और व्यापक व पर्वत की नाईं अचल सदा स्थित हो उत्पत्ति और नाश शरीरकाहै और शरीर वासना से उत्पन्न होताहै और वासना स्वरूप के अज्ञान से द्वैत या ईश्वरको अपने से भिन्न निश्चय करने से होतीहै कि ईश्वर गुरुरूप होकर मेरी मुक्ति करेगा और अपने को दीन अल्पज्ञ और ईश्वर को सर्वज्ञ स्वतंत्र जानना केवल स्वरूप के अज्ञान सेहै नहीं तो वेद और शास्त्र ने श्री कृष्ण जी अर्जुन से गीता में प्रत्यक्ष प्रकट कियाहै कि सब पदार्थों का प्रकाशक सूर्य की नाईं और नियन्ता स्वर्ण भूषणकी तरह मैंहीहूं और मैंने भी बारम्बार तुम से यही कहाहै कि एकश्री कृष्ण देवही भीतर बाहर मध्यमें सब चराचर प्रपंच के पूर्ण है इस क्षणभङ्गी शरीर के साथ तदात्मता करके अर्थात् अपने को शरीर जानके और सजातीय व बिजातीय स्वगत भेद से रहित सच्चिदानन्दस्वरूप अपनी आत्मा को भिन्न जानना केवल अज्ञान और मूर्खता है हे शिष्य ! किसप्रकार किसी को छोटा बड़ा मूर्ख व पंडित निश्चय किया जावे, क्योंकि एक परमात्मा सर्व चराचर भूतों में जलतरंग की नाईं पूर्ण और व्यापक है इससे उचित है कि प्राणी मात्र में न्यूनाधिक्यता न देखे और जाने जैसे कि सर्वतरंग व बुद्बुदों में जल व्याप्त है इसीतरह परमात्मा भी सब में एकरस पूर्ण है यह जो प्राणियों में न्यूनाधिक्यता, उत्तमता अधमता रूपी गुण दिखाई पड़ता है यह सब कर्म का फल है हे शिष्य ! यही बासना प्राणी को बारम्बार नरक और गर्भवास

को प्राप्त करती है अर्थात् इसी से मोक्ष नहीं होता, मोक्ष तो इस प्राणी को बिना विद्वान् के सत्संग के कदापि नहीं होती परन्तु आत्मज्ञान केवल सत्संग से होताहै हे शिष्य! सर्वनाम रूपात्मक जगत् सब अनित्य और मिथ्या जानो इस अनित्य नाशवान् के साथ प्रीतिकरनी या शरीर को अपना रूपजानना केवल अज्ञान और मूर्खता है तब आत्मदर्शी ने कहा कि हे भगवन्! मुझको आपके उपदेश से निश्चय हुआ कि शब्दादि विषयों की वासना पानी के चित्र की तरह है और वासना व शब्दादि विषय शरीर के सहित पानी के चित्र की नाईं देखते ही देखते मिथ्या होजाते हैं और उत्पत्ति इन सूक्ष्म पंचभूतों की या कार्य इन पांचों का शरीरहै और चेष्टा इसकी पांचभूतों से सिद्ध होती है और स्थिति भी इन्हीं पांचभूतों की आत्मा में है अर्थात् आत्मामें अध्यस्थ है और प्रपंच सर्व ईश्वराधीन है व आत्मा पुण्य व पाप सर्व प्रपंच के संग व कर्मोंके बंधन व जन्म, मरण व बंधमोक्ष से रहित है अब मैं आपके सकाश से निश्चय करना चाहता हूं कि वह कौन वस्तुहै जो उत्पन्न होकर नाश होजाती और बन्ध होतीहै आपने पूर्व में कहाहै कि ये सर्व नाम भी नाशवान् हैं और परमेश्वर को हज़ारों नाम से स्मरण करते हैं तो क्या परमेश्वर भी उत्पन्न व नाश होताहै तब वासकरण बोला कि हे शिष्य! यह प्रश्न तुम्हारा जो तुमने किया बहुत कठिन है इसका उत्तर और तात्पर्य यथावत् ज्ञानसे प्राप्त होताहै और जिसकी बुद्धि योग क्षेम के यत्नमें रहती है उसको श्रवण करने से आत्मज्ञान नहीं होता है और ज्ञान की प्राप्ति साधन सम्पन्नाधिकारी को श्रोत्रिय ब्रह्मनेष्ठी गुरु के प्रकाश से होतीहै मुमुक्षु को चाहिये कि सदा विद्वानों और विरक्तों का सत्संग करे तब आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है हे शिष्य! श्रवण करो कि ईश्वर को जो अनेक नाम से स्मरण करतेहैं वही उसकी स्तुतिहै और ईश्वर रूपजातिवर्ण व उत्पत्ति व

नाश से रहितहै और दिखलाई नहीं देता अर्थात् किसी इन्द्रिय का विषय नहीं है केवल अज्ञान और दीनतासे भासताहै परन्तु आपको यह जानना योग्य है कि यह काष्ठकी पुतली की नाईं जड़ शरीर किसकी सत्ता करके चैतन्यकी नाईं चेष्टा करता है और वाक् से आदि लेकर सर्व इन्द्रियां अपने २ व्यवहार को करती हैं और यह मनुष्य नाम जो प्रकट है सो क्या है नहीं तो सर्व अंग भिन्न भिन्न नामवाले हैं यह जो तुम्हारा आत्मदर्शी नाम है सो कहां है और किसका और क्याहै हे शिष्य! इन सर्व देह इन्द्रियों को जड़ व मिथ्या जानकर श्रवण करो कि यह आत्मा सुख से रहित है और जीना मरना उत्पत्ति आदि षड्भाव विकार शरीरके धर्म हैं जैसे पुराना वस्त्र उतारकर डाल देतेहैं और कुछ समय के पीछे किञ्चित् टुकड़ा उस वस्त्रका दिखाई पड़ता है और कहतेहैं कि यह उक्त वस्त्रका टुकड़ा है तैसे शरीर अवस्था करिके वा तप करके जब जीर्ण होजाताहै या प्रारब्ध भोग के अनन्तर इस शरीर को आत्मत्याग करके किंचित् काल अपने स्वरूप में प्राप्त होता है और शरीर को जलाते हैं पीछे उस शरीरके पुत्र कुटुंबादि धन व भूमि मन्दिर आदि जो रहताहै व पुण्य पाप कीर्त्ति अकीर्त्ति रहतीहै इस निमित्त से स्मृति उस शरीर की होती है जिस पुरुष की धर्म पूर्वक कीर्त्ति स्मरण होतीहै इसलोकमें उस पुरुषको सुख होताहै और जिस की अधर्म पूर्वक अकीर्त्ति स्मरण होतीहै उसको नरक होता है और बुद्धिमान् पुरुष स्वर्ग नरक जन्म मृत्यु इसी मर्त्यलोक में जान लेतेहैं जैसे किंचित् गंगाजल मदिरा में डाल दे तो उस गंगाजल के साथ कोई धर्मात्मा पुरुष स्पर्श नहीं करताहै तैसे आपको अर्थात् आत्माको भी शरीरनिश्चय करना यही मदिरा है जैसे गंगाजल के प्रवाहके मध्यमें डाली हुई मदिरा गंगाजल रूप होजाती है तैसे यह जीवात्मा महावाक्य से शोधन पूर्वक अपने को समष्टि, व्यष्टि, शरीर तीनों से कार्य, कारण व

उपाधि से भिन्न जानकर ब्रह्माहं अस्मि अर्थात् सर्व्वाधिष्ठान शुद्ध ब्रह्म हमीं हैं जब ऐसा निश्चय करता है तब द्वैत से रहित आत्मरूप होता है तब आत्मदर्शी ने कहा कि हे भगवन्! इस आपके उपदेशरूपी अमृत से मुझको शान्ति और संतोष प्राप्तहुआ परंतु मेरी इच्छा है कि आपके सकाशसे यहमेरा संसार निवृत्त होवे यहीपुण्य और पापसत्य नहीं और इस प्राणी को-सुखदुख के संशय में डालता है जब सुखप्राप्तहोता है सुखीहोता है और दुख के प्राप्तहोने से दुखीहोता है सो यह क्या है तबवास-करण बोले कि आत्मा सुख और दुख में एकरसरहता है क्योंकि असंगहोने से आकाशकी नाईं है सुख व दुखयही संसार है सो यह आगमापाई है अर्थात् सत्यनहीं है इस लिये मुमुक्षु को योग्य है कि संप्राप्ति काल में प्रसन्न और आपत् काल में व्याकुल चित्त न होवे कि अपने धर्म को नजान के एकरसरहे हे शिष्य! यदि सम्पूर्ण अवस्था वेद व शास्त्रके पढ़ने में व्यतीत करदी और का-मना व वासनारूपी पिशाचको न मारा तो मुक्तरूपी अभयको कदापि नहींप्राप्त होसक्ता यदिउसको ब्रह्मा विष्णु महेशभी आ-कर उपदेशकरें तोभी निर्वासनाहुये बिना मुक्तिको कदापि नहीं पा सक्ता और यदिवैदिक कर्म या पूर्णमास आदि यज्ञ और वेदा-ध्ययन व तप दिन रातकरे परंतु निर्वासना न होवे तोभी मुक्तिको कदापिनहीं पासक्ता और जो पुरुष मिथ्या संसार और संसारी के संगमें रहेगा वह तृप्त और सुखी न होवेगा और जो पुरुष इस सिद्धान्त को धारण करताहै और वासनारहित होता है और परलोक की इच्छा से रहित होताहै वह मुक्त होताहै और जो कोई हजारहा वर्ष तपकरता परन्तु निष्काम नहीं होता उस को एक क्षणमात्र भी सुख नहीं मिलता यह पुरुष जबतक अन्तष्करण को कामना रूपी मलसे रहित करके शुद्ध नहीं करता और अपने को इस अनित्य जड़वत् शरीर से भिन्न नहीं जानता तबतक कदापि मोक्ष को प्राप्त नहीं होता और जो

पुरुष मुमुक्षु निष्काम होकर तप और यज्ञ करता है अरु पदार्थों में संशक्ति और संग्रह करता है वह पुरुष न अतीतहै न गृहस्थ वह दोनों आश्रम के धर्मों से रहितहै और जो पुरुष शरीर और अधिष्ठान ब्रह्मको रजतसुक्तिका (चांदीकीसीप) की नाई अभेद जानकर सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद से रहित पूर्ण आत्मा को निश्चय करके श्रद्धालू और अद्वैतधारणा वेदान्त में सिद्धान्त करता है वह गोविन्द रूपहै और सम्पूर्ण विद्वान् इसी धारणा को मुक्ति प्रतिपादन करते हैं सिद्धान्त और तात्पर्य सबका अन्तष्करण के शुद्ध करनेसे है क्योंकि जिसका अन्तष्करण शुद्ध है वही मुक्त रूपहै हे शिष्य! मनका कोई कोट अर्थात् क़िला नहीं है न कोई सेना व शस्त्रहै कि जो तुमको उसका जीतना कठिन होवे तुम आपही आप बन्धन में पड़े हो तुम शब्दादि विषयों की कामना त्याग कर मुक्त हो यही कामना बन्धनहै हे शिष्य! यदि पूछो कि वस्तु की प्राप्ति में यत्न करना योग्य है तो सुनो—कि आत्मा, मन, वाणी का और लौकिक शास्त्र वाक्यों का विषय नहीं है जो पुरुष बुद्धिको इस संसारी व्यवहारसे निवृत्त करके आत्मा अर्थात् ईश्वरको ज्ञानका विषय निश्चय करके यत्न करता है वह बिना देखे संतोष नहीं करता अब तुम भी आत्मा के दर्शन करने में यत्न करो आत्मा का दर्शन विद्वान् व ब्रह्मनेष्ठी का चिरकाल सत्संग करने से प्राप्त होताहै सब विद्वानों का अद्वैत और एकता से तात्पर्य है यदितुम सब प्रपंच और जगत् व आपको एक अद्वितीय ब्रह्म निश्चय करोगे तब सब कर्मों के बन्धन से मुक्त होजाओगे हे शिष्य! यह ज्ञानरूपी मणि अति गुप्त और दुर्लभ है इसका प्राप्त होना सुगम नहीं है और अनेक यत्न करके इन्द्रादि देवता और योगी व ऋषीश्वर आदि ज्ञान की प्राप्ति चाहते हैं परन्तु उसकी प्राप्ति नहीं होती हे शिष्य! आत्मज्ञान की प्राप्ति में यत्न और पुरुषार्थ अत्यंत करना योग्य है क्योंकि जैसे समुद्र को भुजा से

तरना व वायु को मुष्टिका में निग्रह करना और सूर्य के प्रकाश को गजसे नापना असंभव है तैसेही आत्म ज्ञानकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है परन्तु पुरुषार्थ साध्य और सार है हे शिष्य! जो पुरुष अपनी सम्पूर्ण अवस्था वेद शास्त्र के पढ़ने और पढ़ाने में व्यतीत करता है और अपने मनको वशनहीं करता उसकी व्यवस्था ऐसी है कि जैसेकोई पुरुष किसी मित्रकीप्राप्ति और प्रेम से बावलाहोता है और उस मित्रको किञ्चित् चित्त में संकल्प मात्रभी मिलाप नहीं होता जैसे उस पुरुषका कष्ट व्यर्थ है तैसेही जानो और बुद्धिमान् को किञ्चित् कहना बहुत है इस शरीर से आदिलेकर सर्वद्वैत संकल्पमात्र मनोराज व स्वप्नवत् पदार्थ कीनाईं जानकर सुखी होओइस लिये यह कारण कार्य और सर्व द्वैत तुम्हारीही कल्पीहुई है तब आत्मदर्शी बोला कि हे ब्रह्मवित्! अर्थात् ब्रह्म जानने वाले ब्रह्म स्वरूप गुरुआपकी कृपा से सर्व ज्ञान गुप्त व मुमुक्षु को जानना योग्यहै सो मैंनेजाना कि सब प्रपंच जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति मृग तृष्णा के जल की नाईं मिथ्या है और बन्धन भ्रम मात्रहै और सुख व दुख कुछ दिनका पाहुनहै और यह शरीर नाशवान्है और कामना व वासना भी क्षण २ में अनित्यहैं परन्तु एक संशय मेरा और भी निवृत्त कीजिये, कि मैं कौनहूं और मेरी उत्पत्ति किसवस्तु से है इस जगत् में शरीर क्यों धारण किया है और कारण से मेरा क्या प्रयोजन है हे गुरो! कृपा करके इस संशयरूपी समुद्र से व द्वैतरूपी सागरसे उपदेशरूपी जहाज द्वारामुझको पारकीजिये कि जिससे इस द्वैतरूपी भ्रम से मोक्ष होऊं तब वासकरणजी बोले कि हे शिष्य! यह संपूर्ण जगत् जलके तरंग की नाईं तुम्हींसे उत्पन्न हुआहै जिसको वेद शास्त्र सजातीय आदि भेद व नाम रूपसे रहित मन वाणी का विषय पूर्ण सर्वाधिष्ठान कहते हैं वह तुम्हीं हो और उत्पत्ति व नाश शरीर का धर्म है इसका तुमको स्पर्शभी नहीं है तुम सदा एक रसहो व सांसारिकसम्पूर्ण उपद्रवों से रहित हो तुम कुछभी शोच

न करो यह सम्पूर्ण अनन्त जगत् जलके तरङ्ग की नाईं तुम्हींमेंहै यह कभी प्रकट और कभी लय होजाताहै परन्तु जलकीनाईं सदा एकरस रहतेहो और क्रियामात्र से रहित व आवागमन से वर्जित हो यह सम्पूर्ण जो कुछ दृश्यमान है शरीरहीसेहै जीवात्मा भी सबका तुम्हींहो तुमकर्म के करने व न करने से रहितहो और जो कुछ दृश्यहै सब तुम्हींसेहै इसलिये तुमको उचितहै कि सब जगत् को अपना रूप जानकर द्वैतको मनसे दूरकरके दृष्टि अद्वैतकी स्थिति निश्चल करके सुखी होवो, हे शिष्य! तुम सजातीय आदि भेदसे रहित अद्वितीयहो तुम से अतिरिक्त किञ्चित् वस्तु नहींहै तुम अपनेको अज्ञानसे शरीर की सत्तामानकर बीच बन्धन दुःख व राग द्वेषादि के सर्व उपद्रवों में फँसेहो यदि आत्मज्ञानद्वारा अपने स्वरूपको निश्चय करोगे तब शरीरादि सर्बद्वैत को सशा (खरहा) के शृङ्ग की नाईं असत्य जानोगे इस जगत् के आदि मध्य व अन्त तुम्हींहो द्वैत भ्रममात्र है तुम बन्ध मोक्ष से रहितहो जो कुछ शुभ अशुभ पाप तुमको भासताहै वह मन से त्यागकर सुखीहो और सम्पूर्ण भयसे रहितहो तुम सजातीय आदि भेदसे रहितहो अर्थात् स्वमहिम्नी स्थितहो मोक्षको क्या खोजतेहो तुम स्वयं मुक्त रूपहो हे शिष्य! तुम अपने को जानो कि तुम क्याहो शब्द को श्रवण सुनते रूपको नेत्र देखते निश्चय बुद्धि करतीहै सो तुम इनसे आदि लेकर यह सब नहीं हो क्योंकि यह दृश्यहैं और तुम द्रष्टाहो जिस प्रकार आपको जानाजाय जानो आत्मस्वरूप का जानना यथावत् निस्संशय है जैसे होवे तैसे यत्नकरना योग्यहै और आत्मज्ञान सन्तोंके सत्सङ्ग से प्राप्त होताहै इससे तुमको उचितहै कि सन्तों के सत्सङ्ग से कदाचित् तृप्ति न करके उनके सत्सङ्ग से आत्मस्वरूप प्राप्त करो क्योंकि धर्मार्थ काम मोक्ष सन्तों के सत्सङ्गही से प्राप्त होतेहैं तुमको तीर्थाटन व उत्तम स्थान के सेवनसे कुछ प्रयोजन नहींहै क्योंकि उत्तमाधिकारी मुमुक्षुको आत्म विचार के सिवाय

द्वितीय कर्म प्रतिबन्धक है जैसे कन्या जबतक पति के सुखको नहीं जानतीहै तबतक गुड़ियां खेलतीहै और जब पतिके सुखको प्राप्त होतीहै तब पूर्वकी व्यवस्था को स्मरण करके हँसती है तैसे ही विद्वान् पूर्व की व्यवस्था को स्मरण करके पश्चात्ताप करते हैं पुरुष अध्यात्म विचारको उपेक्षा करिके और भेद बुद्धिको ग्रहण करिके प्रतिमादि का पूजन जो आसुरीसम्प्रदाय है इस अधिकारी शरीरको प्राप्तहोके इस आसुरीसम्प्रदाय में प्रवृत्तहै उसकी व्यवस्था ऐसी है जैसे कोई पुरुष गङ्गाजी के तटपर जाकर अमृत पुण्यमय गङ्गाजलकी उपेक्षाकरिके कूप और गड़हेके जलके पान व उसमें स्नान करनेकी इच्छा करताहै तैसेही हे शिष्य! जबतक अहंकारको न त्यागेगा तबतक मुक्ति के सुखको कदापि नहीं पासक्ता तब आत्मदर्शी शिष्य बोला कि हे भगवन्! इस सर्व संसारको मायामात्र इन्द्रजाल की नाईं जानकर अरु कामना शब्दादि विषयों को सर्वानर्थका हेतु निश्चयकरके मनको इन सब से निग्रह करके मुक्ति केवल आत्मज्ञान से निश्चयकी कि आत्मज्ञान कि प्राप्तिके बिना द्वैतभ्रम का नाश नहीं होताहै परंतु यह कहिये कि पुरुष आत्मज्ञान को कैसे प्राप्तहोवे और वह कौनसा धनहै या कौनतप है कि जिससे आत्मज्ञान प्राप्तहोवे मैंने सुनाहै कि यह सब जगत् एकक्षण में उत्पन्न होता और द्वितीय में नाश होताहै इसविषय में मुझको बड़ा आश्चर्यहै कि इतना बड़ा संसार एक क्षणमें उत्पन्न व एकक्षण में नाश किसतरह होताहै इस संशय के निवृत्त करने में ऐसा उपदेश कीजिये कि मैं इस संशय से रहित होकेस्थित होजाऊं तब वासकरण गुरू हँसकर बोले कि हे शिष्य! यह देखो और जानो कि एकक्षण में आनन्द और द्वितीय क्षण में शोक अर्थात् दुःख होता है जैसे जबतक निद्रा है तबतक स्वप्न के पदार्थ सत्यकी नाईं प्रतीत होते हैं और जाग्रत् में असत्य की नाईं भासते हैं तैसेही जबतक अज्ञान है तबतक यह सर्वजगत् सत्यकी नाईं भासता

है और जब आत्मज्ञान होता है तब परमात्मा से अतिरिक्त किञ्चिन्मात्र भी नहीं भासता तब आत्मदर्शी बोला कि हे भगवन्! अब मुझको निश्चय हुआ कि मुमुक्षुका प्रयोजन इन्द्रियोंके निग्रह करने व आत्मज्ञान व विद्वानों के सत्संग से प्राप्त होताहै हे भगवन्! अब दयाकरके यह उपदेश कीजिये कि जिससे मैं अपने स्वरूप को जानूं और यह भी बतलाइये कि षट्शास्त्र में कौन शास्त्र उत्तम है और आत्मज्ञान किस शास्त्रमें होताहै इसके पहिले आप कथन करचुके हैं कि आत्मज्ञान वेदान्तशास्त्र में है और कल्याणकर्त्ता भी वेदान्त शास्त्र ही है यह किसप्रकार निश्चयहोवे और ईश्वर सर्वजगत् को और चार प्रकारके प्राणियोंको उत्पन्न और पालन करताहै और कारणरूपहै अरु कारण कार्यका अभेद होताहै, यह प्राणी दीन व दुःखी है यह कारणरूप कैसेहै तब वासकरण बोले कि हे शिष्य! जबतक यह जीवात्मा अर्थात् मनुष्य अपने स्वरूप को नहीं जानता तबतक दीन और दुःखी आदिक होताहै जब अपने स्वरूपको साक्षात् कार अपरोक्ष ज्ञानकरिके जानताहै तब बेपरवाह ईश्वररूप आपही होता है जैसे लकड़ी अग्निमें प्राप्त होकर अग्निरूप होजाती है व जैसे दीपक सूर्यके प्रकाशमें तिरस्कार को प्राप्तहोता है और उसका प्रकाश सूर्यके प्रकाश से प्राप्तहोता है इसीप्रकार आत्मज्ञान द्वारा द्वैतके अभाव होने से जीवात्मा परमात्मासे अभेद होतेहैं हे शिष्य! यह अश्रद्धा मनुष्यको सर्व अनर्थ में प्राप्तकरतीहै और अश्रद्धा बाह्यबुद्धिसे होतीहै हे शिष्य! यह बुद्धि त्रिगुणात्मक है जबतक राजसी, तामसी होतीहै तब तक जगत् के पदार्थको सत्य और सुखदायक जानती और बंधन में फंसतीहै और शब्दादि विषयोंपर प्रबल नहीं होती इससे सुखी और शान्त नहीं होती व्याकुल रहती है और मुक्ति नहीं पाती इसीसे द्वैतको स्थापित करके अपने स्वरूपसे भूलती है तरंग और नदीकी नाईं ब्रह्म और जगत्को भिन्न जानती है जैसे

कोई पुरुष कंठगत भूषण को भूलकर अनेक जगहमें खोजताहै और नहीं पाता और अंधासमीप में स्थित छड़ीको नहीं देखता और दूसरे से छड़ी मांगताहै तैसेही यह पुरुष राजसी तामसी बुद्धिके वश अंधा होकर दूसरेके सकाशसे मुक्ति चाहता है जब यह पुरुष विद्वानोंके सत्संग से बुद्धिको राजसी तामसी मलसे शुद्ध और सात्त्विकी व शब्दादि विषयों की कामना व कायिक वाचिक और मानसिक कर्मोंकी उत्तम व निकृष्ट दृष्टिको त्याग करके आत्मज्ञानको प्राप्त होकर आत्माको सबके संगसे रहित और अद्वितीय तरंगों में जलकी नाईं व भूषणों में स्वर्णकी नाईं अद्वितीय पूर्णजानताहै हे शिष्य! तुम जाति,वर्ण व नाम, रूप व स्तुति, निन्दा के स्पर्श से रहित और स्वतंत्रहो और तुम आ-पही अपनी इच्छासे नानाप्रकार चतुर्विधि शरीरों में प्राप्त हुयेहो और इच्छा से अतिरिक्त किसी दूसरे ने तुमको अपने शरीर में प्राप्त नहीं कियाहै और जब तुमको निस्सन्देह ऐसा निश्चयप्राप्त हुआ कि सम्पूर्ण सृष्टि आत्मामें अध्यस्थ सुक्तिका के रजत अरु रज्जुके सर्पकी नाईं आत्मरूपही है सो आत्मा मैंहीहूं मुझसे भिन्न किञ्चिन्मात्र भी द्वैत नहीं है तब तुम सम्पूर्ण बन्धनों और शरीर की प्राप्ति से रहित होगे जैसे पक्षी फांसी में फँसा हुआ फन्दा को तोड़कर छूटजाता औरसुखी होताहै तैसेही तुम कामना रूपी समुद्रसे पारहोकर और जन्म मरण और मृत्यु व रागादि सर्व अ-नर्थों से रहित होकर परमानन्द को प्राप्तहोगा इस विषय में श्री विष्णुजी ने जो राजा सतोव्रतको हुआ है वह श्रवण कीजिये॥

राजासतोव्रतका इतिहास प्रारम्भ॥

पूर्वकालमें एक सतोव्रत नामीराजा जिसने कि एक हजार अश्वमेधयज्ञ किये हुये था और नित्यप्राति दशलाख ब्राह्मणों को सोने के पात्रमें भोजन कराके वह पात्र भी उनको देदेता था और एक लाख गऊ दूधदेनेवाली सहित बछड़े के जिनकी

गर्दन में सोने की हमेल डालकर विधिपूर्वक नित्यप्रति ब्राह्मणों को दान में देताथा और यथायोग्य याचकों का भी सत्कार करता था और अनेकप्रकार के उत्तम २ मंदिर बनवा के ब्राह्मणों और याचकों व गरीबोंके रहनेके लिये दानमें देता था और मिथ्या वचन व गाली इत्यादि कभी अपने मुंह से स्वप्नमें भी न निकालता था और प्रजाको पुत्रके समान मानकर आप सदा श्रुति स्मृति कथा पुराणादि शुभकर्मोंमें प्रवृत्त रहता था हे शिष्य ! इस इतिहासके सुनने से तुम स्वर्ग नरक, सुख दुःख व संसारके आवागमन से रहित हो जावोगे इससे तुम अपने बुद्धिरूपी श्रवण से ध्यान धरकर सुनो जब प्रथम पूर्वसमय में ब्रह्माजी ने अश्वमेधयज्ञ का आरंभ किया था उसमें महादेव आदि सम्पूर्ण देवता व ऋषीश्वर, देवर्षि, ब्रह्मर्षि,राजर्षि देवलोक व मर्त्यलोक वासी व सब राजालोग भी उपस्थित होकर यथा-योग्य अपने २ कामों में लगेहुये थे और धर्मराज व इन्द्र वरुण कुबेर आहुति देतेथे व वसिष्ठ भृगु, नारद व सनकादिक महर्षिगण ब्रह्माजीके पुत्र वेद उच्चारण करतेथे यह ऐसा अद्भुतयज्ञ हुआ कि जिसके समान पूर्वकाल में कभी नहीं हुआ था और लोग उस यज्ञमें विद्यमान थे सब मुक्त होगये और राजा सतोव्रत मुक्तिरूप धर्मनेष्ठी और दानी जिसके सदृश कोई दूसरा राजा दानी नहीं हुआ था उसने उस यज्ञमें महादेव जी से यह प्रश्न किया कि हे सर्वेश्वर, हे अन्तर्यामी, हे महादेवजी ! मेरे संकल्प विकल्पके निवृत्त करनेकी शक्ति आपके सिवाय और किसी में नहीं है इससे दयाकरके मेरी संदेह जनितं संशयको निवृत्त कीजिये तब महादेव जी बोले कि अब तुम अपना संशय प्रकट करो तब राजा सतोव्रत बोले कि हे भगवन् ! मेरी आयु चार-करन अर्थात् एक सौ बीस वर्ष की थी तब मेरे पिताका देहान्त हुआ और मैं राजसिंहासनपर बैठाथा और अब मेरी अवस्था बीस हजार वर्षकी है कि मैं राजकरता हूं और जो कुछ प्र-

क्रिया राजकरने की व राजधर्म कर्म वर्णाश्रमके वेदमें कहे हैं वे सब यथावत् करता हूं और दान व सम्पूर्ण उपासना भी वेदानुसार करता हूं परन्तु मेरा मन सांसारिक कामना व सब व्यवहारोंसे अबभी अलग नहीं होता न स्वतंत्र होकर निष्कामहोता है कि जिससे मुक्ति को प्राप्त होऊं और दूसरा संशय यह है कि मैं आपको नहीं जानता हूं कि मैं कौन हूं व कहां से आया हूं और मेरा कारण क्याहै और किसके अनुग्रहसे सम्पूर्ण इन्द्रियां व्यवहार करती हैं तब श्रीमहादेवजी राजाके इन प्रश्नोंको सुन कर ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवता व ऋषियों की ओर देखने लगे तब ब्रह्मादि सब नीचेको शिरकरके ध्यान में स्थित होकर शोचने लगे और उत्तर देनेको समर्थ न हुये जब ब्रह्माजी ने देखा कि सब देवता और ऋषिलोग राजा के प्रश्नोंका उत्तर न देकर लज्जाको प्राप्त हुये तब हँसकर बोले कि हे राजन्! तुम धन्यहो और तुम्हारे प्रश्नका उत्तर आत्मज्ञान और निर्वचन है इससे कोई देवता व ऋषीश्वर नहीं जानते हैं मैंने इस आत्मज्ञानको चारोंवेदों से निकालकर वेदान्त शास्त्र में स्थापन किया है वह वेदान्तशास्त्र सब से छिपाकर वैकुण्ठ में विष्णु जीके पास रक्खा है और मुझे संसारमें आत्मज्ञान प्रकट करने के लिये विष्णुजी की आज्ञाभी नहीं है इसलिये कि यदि यह गुप्तज्ञान संसार में प्रवृत्त होजावेगा तो संसारका कारण व जगत्की उत्पत्ति व बन्ध व मोक्ष का भय व तप दानका राग द्वेष व स्वर्ग नरक की आशय जन्म मृत्युका अभाव होजावेगा और जब संसार की प्रवृत्तिही न होगी तब अन्त कैसे होगा, सम्पूर्ण कठिन कार्य श्री विष्णुभगवान् की कृपा से सुगम होजाते हैं वही नारायण आकर तुम्हारा कार्य सिद्ध करेंगे इसप्रकार वार्तालाप होही रहाथा कि उसी समयान्तर में विष्णु भगवान् भी उत्तम मणि जटित चन्द्रमा के सदृश प्रकाशमान श्रेष्ठ विमान में बैठे हुये ब्रह्माजीकी यज्ञमें आपहुंचे कि जिनको देखकर सबलोगों ने

हाथजोड़ कर स्तुति व नमस्कार और पूजन किया तब श्री विष्णुभगवान् अन्तर्यामी बोले कि हे महादेव, ब्रह्मा व सम्पूर्ण देवता व ऋषि लोग! मैं राजा सतोव्रतके प्रश्नोंका उत्तर कहताहूं उसको सब लोग श्रवण करो इसप्रकार विष्णुभगवान् सबको सचेतकर बोले कि हे राजन्! यह सब देवता ऋषि पृथ्वी, पर्वत, आकाश और मनुष्य व तिर्यग और यह सर्व दृश्य मिथ्या और असत्यहै प्रथम तुम इस अपने शरीरको जिसपर ममत्वका गर्व करतेहो देखो यहही असार और मिथ्याहै इसलिये कि शरीर के सम्पूर्ण अंगों के नाम अलग २ हैं फिर तुम कहां हो इसीप्रकार सम्पूर्ण संसार मिथ्याहै और यह जो प्रकाश्यहै सो आत्मा का प्रकाशहै वह आत्मा मैंहूं और पृथ्वी आकाश दिशा, सूर्य चन्द्रमा यज्ञ और होम व ब्रह्मा और महादेव व सर्वमैंही हूं और हाथी व पिपीलिकादि में मैंही हूं मैं अद्वितीय हूं और सब में समान भाव से स्थितहूं छोटाई व बड़ाई न्यूनाधिक्य जो देखता है यह शरीर का धर्महै अज्ञानी की दृष्टि में न्यूनाधिक्यहै यह सत्य नहींहै क्योंकि सर्व का अधिष्ठान आत्मामैंही हूं जोकि न्यूनाधिक्यादि सम्पूर्ण कर्म के फलों से रहितहूं और जब मैंही हूं और अपनी इच्छानुसार सबमें पूर्णहूं तब न्यूनाधिक्य किसप्रकार होसक्ताहै मुझको मृत्यु और सुख व दुःखादि शारीरिक धर्मोंका लेशभी नहीं है जब शरीर और सम्पूर्ण चराचर मेरीही सत्ता से चेष्टा करतेहैं तब कहिये कि जन्म मृत्यु किसकीहै या नहींहै हे राजन्! इनसब का प्रयोजन और सिद्धान्त मेरी प्राप्तिमें है और सब तप दान और देवतोंका पूजन करतेहैं परन्तु सबसे उत्तम यह है कि मेरे स्वरूप को सर्वाधिष्ठान यथावत् करें और यहही सत्यहै और यह मनुष्य तप और कर्ममें अति कष्ट करिके अभिमानको प्राप्त होताहै अरु कामना उसकी तपके फलमें और तपकरने में रहतीहै और मेरी मुक्ति की प्राप्ति से रहित होताहै और उसकर्म व तपका फल उसी प्राणीको बारम्बार जन्म लेने व मृत्यु होने

और विषय भोग इस मृत्युलोकका प्राप्त होताहै और नानायोनि में प्राप्त होकर उसका फल भोगताहै जब सब कामनाओं को त्याग कर उत्तम अधम न्यूनाधिक्यकी दृष्टिको हटाकर तब सम्पूर्ण आत्मा साक्षात् करिके जन्म, मृत्युसे रहित होताहै और बन्धन यही इच्छा है हे राजन्! मैं तुमको थोड़ेही में मुख्य सिद्धान्त बतलाये देता हूं सुनो आत्मज्ञान छोटाई बड़ाई वर्णाश्रम और कोई कामना के त्यागने से प्राप्त होतीहै और आत्मज्ञान भी इसी परित्यागका नामहै इसके सिवाय और कोई साधन कल्याण दायक नहीं है आत्मज्ञानी अपनेको व सम्पूर्ण चराचर जंगमादि को एक ब्रह्मस्वरूपही जानता है क्योंकि ब्रह्मसजातीय, विजातीय सुख दुःखादि भेदों से रहित होकर पूर्णहै आत्माके विना दूसरा भूत, भविष्यत, और वर्तमानमें कोई नहीं है यदि सर्व आत्मा व सर्वाधिष्ठान हमीं हों तब इस मुमुक्षु अर्थात् तुमको क्या योग्य है कि जो अपने को जीव और बन्धन जाने जो कुछ देखे आपको देखे व जो कुछ जाने आपको जाने और अपने से अतिरिक्त सबको त्यागकर सजातीय आदि भेदसे रहित मुझको अर्थात् विष्णुको अपना आपकरिके जाने और दृढ़निश्चय करे और विश्वास करिके जाने कि मेरा कारण कोई नहीं है और मैं उत्पत्तिसे रहित हूं और मुझको यही इच्छा नानाप्रकार के शरीरोंमें प्राप्त करती है यदि इच्छा न होवे तो मैं जन्म मृत्युसे रहितहूं इस निश्चयको दृढ़करके यदि संसार में रहे तो सांसारिक धर्म बंधमोक्षादि सबसे रहित होकर अपनेको असंग जाने जैसे कमल जलमें रहता है परन्तु जल उसको स्पर्श नहीं करसक्ता तैसेही ज्ञानीको संसारी धर्म स्पर्श नहीं करते यदि मैं सर्व चराचर स्थावर जंगमादिके प्रत्येक अंग रोम २ में व्याप्त होकर पूर्णब्रह्महूं और मुझसे अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है इसलिये कि सब मुझीमें अध्यस्थहैं इससे उचितहै कि मुमुक्षु आपको मेरे से अभेद निश्चय करके वर्ण और आश्रम ज्ञानी और अज्ञानी

इस अभिमान से रहित होवे और यह निश्चय करे कि द्वितीय कोई नहीं है जो मेरी मुक्ति करे जो कुछहै अद्वितीय आत्माही है यदि कोई पुरुष आत्मा से अतिरिक्त मुक्त करनेवाला अथवा स्वर्ग नरक को प्राप्त करनेवाला मानता है तो यह केवल उसका भ्रम मिथ्या है जैसे संसार में किसी पुरुष को दुःख आकर प्राप्त होता है तब माता पिता गुरू या और संपूर्ण समीपी स्थित होते हैं परन्तु उस पुरुष का दुःख निवृत्त करने के लिये कोई भी समर्थ नहीं होते विचार करके देखो कि जब गुरूआदि से दुःख निवृत्त न हुआ तब उसके कर्म उपदेश से मोक्ष और कल्याण कैसे होगा और जो पुरुष मेरानाम अर्थात् विष्णुका दिन रात जपता है और सुखी नहीं होता है उसका कारण यह है कि वह पुरुष मुझको भिन्न और अपनेको भिन्न जानकर दीनता और बिनती बहुत करताहै यह फल अज्ञान का है और जिसको ज्ञान होताहै वह अपने से अतिरिक्त मुझे व संपूर्ण संसार को कदापि नहीं जानता है इसलिये कि सर्व्व आत्माही है वही ज्ञानी मेरी आत्माहै और सम्पूर्ण सृष्टि मुझीसे सिद्ध होती है अर्थात् मुझी से उत्पन्न होकर मेरे में ही स्थितहै जल तरंग की नाईं किंचित् वस्तु भी मुझसे और मैं किसी से भिन्न नहीं हूं हे राजन्! जिसके आत्मज्ञान रूपी नेत्र नहीं हैं वह अज्ञानी अंधाहै यदि कोई सुवर्णको पीतलकहे तो वह सुवर्ण पीतल कदापि नहीं होसक्ता सुवर्ण का सुवर्ण ही बनारहता है इसीप्रकार अज्ञानी मुझको भिन्न जानताहै जैसे मृग अपनी नाभिमें स्थित कस्तूरीको न जानकर सम्पूर्ण वनमें खोजता हुआ व्याकुल होताहै और उसे नहीं पाता तैसेही यह मनुष्य अपने आत्मस्वरूपके अज्ञान से मुक्ति और से खोजता फिरताहै परन्तु उसको प्राप्त नहीं होती यह नहीं जानता कि मैं नित्य मुक्त आत्मस्वरूप हूं और यह सब मेराही प्रकाश है और न्यूनाधिक्य मुझमें नहीं है और मैं अपनी इच्छासेही बंधनमें फँसाहूं और यह कामना तीनों लोक

के राज्यको भी पाकर तृप्त नहीं होती है और द्वितीय कौन है जो मेरी मुक्ति करे तब विष्णुजी फिर बोले कि हे राजन्! जब तक यह मनुष्य तृष्णा और वासना व शरीरके भोगों व पदार्थों के रसमें फंसा है तबतक मोक्षका मुख कदापि न देखेगा और यह भी निश्चयकरो कि मैं बूंद चैतन्य अनन्त समुद्र की अव्याकृत रूप जगत् का बीजहूं सर्व मेरे ही सकाशसे तृप्त हुआ है मेरा कार्य है आत्मा से अतिरिक्त किंचित् नहीं है कि सब वस्तुओंकी इच्छा करताहूं और यह जीव आपही आत्मस्वरूप के अज्ञान से वर्णाश्रम के बंधन में फँसा आपको जानता है और कहता है कि मैं ब्राह्मणादि हूं यह कर्म्म मुझको करना उचित नहीं तो पतित होऊंगा और नहीं जानता कि मैं वर्णाश्रम और इनके धर्मों के स्पर्श से रहित हूं कैसा आत्मा है नित्य मुक्त स्वरूप है जैसे कोई एक बूंद नदी से जुदा करके नदीको भिन्न और बूंद को भिन्नरूप जानता है अरु वास्तव में वह बूंद नदी स्वरूपही है इसलिये कि जब उसको नदी में डालें तो नदी रूपही होजाता है तैसेही यह सर्व संसार मेराही रूप है यदि जो मुझसे अर्थात् ईश्वरसे भिन्न अभिमान करता है तब शब्दादि विषयों की कामना में फँसकर अपने वास्तव स्वरूप अर्थात् मुझ विष्णुको भूलके औरों से कामना मांगताहै और यदि जानताहै कि आत्मा ईश्वर मैंहीहूं और सबको अविद्या से कल्पित किया है तब जैसे बूंद अपने वास्तव स्वरूपको जो जल है जानकर बूंद और नदीके अभिमानको त्यागता है तैसेही यहभी अपने वास्तव स्वरूप को जो मैं हूं साक्षात् करके मुक्त होताहै और शुभाशुभ कर्मोंके बंधनसे रहित होकर मुझको और अपनेको अभेद निश्चय करता है और यदि पुरुष अपनेको जीव निश्चय करके और शुभाशुभ कर्म में आपको कर्त्ता मानिके व सब कर्म ईश्वर के अर्पण करिके जो दुःख सुख आदि प्राप्तहोता है उसको ईश्वर के आधीन मानता है यह शुभाशुभ कर्म मैंने

किया इसका फल मुझको प्राप्त हुआ ऐसा नहीं मानता सो भी परम्परा मेरे द्वारे मुक्तिको प्राप्तहोताहै इसलिये कि कर्तृत्व अभिमान से रहित और निष्काम होकर सर्व वासना से रहित होता है और तुमको भी उचित है कि सर्वकालमें सर्व शुभाशुभ व्यवहारों को ईश्वर को अर्पण करके अपने को सर्व के स्पर्श से रहित आकाशकी नाईं असंग निश्चय करके दिनरात तप, दान, होम और यज्ञकरके उसका फल ईश्वर जो मैं हूं मुझको अर्पण करो और तुमने जिस अहंकार से अपने को मुझसे भिन्न समझ रक्खाहै उसका परित्यागकरो सिद्धान्त चारवेद प्रत्यक्ष कहते हैं कि जीव सर्वका आत्माहै और वह आत्मा नित्य मुक्तरूप होकर सम्पूर्ण कर्म के बंधनों से मुक्त है इस तरह जानकर द्वैत निश्चय को त्याग सर्व चराचर को सजाति आदि भेद से रहित आत्मस्वरूप जानकर सबको अपने में अध्यस्थकर अपने को सबमें अधिष्ठानरूप निश्चयकरके मुझको और अपने को अभेद एक निश्चयकर इस निश्चय के विना कदापि मुक्ति नहीं होसक्ती परंतु ऐसा कदापि न करो कि कभी त्रैलोक्यनाथ और कभी भिक्षुक दरिद्री अपने को समझो या कभी निष्क्रिय आत्मस्वरूप और कभी कर्ता व भोक्ता आत्मा को निश्चयकरो जैसे कोई पुरुष दो नावपर सवार होकर नदीसे पारजाना चाहे तो पार न होकर वह बीचही में डूबजाताहै इसीतरह दो निश्चय वाला पुरुष भी संसाररूपी समुद्र में डूबता है अर्थात् वारंवार जन्म और मृत्युको प्राप्तहोता है इतना सुनकर राजा सत्यव्रत ने पूछा कि हे महाराज! पहिले तो आपने उपदेश कियाथा कि सर्व अद्वितीय आत्मा है और अब नावका दृष्टान्त देतेहो यदि सर्व आत्माही है तब दुःख व सुख नरक व स्वर्ग जन्म और मृत्यु किसके निमित्त स्थापित करतेहो तब श्रीविष्णुभगवान् बोले कि हे राजन्! यह आत्मा है यदि कामनाके बीच अर्थात् इच्छारूपी कूप में पड़ता है तब भेद दृष्टिको संपादन करके अ-

पने को ईश्वर से भिन्न जानता है इसीप्रकार से अनेक भ्रम अ-
पने हृदय में स्थापित करता है और इन्हीं संकल्प विकल्पों से
अनेक प्रकारके गर्भवासादिदुःखों को प्राप्तहोता है और जैसी
इच्छा करता है वैसेही शरीरों में प्राप्तहोता है आत्मा आवाग-
मन से रहित है अर्थात् न कहीं से आया है न कहीं को जाताहै
वह सदा एकरस स्थित रहकर सर्वभय से रहित व शान्तरूप है
इस मनुष्य अर्थात् आत्मा को सम्पूर्ण दुःख व अनर्थ अपने स्व-
रूप अर्थात् आत्माके न जानने से होते हैं सो अपनाको न जा-
नना ऐसा है जैसे सोनार सोनेके अनेक भूषण बनाकर उनका
नाम भिन्न २ रखकर असली सोनेको भूलजाता है हे राजन्!
जैसे ऊंखमें मिश्री दूधमें घी, काष्ठमें अग्नि और पत्थर में लोहा
मिलाहुआ है वह यत्नकरने से प्राप्तहोता है इसीप्रकार सम्पूर्ण
चराचर में भीतर व बाहर में आत्मस्वरूप व्याप्तहूं वह पुरुष जो
अपने को संसार से और मुझको अपने से भिन्नजानता है मूर्ख
है और भिन्नअहंकार करना व शरीरके साथ अध्यस्थकरके अपने
को शरीरमात्र जानना केवल भ्रमहै इसलिये कि शरीर सर्वसंसार
के सहित मिथ्या और नाशवान् है अर्थात् स्वप्न और मृगतृष्णा
के जलकी नाईं है जैसे स्वप्नमें अनेकप्रकार के दुःख सुखादि दे-
खता है और जब जागता है तो उस सुख दुःखादि की किञ्चित्
गंध भी नहीं दिखाई पड़ती ऐसेही यह संसार स्वप्न से अधिक
नहीं है क्योंकि यह क्षणभंगुर है अर्थात् एकमें उत्पन्नहोता है
और एकही क्षणमें विलीयमान होजाता है बुद्धिमान् अपनी
सत्ताको जो भिन्नआत्मा से कल्पी है सर्वसंसार के सहित असत्
मृगतृष्णा के जल व आकाश की नीलिमा व गंधर्वनगर की
नाईं निश्चय करके वास्तव स्वरूप जो आत्मा अधिष्ठान है उस
को निश्चय सत्जाने कि जो कुछ है सर्व आत्माही है हे राजन्!
अब और भी उपदेश मेरेसकाश से श्रवण करो जो संसार के
अधिष्ठान और आत्माका कारण है और सर्व आत्मा के प्रकाश से

प्रकाशितहैं सोजानो यदि यह सर्वआत्माही हुआ तब भिन्न और अभिन्न जानना कौनबुद्धिमत्ता और दुर्बुद्धि है हे राजन् ! तुम आत्मस्वरूपहो तुम्हारा कदाचित् किसीकाल में भी नाश अर्थात् मृत्यु नहीं है तुम एक रसहो कदाचित् किञ्चित् भी तुममें द्वैत नहीं है और जो यह संसार मनुष्य और तिर्यक् अर्थात् अंडज, पिंडज, जरायुज स्वेदज जब देवतादि सम्पूर्णहैं तुम्हीं हो और तुम नामरूप से रहितहो और मन बुद्धि आदिका अविषयहै यह तीनों लोक तुम्हीं से उत्पन्न हुये हैं और तुम सत् असत् बुद्धिका गोचर भी नहीं हो यदि तुमने सत् असत् अर्थात् कार्य व कारण सर्वको अपने में स्थापित किया तब द्वैत का अभाव हुआ तुमसे अतिरिक्त किंचित् वस्तु भी भिन्न नहीं है तुम निश्चय विचार करके बिचार दृष्टिसे देखो कि मैं अर्थात् विष्णुदेव सब देवतों के सहित और आकाश, पृथ्वी और दशो दिशा तुम्हीं से उत्पन्न हुई हैं अर्थात् तुम्हीं से कल्पित कीगई हैं यदि तुम्हारी आत्मा मैं हूं और मेरी आत्मा तुमहो और मुझमें व तुम में कुछ भेद नहीं है तब किंचित् भी तुमसे भिन्न नहीं है यदि अपने को सबमें अभेद और सर्व के संगसे रहित जानोगे तब संसार रूपी बंधन से मोक्षहो जावोगे और सुख दुःखादि की प्राप्ति से रहित परमानन्दरूप हो जावोगे इसलिये कि आत्मा शरीर और रूपसे रहित है और सम्पूर्ण शरीर व रूप आत्माही के हैं और आत्मा कहने सुनने और संकल्प व निश्चय में नहीं आता और सबमें व्याप्त है हे राजन् ! जो कोई सत् असत् और बंध व मोक्षकी इच्छा हृदय से निवृत्त करता है वह आपी आप होता है और सर्व सांसारिक कार्यों से रहित होता है जैसे माया व नट अनेकरूप और लीला दिखलाते हैं और देखनेवाला उन्हें उससे भिन्न मानता है तैसेही वह पुरुष अपने को द्रष्टा साक्षी जानता है और कर्मोंके करने व न करने व पुण्य और पाप व सुख दुःखके स्पर्श से रहित होता है व जैसे सूर्य सबको प्रकाशित करता है परंतु किसी के पुण्य व पाप से स्पर्श

नहीं करता और जब वह पुरुष अपनी उत्पत्ति व नाश और कर्म को मिथ्या जानकर सबका द्रष्टा अपने को मानता है तब शुभा शुभ कर्मों का फल जो हर्ष शोकादि शरीर की प्राप्ति से होता है उसको नहीं पाता है अर्थात् ज्ञानी संपूर्ण शारीरिक धर्मों से रहित होजाता है हे राजन्! यदि तुमको मुक्त और मुझको अर्थात् ब्रह्मको प्राप्त होने की इच्छा है तो तुम्हें योग्य है कि अपने शरीर को संसार के सहित नाशवान् जानकर मुझको जो सर्व स्थानों में व सब शरीरों में पूर्ण हूं नाशरहित जानकर अपने शरीर में राग और सर्व शरीर से अधिक न करके जैसे आपको सुख होवे वैसेही दूसरे को भी करो जैसे आपको दुःख होवे तैसे और को न करो और संपूर्ण संसार को व संसारी को अपने प्रकाश से प्रकाशित अर्थात् सुवर्ण भूषणकी नाईं सबका प्रकाशक मैंही हूं ऐसा निश्चय करके छोटे बड़े का भेद हृदय के बीच से उठादो यह छोटा बड़ा जानना केवल अज्ञान से है जैसे तरंग और बुद्बुदे व बूंद समुद्रके केवल जलही हैं तैसेही चराचर जीव केवल ईश्वर कीही एक आत्मा है और यह जो तुम्हारे हृदय में द्वैत निश्चय स्थित है कि अमुक मेरी मुक्ति का दाता है इस भ्रमको हृदयसे दूर करके अपने को जलकी नाईं सबमें संपूर्णजानो इसलिये कि यह कामनाही कर्म के बंधनमें डालती है और यह कामना केवल ज्ञानसे निवृत्त होती है कोई इस कामना से भिन्न नहीं है कि जो इसका बंधन मुक्त करसके यह मनुष्य जो मुझको अपने से और अपने को मुझसे भिन्न जानता है इसी कामनाकी अनुग्रह है इसी से बंधन होता है यदि यह मनुष्य कामना से रहितहोकर इस शुभाशुभ संसार को जो शरीर का धर्म और कर्मों का फल है इसको अपना से भिन्न जानकर केवल अपने को आत्मरूप जानता है वह बंध मुक्त और सुख दुःखादि व हर्ष शोक से मोक्ष होताहै हे राजन्! इस संपूर्ण उपदेश का यह सिद्धान्त इसको श्रवण करो कि यह पुरुष सर्व पुरुषार्थ, तप, दान और होम यज्ञ

और त्याग इसलिये करता है कि मुझको प्राप्तहोकर मुक्त होवे उसको सुनो कि जब यह अहंकार करता और हृदय में जानता है कि यह कर्म मैंने किया और और कर्मों के करनेकी अपने हृदय में कामना रखता है उसको मेरी प्राप्ति जो मुक्ति है किस-प्रकार प्राप्त होसक्ती है क्योंकि मेरा मुक्तरूप बिना ज्ञान के प्राप्त नहीं होता है इससे उचित है कि सर्व स्थावर जंगम चराचरादि पिपीलिका से लेकर ब्रह्मापर्यंत भीतर बाहर मध्य व्यापक पूर्ण आत्मा को जानकर किसी स्थान और शरीर में न्यूनाधिक्य अपने हृदय में न करे न जाने और सबको आत्मरूप निश्चय करे और शरीर मेरा अर्थात् विष्णु का और सर्व सांसारिक जीवों का आत्मा ही से उत्पन्न हुआ है अर्थात् आत्माही में अध्यस्थ है वह आत्मा मैंहीहूं आत्माको अपने से अतिरिक्त जानना हृदयसे दूर करके व निष्काम होकर सब शुभाशुभ कर्मों को मिथ्या जाने और मुक्तिकी इच्छा भी बंधन है क्योंकि जो जन मुक्ति की इच्छा करता है वह किसी कालमें भोगों की भी इच्छा करेगा जैसे जो संस्कार जाग्रत्अवस्था में मनमें स्थित होता है वही संस्कार स्वप्नमें भी प्रकट होते हैं इसलिये तुमको योग्य है कि अपने को शरीर व इच्छा से रहित साक्षात् करके इच्छा बंध व मुक्ति की न करो इसलिये कि तुम आत्म मुक्तरूप हो आत्मज्ञानको क्या खोजतेहो तुमसे सामर्थ्यवान् और शक्ति-मान् कोई नहीं है कि तुम्हारी मुक्ति करेगा तुम आपही मुक्तरूप हो और तुम मुझसे मैं तुमसे भिन्न नहीं हूं तुम निस्संशय विचार करके देखो कि एक अद्वितीय ब्रह्ममैं हूं अर्थात् एक सर्व विष्णुही है हे राजन्! तुमको योग्यहै कि द्वैतचिन्ता को हृदय से दूरकरो और किसीपदार्थ की इच्छा न करो यही निश्चय मुक्त है और यदि संकल्पकरतेहो कि कोई द्वितीय हमारी मुक्ति करेगा इतनाही बंधनहै और तुम तीनोंलोकों के ईश्वर और सर्व के प्रकाशकहो और आपही आत्मस्वरूप होकर मुक्त और कल्याण की आशा

और से करतेहो यह मूर्खता है तुम से अतिरिक्त द्वितीय बन्ध्या के पुत्रकी नाईं कहां है जो तुम्हारी मुक्ति करसके हे राजन्! तुम को योग्य है कि मनको द्वैतरूपी भ्रम से निवृत्त करके अपने स्वरूप को साक्षात् करो जब द्वैत भ्रम तुम्हारे मन से निवृत्त होजायगा तब तुम स्वयंआत्मरूपहीहो हे राजन्! निश्चयकरो और निस्संशय जानो कि मैं आत्मस्वरूप हूं और यह सब मेराही प्रकाश है विष्णु भगवान् इस प्रकार राजासतोव्रतको उपदेश करके और ब्रह्माजी की यज्ञको ग्रहण करके अन्तर्द्धान हुये और ब्रह्माजी का यज्ञसम्पूर्ण हुआ और राजासतोव्रतभी अपने स्वस्वरूप को प्राप्तहुये तब वासकर्ण जी बोले कि हे पुत्र! यदि तुम को मुक्तहोने की इच्छा है तो तुमको उचित है कि जो श्रद्धा और पुरुषार्थ विष्णुजी के उपदेश में जो राजा सतोव्रत को हुआ है उसमें करके अपनेको और सबको एक अद्वितीय आत्मा जानो अर्थात् साक्षात् करो कि मुक्ति केवल कर्म की गंध से रहित होकर आत्मज्ञानसे होती है तब आत्मदर्शी इस प्रकार राजा सतोव्रत और विष्णुभगवान् के संवादको श्रवणकरके और निस्संशय होकर बन्ध व मुक्तके भयसे रहित हुआ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

इति श्री पराशर संहितायां इतिहास वासकर्ण आत्मदर्शी का सम्पूर्णम् ॥

भाद्रपद शुक्लपक्षेतु तृतीयायां भौमवासरे विलेखि पुस्तकंरम्यं प्रयागदत्तेनधीमता—संवत् १९३७ विक्रमी

॥ शुभम् ॥

निश्चय करो कि वेद और शास्त्र कहते हैं कि प्राण जड़ और तुच्छ है वन्ध्या के पुत्रकी नाईं तब भी कोकिला अपने प्राण से नहीं टरती तब सारासिन ने उत्तर दिया कि मुझमें तो बुद्धिही नहीं है मैं निश्चय कैसे करूं तब कोकिला बोली कैसे कहतीहो कि वेद और शास्त्र कहता है यही शब्दको त्याग करो जो कहता है सो प्राणही कहताहै इससे वेद और शास्त्र सब प्राणही हैं, प्राण स्वयं प्रकाशवान् अद्वितीय है इसी संवाद में थे कि जल कुक्कुट आपहुँचा और बोला कि जिस समय ईश्वर सर्व जगत्को लय करताहै तब प्राण कहां है तब कोकिला ने उत्तर दिया कि प्राणही ईश्वरहै वह अपने को आपही में लय करलेता है तब जल कुक्कुट ने कहा कि ईश्वर से सब चराचर जगत् उत्पन्न हुआ और सबका कारण वही है इससे प्राणभी उसी से उत्पन्न हुआ है पुरुषसे प्रकृति और महत्तत्त्व अहङ्कार त्रिगुणात्मक होकर क्या ब्रह्मा, विष्णु होकर सम्पूर्ण जगत् बनाया यदि जिस स्थान व अधिष्ठान में महत्तत्व, अहङ्कार नहीं है तहां प्राण कहां है तब कोकिला ने उत्तर दिया कि अहङ्कारादि सबको प्राणही सिद्ध करताहै तब जलकुक्कुट ने कहा कि प्रकृति में प्राण कहां है तब कोकिलाने उत्तर दिया कि प्रकृति के विना प्राण कौन कहे मेरे निश्चय में पुरुष भी प्राणही है और ब्रह्म भी प्राणहै इस बात के सुनने से सब आश्चर्यित हुये तब गरुड़जी बोले कि ब्रह्मविषे प्राण कहां है तब कोकिला ने उत्तर दिया कि ब्रह्मअरूप है और प्राणभी अरूपहै तब कुलङ्गने कहा कि जीव में प्राण है, ईश्वर में प्राण नहीं है तब कोकिला हँसकर बोली कि प्राण ईश्वर को सिद्ध करताहै, सर्व जगत् मुझसे उत्पन्न हुआ है और मुझी में लीन होजायगा, हे मित्रो! इसमें कुछभी संशय न करो यदि सर्व प्राणही है तो क्या भयहै कोकिला की इस वार्ता को सुन सब मौन होगये तब गरुड़जी ने काकभुशुण्डि से कहा कि हे काकभुशुण्डि! तुम कहते हो कि हमने सहस्रवर्ष भक्तिकी है इस से

अब कोकिलाके प्रश्नका उत्तर दीजिये तब काकभुशुण्डिजी बोले कि मैं सन्तों की सभामें आयाहूं मुझमें बुद्धि नहीं रही और बिना बुद्धिके कहा नहीं जाता इससे क्या कहूं जब इतने सन्त उत्तर देनेको समर्थ नहीं हैं तब मेरी क्या शक्तिहै जो उत्तर देसकूं तब कोकिलाने कहा कि पहिले मेरे प्रश्नका उत्तर दीजिये नहीं तो कर्मत्यागकरके योग करो मैं योगीहूं तब हंसने कहा कि तू पक्ष लेकर कहताहै, आश्चर्य की बातहै कि निष्पक्षियों में स्थितहूं और चाहताहूं इसलिये कि पक्ष शरीरही तकहै वह अब नाशहुआ तो पक्ष कहां रहा जब मैं योग करताहूं तब योग होताहै नहीं तो योग नहीं होता क्योंकि योग स्वयंसिद्ध नहीं है तब कोकिलाने पूछा कि क्या योग किसी वस्तु के जुड़ने का नामहै यदि जुड़नेका नामहै तो जुड़ना प्राणसे होताहै इस से निश्चितहै कि प्राण सर्वत्र विद्यमान है तब सबने कहाकि मैं तुझ को अभी मारडालूंगा और मारकर फिर तुम से पूछेंगे कि अब तुम्हाराप्राण कहां है तब कोकिलाने उत्तरदिया कि प्राणको मारने की किसी को शक्तिनहीं है वह इस शरीर से निकला और तत्क्षण दूसरे शरीरमें प्रवेश करगया प्राणस्वयं प्रकाशवान् है तब हंस बोला कि हे वादी ! यही जगत् ब्रह्मरूपहै प्राण कहां है तब कोकिलाने उत्तर दिया कि इस संवाद से भी प्राणही सिद्धहुआ, इसलिये कि ब्रह्मपूर्ण और अरूप को कहते हैं और पूर्ण अरु अरूप सर्वत्र प्राणही है तब सबने आपस में सलाहकी कि ब्रह्माजी के पास जाकर इस बातका निर्णय करना चाहिये कि जो कुछ ब्रह्माजी कहें वह सत्यहै तब कोकिलाने उत्तर दिया कि यदि ब्रह्माजी तुम लोगोंका पक्षपात करेंगे तब मैं कदाचित न मानूंगी तब सबने कहा कि जो ब्रह्माजी कहेंगे वही प्रमाणहोगा तब बृहस्पति ने कचसे कहा कि हे पुत्र ! इसप्रकार आपस में वार्तालाप करके सम्पूर्ण पक्षी ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके पास गये तब कचने उत्तरदिया कि हे पितः ! वे सब कैसे संत थे कि